आँख की किरकिरी

उच्चकोटि का सामाजिक उपन्यास

मूल लेखक—स्वर्गीय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

['चोखेर बालि' का अविकल अनुवाद]।

अनुवादक—

श्री कमलाप्रसाद राय शर्मा, बी० ए०

हिन्दी की अनेक पुस्तकों के रचयिता और अनुवादक)

प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तकालय,

बनारस।

म संस्करण] [सजिल्द ४)

प्रकाशक
शंकर सिंह
हिन्दी-पुस्तकालय,
बनारस ।



मुद्रक—
काशी मुद्रणालय,
विश्वेश्वरगंज, मृत्युञ्जय,
बनारस ।

महेन्द्र ने कहा—"इसीलिए तो कहता हूँ कि मेरी समझ में यह बात आ रही है कि आशा से ब्याह न करूँगा तो उनके मन में एक तरह का खेद बराबर बना रह जायगा।"

विहारी ने कहा—"हो सकता है।"

महेन्द्र ने कहा—"मैं समझ रहा हूँ कि ऐसा होनेपर भी मेरे लिए बड़ी ही अन्याय की बात होगी।"

विहारी ने कुछ अस्वाभाविक उत्साह के साथ कहा—"बहुत अच्छा यह तो अच्छी बात है। तुम राजी हो जाओ तो फिर दूसरी बात ही क्या रह जाती है। यह कर्त्तव्य-बुद्धि कल तुम्हारे दिमाग में आ गयी होती तो अच्छा हुआ होता।"

महेन्द्र—यदि एक दिन की देर ही हो गयी तो कौन-सा नुकसान हो गया।

ज्यों ही विवाह के प्रस्ताव में महेन्द्र ने मन की लगाम छोड़ दी त्यों ही उसके लिये धीरज रखना कठिन हो गया। उसके मन में यही विचार आने लगा कि और अधिक बातचीत न करके यह काम पूरा कर देने में ही कल्याण है।

माँ से जाकर कहा—"अच्छा माँ मैं तुम्हारा कहना मान लूँगा। विवाह करने के लिए तैयार हूँ।

माँ ने मन ही मन कहा—"समझ गयी, उस दिन मझली बहू किसलिए अचानक अपनी बहिन की लड़की को देखने चली गयी और महेन्द्र भी सज धज कर घरसे निकल पड़ा।"

उनके बार-बार के अनुरोधों की अपेक्षा अन्नपूर्णा का षड्यन्त्र ही जो सफल हो गया इससे वे समूचे विश्वविधान पर ही रुष्ट हो उठीं। कहा, "एक अच्छी लड़की की खोज में लगी हूँ।"

महेन्द्र ने आशा का उल्लेख करके कहा—"लड़की तो मिल गयी।"

राजलक्ष्मी ने कहा—"उस कन्या से काम न चलेगा, बेटा, मैं पहले ही बतला रही हूँ।"

महेन्द्र ने यथेष्ट संयत भाषा में कहा—"क्यों माँ, लड़की तो बुरी नहीं है।"

राजलक्ष्मी—उसके तीन कुलों में कोई आगे पीछे नहीं है। उसके विवाह करने से मेरे कुटुम्ब का कौन-सा सुख बढ़ेगा।

महेन्द्र--कुटुम्ब का सुख न होने पर भी मैं तो दुख में न रहूँगा। किन्तु मुझे तो लड़की बहुत ही अच्छी जँची है।

लड़के की जिद्द देखकर राजलक्ष्मी का चित्त और भी कठिन हो उठा। अन्नपूर्णा से जाकर कहा—"माँ बाप के बिना कुलच्छणी कन्या से मेरे एकलौते लड़के का विवाह कराकर तुम मेरे लड़के को मेरे पास से हटा देना चाहती हो? इतनी शैतानी?"

अन्नपूर्णा ने रोकर कहा—"महीन के साथ विवाह की तो बातचीत नहीं हुई उसने ही अपनी इच्छा से तुमसे क्या-क्या कहा यह तो मुझे मालूम नहीं।"

महेन्द्र की माँ को इस बात पर जरा भी विश्वास नहीं हुआ। तब अन्नपूर्णा ने बिहारी को बुलाकर अश्रुपूर्ण आँखों से कहा—"तुम्हारे ही साथ तो सब ठीक किया गया था, फिर उलट-पुलट कर दी? फिर तुमको ही सहमत होना पड़ेगा। तुम उद्धार न करोगे तो मैं बड़ी ही लज्जा में पड़ जाऊँगी। लड़की बड़ी ही लक्ष्मी है। तुम्हारे लिए अयोग्य न होगी।'

बिहारी ने कहा—चाची, यह बात बतानेकी जरूरत नहीं है। तुम्हारी बहिन की लड़की है तो मेरे सहमत होने का सवाल ही नहीं उठता। किन्तु महेन्द्र—।"

अन्नपूर्णा ने कहा—"नहीं बेटा, महेन्द्रके साथ उसका विवाह किसी तरह भी नहीं हो सकता मैं तुमसे सच्ची बात कह रही हूँ, तुम्हारे साथ विवाह हो जाने से ही मैं सर्वापेक्षा निश्चिन्त हो

जाऊँगी। महीन के साथ विवाह सम्बन्ध में मेरी सम्मति नहीं है।"

बिहारी ने कहा—"चाची, यदि तुम्हारी राय नहीं है तब तो दूसरी बात की जरूरत ही क्या है ?"

यह कहकर वह राजलक्ष्मी के पास जाकर बोल उठा—"माँ, चाची कि बहिन की लड़की के साथ मेरा विवाह ठीक हो गया है। मेरे घर पर तो आत्मीय-स्वजन दूसरा कोई भी नहीं है, लाज टोकरी में रखकर स्वयं यह खबर सुनाने की जरूरत पड़ी।"

राजलक्ष्मी—क्या कह रहे हो बिहारी ! मैं बहुत ही खुश हुई। लड़की बहुत ही लक्ष्मी है। तेरे योग्य खूब ठीक है। इस लड़की को हाथ से बाहर न जाने देना।

बिहारी—हाथ से कैसे निकल जायगी ? महीन भैया ने स्वयं चुनकर पसन्द करके मेरे साथ विवाहकी बातचीत पक्की कर दी है।

इन सब बाधा-विघ्नोंसे महेन्द्र दुगुना उत्तेजित हो उठा। माँ और चाची से नाराज होकर वह एक दीन-हीन छात्रावास में जाकर रहने लगा।

रोती हुई राजलक्ष्मी अन्नपूर्णा के कमरे में हाजिर हुई। कहा—"बहू, मालूम होता है कि उदास होकर मेरे लड़के ने घर छोड़ दिया, उसकी रक्षा करो।"

अन्नपूर्णा ने कहा—"बहिन, कुछ धीरज रखो, दो दिन बीतने पर उसका क्रोध दूर हो जायगा।"

राजलक्ष्मी ने कहा—"तुम उसे नहीं जानती, जिस चीज को वह चाहने लगता है वह यदि उसे न मिले, तो जो ही मन में आ जाय वही कर बैठेगा। जैसे हो हो तुम्हारी बहिन की लड़की के साथ—"

अन्नपूर्णा—बहिन, यह अब कैसे हो सकेगा ? बिहारी से ब्याह की बातचीत पक्की हो चुकी है।

राजलक्ष्मी ने कहा—"उसे भङ्ग होने में कितनी देर लगेगी ?"

यह कहकर बिहारी को बुलाकर कहा—"बेटा तुम्हारे लिए अच्छी पात्री ढूँढ़ लेती हूँ, उस लड़की को तो छोड़ ही देना पड़ेगा, यह तुम्हारे योग्य ही नहीं है।"

बिहारी ने कहा—"नहीं माँ, यह नहीं हो सकता। सब बात एकदम ठीक हो चुकी है।"

तब राजलक्ष्मी ने अन्नपूर्णा के पास जाकर कहा—"मेरी कसम, मेरे सर की सौगन्ध बहू जी, तुम्हारे पैरों पर पड़ती हूँ, तुम यदि बिहारी से कह दो तो काम बन जाय।"

अन्नपूर्णा ने बिहारी से कहा—"बिहारी, तुमसे कुछ कहने की कोई बात मेरे मुँह से नहीं निकल रही है। किन्तु क्या करूँ, तुम ही बताओ। आशा तुम्हारे हाथ पड़ती तो मैं खुश होती, किन्तु तुम तो सब बातें जानते हो—"

बिहारी—समझ गया, चाची। तुम जो आदेश करोगी वही होगा। किन्तु फिर कभी किसी से ब्याह करनेका अनुरोध मुझसे न करना।

ये बातें कहकर बिहारी चला गया। अन्नपूर्णाकी आँखें आँसू से डबडबा उठीं, महेन्द्र के कल्याण की आशंका से उसे पोंछ डाला। बार बार मन जो समझाया—जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ।

इस प्रकार राजलक्ष्मी, अन्नपूर्णा और महेन्द्र के बीच निष्ठुर निगूढ़, नीरव घात प्रतिघात चलते-चलते विवाह का नियत दिन आ गया। बत्तियों की जगमगाहट हुई, मधुर शहनाई बज उठी, मिठाइयों में मिठास की मात्रा जरा भी कम न डाली गयी।

सुसज्जित सुन्दर शरीर लिये, लज्जित मुग्ध मुख के साथ आशा ने अपने नये संसार में प्रथम पदार्पण किया। उसके इस गृह के अन्दर कहीं भी किसी तरह का कोई कंटक है, यह उसका कम्पित कोमल हृदय अनुभव न कर सका, किन्तु यह समझकर

कि जगत् में एकमात्र मातृस्थानीया अन्नपूर्णा के पास आयी हूँ, उसे आश्वासन मिला और हर तरह का भय और संशय दूर हो गया।

विवाह के बाद राजलक्ष्मी ने महेन्द्र को बुलाकर कहा—"मैं चाहती हूँ कि अब दुलहिन को कुछ दिनों के लिए उसके चाचा के घर पर भेज दिया जाय, वहाँ ही कुछ दिन बिता आये।"

महेन्द्र ने पूछा—"क्यों माँ ?"

माँ ने कहा—"इस बार तुम्हारी परीक्षा आ गयी है। पढ़ाई में बाधा पड़ सकती है।"

महेन्द्र—क्या मैं बच्चा हूँ ? अपना भला बुरा समझकर नहीं चल सकता ?

राजलक्ष्मी—ऐसा भी हो तो क्या बेटा, और एक ही वर्ष की तो बात है।

महेन्द्र ने कहा—यदि दुलहिन के घर पर माँ, बाप या और कोई रहता तो उनके पास भेजने में मुझे कोई आपत्ति न होती, किन्तु चाचा के मकान पर मैं उसे नहीं रख सकता।

राजलक्ष्मी—(मन ही मन) वाह वाह ! ये ही मालिक हैं, सास कुछ भी नहीं है। कल ही विवाह हुआ और आज ही इतनी पीड़ा उत्पन्न हुई। हम लोगों का भी तो एक दिन विवाह हुआ था, किन्तु ऐसी स्त्रैणता और ऐसी निर्लज्जता तो उन दिनों नहीं थी।

महेन्द्र ने खूब जोर देकर कहा—"कुछ भी चिन्ता मत करो माँ, परीक्षा की कुछ भी हानि न होगी।"

—:०:—

४

तब राजलक्ष्मी ने हठात् बड़े उत्साह के साथ पतोहू को घर-गृहस्थी का काम सिखाना शुरू किया। भंडार घर, रसोई घर, ठाकुर-घर आदि में आशा का सारा दिन बीत जाता और रात को उसे अपने बिस्तर पर सुलाकर राजलक्ष्मी उसके आत्मीय-वियोग की क्षतिपूर्ति करने लगीं।

बहुत कुछ सोच विचारकर अन्नपूर्णा अपनी बहिन की लड़की से दूर ही रहा करती थीं।

जब कोई प्रबल अभिभावक ईख का समूचा रस एकदम चूस-चूसकर चखता चला जाता है तब सामने ही यह दृश्य देखने वाले घबराये हुए बालक का क्षोभ उत्तरोत्तर जिस तरह असह्य हो उठता है, महेन्द्र की भी वही दशा हो गयी। ठीक उसकी आँखों के सामने ही नवयौवना नववधू का सारा मीठा रस केवल घर-गृहस्थी की पिसाई में ही पिसता चला जायगा, क्या यह सहन किया जा सकता है ?

महेन्द्र ने अन्नपूर्णा से जाकर कहा—"चाची, माँ बहू को जिस तरह मिहनत करा करा कर तङ्ग कर रही हैं, मैं तो यह देख नहीं सकता।"

अन्नपूर्णा जानती थीं कि राजलक्ष्मी बहुत ही ज्यादती कर रही हैं, किन्तु वह भाव छिपाकर प्रकट रूप में बोलीं—"क्यों महीन ! बहू को तो घर-गृहस्थी का कामकाज सिखाया जा रहा है, अच्छा ही है। आजकल की लड़कियों की तरह केवल उपन्यास पढ़कर, कार्पेट बुन कर बाबूगिरी करने में लगा रहना क्या अच्छा कहा जायगा ?"

महेन्द्रने उत्तेजित होकर कहा—"आजकल की लड़कियाँ आज-कल की ही लड़कियों की तरह होंगी, चाहे यह अच्छा समझ

जाय या बुरा मेरी स्त्री यदि मेरी ही तरह उपन्यास पढ़कर रसास्वादन कर सके तो उसमें मैं परिताप या परिहास की बात तो कुछ भी नहीं देख पाता।"

अन्नपूर्णा के कमरे में लड़के का कंठ-स्वर सुनकर राजलक्ष्मी सब काम छोड़कर वहाँ आ धमकीं। तीखी आवाज में पूछा—"क्या; तुम लोगों में किसी तरह का क्या परामर्श हो रहा है?"

महेन्द्र ने उत्तेजित भाव से ही कहा—"परामर्श कुछ भी नहीं मां, बहू को घर के काम में दासी की तरह लगी न रहने दूंगा।"

मां ने अपने उभड़े हुए क्रोध को रोककर अत्यन्त तीक्ष्ण किन्तु धीर-भाव से कहा—'उसको लेकर क्या करना पड़ेगा।"

महेन्द्र ने उत्तर दिया—'मैं उसे लिखना-पढ़ना सिखाऊँगा।,,

कुछ भी उत्तर न देकर राजलक्ष्मी तेजी से चली गयीं और क्षणभर में बहू का हाथ पकड़े खींचती हुई महेन्द्र के सामने लाकर कहा—'यह लो अपनी स्त्री को तुम लिखना-पढ़ना सिखाओ।'

यह कहकर अन्नपूर्णा की ओर घूमकर हाथ जोड़कर कहा—"माफ करो बहू, मुझे माफ करो, मैंने तुम्हारी लड़की की मर्यादा नहीं समझी। उसके कोमल हाथों में मैंने हलदी का दाग लगा दिया है। अब तुम उसे धो पोंछ कर बीबी बनाकर महीन को दे दो—वे पैर पर पैर रखकर लिखना-पढ़ना सीखें, दासी वृत्ति करने के लिए मैं तो हूँ ही।"

यह कहकर राजलक्ष्मी ने अपने कमरे में प्रवेश करके धड़ाके के साथ किवाड़ बन्द कर दिये।

क्षोभसे अन्नपूर्णा नीचे जमीन पर बैठ गयीं। इस आकस्मिक गृहविप्लव का कोई तात्पर्य न समझ कर आशा लज्जा, भय और दुःख से विवर्ण हो उठी। अत्यन्त रुष्ट होकर महेन्द्र ने मन-ही-मन कहा—"अब नहीं, अपना बोझा भार अपने ही हाथ में लेना होगा, नहीं तो अन्याय होगा।"

इच्छा के साथ कर्तव्य-बुद्धि का मेल होनेके साथ ही हवा के साथ आग लग गयी। कहाँ चला गया कालेज, कहाँ गया परीक्षा, कहाँ मित्रमिलन और कहाँ सामाजिकता; स्त्री की उन्नति करने के लिए महेन्द्र उसे लेकर अपने कमरे में चला गया—काम की तरफ़ या और लोगों की तरफ उसने निगाह भी न दौड़ायी।

अभिमानिनी राजलक्ष्मी ने मन ही मन कहा—"महेन्द्र यदि फिर भी अपनी दुलहिनके साथ मेरे दरवाजे पर प्राण त्याग करने पर तैयार हो जाय तो उसकी ओर न देखूँगी। देखती हूँ कि वह अपनी माँ को छोड़कर स्त्री के साथ किस तरह समय बिताता है।"

दिल ढलता चला गया, किन्तु दरवाजे पर किसी भी अनुतप्त की पदध्वनि नहीं सुनाई पड़ी।

राजलक्ष्मी ने निश्चय किया, क्षमा माँगने आवेगा तो क्षमा कर दूँगी।

क्षमा की अर्जी नहीं आयी। तब राजलक्ष्मी ने निश्चय किया कि स्वयं जाकर क्षमा कर आऊँगी। लड़के ने अभिमान किया तो क्या माँ भी अभिमान कर पड़ी रहेगी?

तिमञ्जिले मकान की छत के एक कोने में एक छोटे कमरे में महेन्द्र के शयन और अध्ययन का स्थान है। इन कुछ दिनों से माँ ने उसके कपड़े, बिस्तर हटाने, झाड़कर फिर बिछाने, कमरे की सफाई आदि पर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया। कुछ दिनों तक लगातार मातृ-स्नेह के चिरभ्यस्त कर्तव्यों का पालन न करने से उनका हृदय दूधसे भरे स्तनों की भाँति भीतर-ही-भीतर व्यथित हो उठा। उस दिन दोपहर को उन्होंने सोचा—"महेन्द्र अब तक कालेज चला गया होगा, इस मौके पर उसका कमरा ठीक कर आऊँ—कालेज से लौटते ही वह समझ जायगा कि उसके कमरे में माता का हाथ पड़ा है।"

राजलक्ष्मी सीढ़ियों से ऊपर चढ़ गयीं। महेन्द्र के शयनागार

का एक दरवाजा खुला पड़ा था, उसके सामने पहुँचते ही अचानक मानो काँटा बिंध गया, चकित होकर खड़ी हो गयीं। देखा कि महेन्द्र अपने बिस्तर पर सोया पड़ा है और दरवाजे की तरफ पीठ करके वहू धीरे धीरे उसका पैर सुहरा रही है। मध्याह्न के प्रखर आलोक में खुले दरवाजे में दाम्पत्य-लीला का यह अभिनय देख राजलक्ष्मी लज्जा और धिक्कार से संकुचित होकर चुपचाप नीचे उतर आयीं।

———

५

कुछ दिनों तक लगातार वर्षा न होने से जो फसल सूखकर पीली पड़ जाती है, वर्षा का जल पाते ही वह फिर देर नहीं करती—जल्द ही बढ़कर बहुत दिनों तक अनाहार रहने की अपनी कमजोरी हटा देती है, दुर्बल नतभाव छोड़कर खेतों के बीच बिना संकोच के संशयरहित भाव से अपने अधिकार को उन्नत और उज्वल बना देती है, आशा की भी ठीक वहीं हालत हुई। जहाँ उसका रक्त सम्बन्ध था, वहाँ कभी उसे आत्मीयता का सुख पाने की माँग करने का अवसर नहीं मिला। किन्तु अब दूसरे के घर आकर जब उसे बिन माँगे ही एक निकटतम सम्बन्ध और असन्दिग्ध अधिकार प्राप्त हुआ, जब उस बिना यत्न की लालिता अनाथा के मस्तक पर पति ने अपने ही हाथों से लक्ष्मी का मुकुट पहिना दिया, तब उसने अपने गौरवपद को ग्रहण करने में लेशमात्र भी विलम्ब नहीं किया,—नववधू योग्य लज्जा भय हटाकर सौभाग्यवती स्त्री की महिमा से मुहूर्त भर में ही पति के पदप्रान्त में उसने बिना संकोच के अपना सिंहासन अधिकार कर लिया।

राजलक्ष्मी उस दिन दोपहर को उस सिंहासन पर इस नवागता पराची लड़की को इस तरह चिराभ्यस्ता की भाँति स्पर्धा के साथ बैठी देख दुस्सह आश्चर्य में पड़कर नीचे उतर आयीं। अपने क्रोध की अग्निसे अन्नपूर्णा को जलाने लगीं। उससे कहा—' देखो तो भला, तुम्हारे नवाब की लड़की नवाब के घर से क्या सीख आयी है। यदि मालिक लोग जीते न रहते तो आज—"

अन्नपूर्णा ने कातर होकर कहा—"जीजी, अपनी बहू को तुम शिक्षा दोगी, शासन में रखोगी, मुझे क्यों दोष दे रही हो।"

राजलक्ष्मीने क्रोधसे गरजकर कहा—' मेरी बहू ? तुम जैसी मंत्रिणी के रहते वह क्या मेरा कुछ भी उपदेश मानेगी !"

तब अन्नपूर्णा धम:-धम कदम बढ़ाती हुई दम्पतिको सचकित सचेतन करके शयन गृह में जा पहुँची। आशा से कहा—"क्या तू इसी प्रकार मेरा सिर नीचा करती रहेगी, कलमुँही ? लाज नहीं है, शर्म नहीं रही, समय नहीं, असमय नहीं, बूढ़ी सास पर सब गृहस्थीका कामकाज छोड़कर तुम यहाँ आराम कर रही हो ? मेरा भाग्य फूट गया कि मैं तुम्हें इस घरमें ले आयी !"

ये बातें कहते-कहते उनकी आँखों से आँसू झरने लगे। आशा भी मुँह नीचे झुका आँचल समेटती हुई चुपचाप खड़ी होकर रोने लगी।

महेन्द्र ने कहा—"चाची, तुम बहू की भर्त्सना क्यों कर रही हो ? मैंने ही तो उसे पकड़कर यहाँ रखा है।"

अन्नपूर्णा ने कहा—"यह क्या तुमने कोई अच्छा काम किया है ? यह बेचारी अनाथा बालिका है, माता से कभी किसी दिन उसे किसी तरह की शिक्षा नहीं मिली। वह भले बुरे की क्या पहचान कर सकती है ? तुम उसे कैसी शिक्षा दे रहे हो ?"

महेन्द्र ने कहा—"यह देखो, इसके लिए स्लेट, कापी, पुस्तकें

खरीद लाया हूँ। मैं इसे लिखना पढ़ना सिखाऊँगा। लोग चाहे निन्दा करें या तुम लोग रुष्ट क्यों न हो जाओ!"

अन्नपूर्णा ने कहा—"तो क्या सारा दिन सिखाया जाता है। सन्ध्या के बाद एकाध घंटा पढ़ाने से भी तो बहुत काम निकल सकता है।"

महेन्द्र—इतना सहज नहीं है चाची, लिखने पढ़ने में कुछ समय लगाने की जरूरत पड़ती है।

अन्नपूर्णा रुष्ट होकर कमरे से बाहर निकल गयीं। आशा भी धीरे-धीरे उनका ही अनुसरण करने पर उद्यत हो गयी—महेन्द्र रास्ता रोककर दरवाजे के बीच खड़ा हो गया—आशा के करुण सजल नेत्रों का कातर अनुनय उसने नहीं माना। कहा—"बैठ जाओ, सोकर जो समय नष्ट कर दिया उसकी पूर्ति तो होनी चाहिये।"

पाठकोंमें ऐसे भी बहुत से गम्भीर स्वभाव वाले श्रद्धेय मूढ़ होंगे जो समझेंगे कि महेन्द्रने नींद में पड़कर समय नष्ट किया है—विशेषतः ऐसी समझ के लोगों को ही समझाने के लिए यह बता देना जरूरी है कि महेन्द्र के तत्वावधान में जो अध्यापन-कार्य्य सम्पन्न होता है, उसका अनुमोदन कोई भी स्कूलका इन्स्पेक्टर नहीं कर सकता।

आशाने अपने पति पर विश्वास किया था, सचमुच ही उसने सोचा था कि लिखना-पढ़ना सीखना उसके लिए अनेक कारणों से सहज तो जरूर ही नहीं है, किन्तु पति की आज्ञा के कारण परम कर्तव्य है। इसलिए वह जी-जान से अपने अशान्त विक्षिप्त मन को संयत कर लेती, शयन गृहके फरश पर बिछे हुए बिस्तर के एक छोर पर अत्यन्त गम्भीर होकर वह बैठ जाती और पोथी कागज की ओर एकदम झुककर सिर हिला-हिलाकर सबद याद

करने में तन्मय हो जाती। शयन-गृह के दूसरे छोर पर छोटी मेज पर डाक्टरी किताब खोलकर मास्टर साहब बैठे हुए हैं, बीच-बीच में तीखी नजरों से, छात्रा ध्यान से मन लगाकर पढ़ रही है या नहीं इस पर गौर कर लेते हैं! देखते-देखते हठात् डाक्टरी की किताब बन्द करके आशा की पुकार के नाम से एक दिन उन्होंने पुकारा–"चुन्नी" चकित आशाने मुँह उठाकर देखा। महेन्द्र ने कहा—"यहाँ किताब लेकर आओ तो—देखूँ तो किस जगह पढ़ रही हो।"

आशा डर गयी, ऐसा न हो कि महेन्द्र जाँच शुरू कर दें। परीक्षा में उत्तीर्ण होने की आशा कम ही थी। क्योंकि चारु पाठ के चारुत्व-प्रलोभन में उसका अबाध्य मन किसी तरह भी नहीं लगता। वह दीमकके सम्बन्ध में जितनी ही जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करती अक्षर उसके दृष्टिपथ के ऊपर से मानो चींटियों की पांतों की तरह दिखाई पड़ने लगते।

परीक्षक की पुकार सुनकर आशा अपराधी की भाँति भयभीत होकर किताब लिये महेन्द्र की कुर्सी के पास हाजिर हो जाती। महेन्द्र एक हाथ से उसकी कमर लपेट दूसरे हाथ से पुस्तक पकड़कर कहता—"आज कितना पाठ याद किया? देखूँ तो।" जितनी पाँतों पर नजर दौड़ी थी, उन्हें आशा दिखा देती। महेन्द्र क्षुब्ध स्वर में कहता—"उ इतना पढ़ सकी हो? मैंने कितना पढ़ा है देखोगी?" यह कहकर अपनी डाक्टरी की किताब के किसी एक अध्याय का शीर्षक मात्र दिखला देता। आश्चर्य में पड़कर आशा आँखें फाड़कर बोल उठती—"तो अब तक तुम क्या करते रहे हो?" महेन्द्र उसकी ठुड्डी पकड़कर कहता—"मैं किसी की बातें सोच रहा था, वह निष्ठुर इस समय चारु पाठ में चींटियों और दीमकों का अत्यन्त मनोहर विवरण पढ़ने में निमग्न है।" इस भ्रममूलक अभियोग के खंडन में आशा उपयुक्त

उत्तर दे सकती थी—किन्तु हाय, केवल लज्जा में पड़कर प्रेमकी प्रतियोगिता में अन्याय पराभव उसे चुपचाप मान लेना पड़ा।

इन बातों से यह स्पष्ट रूप से मालूम हो जायगा कि महेन्द्र का यह स्कूल सरकारी या गैर सरकारी किसी भी विद्यालय का कोई भी नियम मानकर नहीं चलता।

इसी तरह पढ़ाई चलने लगी। एक दिन महेन्द्र उपस्थित नहीं था, आशा सबक याद करने में लगी रही। ऐसे ही समय में न मालूम कहाँ से महेन्द्र आ पहुँचा, उसकी किताब उसने छीन ली और कहा-"निष्ठुर, मैं नहीं रहता तब तुम मेरी बात कुछ नहीं सोचती, सबक याद करने में लगी रहती हो!"

आशा ने कहा—तुम मुझे बराबर मूर्ख बनाये रखोगे।"

महेन्द्र ने कहा—तुम्हारी कृपा से मेरी भी बुद्धि कौन बड़ी तेजी से बढ़ रही है?"

यह बात हठात् आशा को लग गयी—वह तुरन्त ही चली जाने को तैयार हो गयी और बोली—"मैं तुम्हारी पढ़ाई में कौन सी रुकावट डाल रही हूँ?"

महेन्द्र ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—"तुम यह बात कैसे समझोगी, मुझे छोड़कर तुम जितनी सहूलियत से लिख पढ़ सकती हो, तुम्हें छोड़कर मैं तो इतनी सहूलियत से नहीं लिख पढ़ सकता।"

इतना बड़ा दोषारोप! इसके बाद स्वभावतः ही शरत्काल की वर्षा की झड़ी की भाँति रोना शुरू हो जाता और बहुत जल्द ही क्षण भर में केवल एक सजल उज्वलता रखकर सोहाग के सूर्यालोक में विलीन हो जाता।

शिक्षक ही यदि शिक्षा का सर्व प्रधान बाधक हो जाय तो अबला छात्रा में इतना सामर्थ्य कहाँ कि विद्यारण्य के बीच से रास्ता निकाल कर चले। कभी-कभी मौसी की डाट-फटकार

सुनकर चित्त विचलित हो उठता—समझ लेती कि लिखना-पढ़ना एक खेल मात्र है, सास को देखते ही लज्जा से दब जाती किन्तु सास उसे कोई काम करने को नहीं कहती, कोई उपदेश नहीं देती, बिना बुलाये या बिना हुक्म के यदि वह सास के घरेलू काम काज में मदद देने जाती तो वे घबराकर कहती—क्या करती हो, क्या करती हो, सोने के कमरे में जाओ, तुम्हारी पढ़ाई का हर्ज हो रहा है।"

अन्त में अन्नपूर्णा ने आशा से कहा—"तुम्हारी जो पढ़ाई हो रही है, वह तो मैं देख रही हूँ, अब क्या महीन को भी डाक्टरी न पास करने दोगी?"

यह सुनकर आशा ने अपने मन को अति कठोर बना लिया। महेन्द्र से कहा—"तुम्हारी परीक्षा निकट है, पढ़ाई तो कुछ भी नहीं हो रही है—आज से मैं नीचे मौसीके ही कमरे में रहूँगी।"

इस अवस्था में इतना बड़ा संन्यासव्रत! शयनागार से एक-दम मौसी के कमरे में आत्म-निर्वासन! यह कठिन प्रतिज्ञा मुँह से उच्चारण करते समय उसकी आँखों के कोने में आँसू उमड़ पड़े, छोटे छोटे अधर काँपने लगे और कण्ठस्वर प्रायः रुद्ध हो चला।

महेन्द्र ने कहा—"ऐसा ही करो, चलो चाची के ही कमरे में डेरा डाला जाय, किन्तु ऐसा होने से उनको ऊपर हम लोगों के कमरे में आ जाना पड़ेगा।"

इतने बड़े उदार गम्भीर प्रस्तावसे परिहास प्राप्त करके आशा नाराज हो गयी। महेन्द्र ने कहा—"इससे तो बेहतर यही है कि तुम स्वयं दिन-रात मुझे अपनी आँखों के सामने रखकर पहरा देती रहो और देखती रहो कि मैं परीक्षा की तैयारी करता हूँ या नहीं।"

अति सहज में ही यही बात निश्चित हुई। आँखों से निगरानी

रखकर पहरे का काम किस तरह पूरा होता था, उसका विस्तृत विवरण देना अनावश्यक है—केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उस साल महेन्द्र परीक्षा में असफल रहा और, चारु पाठ के विस्तृत वर्णन से परिचय प्राप्त करके भी दीमक के सम्बन्ध में आशा की अनभिज्ञता दूर नहीं हुई।

इस तरह का अपूर्व पठन-पाठन सम्पूर्ण निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हुआ था, ऐसा नहीं कहा जा सकता। बीच-बीच में आकर बिहारी गड़बड़ी मचा दिया करता था। महीन भैया, कहकर वह मुहल्लों को गुञ्जित कर देता था। महेन्द्र को शयन-गृह के विवर से खींचकर बाहर लाये बिना कदापि चैन न लेता। पढ़ाई में ध्यान नहीं दे रहे हो, यह कहकर वह महेन्द्र की बड़ी भर्त्सना किया करता। आशा से कहता—"भाभी, निगल जाने से अन्न हजम नहीं होता, चबा-चबाकर खाया जाता है—अब सारा अन्न एक ही ग्रास में निगल रही हो, इसके बाद फिर पाचक गोलियाँ तुम्हें खोजने पर न मिलेंगी।" महेन्द्र कहा करता—"चुन्नी, यह बात मत सुनो—बिहारी हमारा सुख देखकर द्वेष कर रहा है।"

बिहारी कहता "जब सुख तुम्हारे ही हाथ में है तब तो तुम इसे इस प्रकार भोग करो जिससे दूसरों के मन में द्वेष न उत्पन्न हो।"

महेन्द्र उत्तर देता—"दूसरोंका द्वेष पाने में भी सुख मिलता है, चुन्नी, बहुत ही थोड़ी कसर रह गयी थी, मैं तो गधे की भाँति तुम्हें बिहारी के हाथ में सौंप चुका था।"

बिहारी ने क्रोध से लाल होकर कहा—"चुप।"

इन सब बातों से आशा मन ही मन बिहारी से रुष्ट हो उठती। किसी समय बिहारी के साथ उसके ब्याह की बातचीत हुई थी, इस कारण ही बिहारी के प्रति उसके मन से एक प्रकार

का विमुख भाव मौजूद रहता था। बिहारी यह समझता था और महेन्द्र इससे मौज लेता था।

राजलक्ष्मी बिहारी को बुलाकर शोक प्रकट करतीं। बिहारी कहता—"माँ, जब कीड़े गुठली में बँध जाते हैं, तब उतना भय नहीं रहता किन्तु जब काटकर उड़ जाते हैं, तब लौटाना कठिन हो जाता है। कौन जानता था कि वह तुम्हारे बन्धन को इस तरह काट देगी।"

महेन्द्र के फेल हो जाने की खबर से राजलक्ष्मी ग्रीष्मकालीन आकस्मिक अग्निकाण्ड की भाँति काँप कर जल उठीं, किन्तु उनके गर्जन और दाहन का फल पूर्ण रूप से अन्नपूर्णा ने भोग किया। उनका खाना-पीना, सोना, विश्राम करना सब दूर चला गया।

६

एक दिन नववर्षा के वर्षणोन्मुख बादलों से घिरे हुए सन्ध्या-काल में एक सुवासित फुरफुरी चादर और एक मालती की माला पहिनकर महेन्द्र ने प्रफुल्ल चित्त से शयनकक्ष में प्रवेश किया। अचानक आशा को आश्चर्य में डाल दूँगा यह सोच कर उसने जूते की आहट न मालूम होने दी। कमरे में झाँककर देखा कि पूरब की खुली खिड़की से प्रबल हवा वर्षा के झकोरे लेकर कमरे में पहुँच रही है—हवा के झकोरे से दीप बुझ गया है और आशा नीचे के बिस्तर पर पड़ी हुई अव्यक्त कष्ट से रो रही है।

महेन्द्र ने तेजी से कदम बढ़ाकर कमरे में जाकर पूछा, "क्यों क्या हो गया है ?"

बालिका दुगुने आवेग से रो उठी। बड़ी देर के बाद महेन्द्र को धीरे-धीरे उत्तर मिला कि यहाँ की हालत को असह्य समझ-कर मौसी अपने फुफेरे भाई के यहाँ चली गयीं।

महेन्द्रको बड़ाही क्रोध आया, उसने सोचा—"चली तो गयीं, बादलों की घनघोर घटा वाली ऐसी आनन्दपूर्ण रात को मिट्टी में मिला गयीं!"

अन्त में यह सारा क्रोध माता पर जा गिरा। वे ही सब अशान्ति की जड़ हैं! महेन्द्र ने कहा—"चाची जहाँ चली गयीं, चलो हम लोग भी वहीं चलें, देखूँगा कि माँ किसके साथ झगड़ा करती हैं।"

इतनी बातें कहकर, व्यर्थ का हल्लागुल्ला मचा माल असबाब बाँधने, समेटने और मजदूर बुलाने में लग गया।

रामलक्ष्मी सब बात समझ गयीं। धीरे धीरे महेन्द्र के पास आकर शान्त स्वर में उन्होंने पूछा, "कहाँ जा रहे हो!"

महेन्द्र ने पहले तो कुछ भी उत्तर नहीं दिया। दो तीन बार पूछे जाने पर बोला, "चाची के पास जाऊँगा।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तुम लोगों को कहीं भी न जाना पड़ेगा, मैं यहीं तुम्हारी चाची को बुला लाती हूँ।"

यह कहकर तुरत ही पालकी पर सवार होकर वे अन्नपूर्णा के डेरे पर पहुँच गयीं, गले में आँचल लपेटकर हाथ जोड़कर बोलीं—"प्रसन्न हो जाओ बहू, माफ करो।"

घबड़ाकर अन्नपूर्णा उठ खड़ी हुई और राजलक्ष्मी के पैरों की धूलि लेकर कातर स्वरमें बोलीं—"जीजी, मुझे किस कारण अपराधिनी बना रही हो, तुम जो भी आज्ञा दोगी, मैं वही करूँगी।"

राजलक्ष्मीने कहा—"तुम चली आयी हो, इससे रुष्ट होकर मेरा लड़का पतोहू दोनों घर छोड़कर चले जाने को तैयार हैं।"

यह कहते-कहते अभिमान, क्रोध और धिक्कार से वे रो उठीं।

दोनों ही घर लौट आयीं। वर्षा हो रही थी। अन्नपूर्णा जब महेन्द्र के कमरे में गयीं तबतक आशा का रोना-धोना बन्द हो गया था और महेन्द्र तरह-तरह की बातों से भुलावा देकर उसे हँसाने की कोशिश में लगा था। लक्षणों से मालूम हो रहा था कि बादलों से घिरी रात निरर्थक न होगी।

अन्नपूर्णा ने कहा—"चुन्नी, तुम मुझे घर पर भी न रहने दोगी, दूसरी जगह जाऊँगी तो वहाँ भी जान न छोड़ोगी। क्या मुझे दुनिया में कहीं भी शान्ति न मिलेगी?"

आशा अकस्मात् विद्ध मृगकी भाँति चकित हो उठी।

महेन्द्र ने बहुत ही रुष्ट होकर कहा—"क्यों चाची, चुन्नी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

अन्नपूर्णा ने कहा—"नयी दुलहिन की इतनी निर्लज्जता मैं नहीं देख सकती, इस कारण ही चली गयी थी। फिर सास को रुलाकर मुझे पकड़कर क्यों लायी कलमुँही?'

महेन्द्र को पहले यह बात मालूम नहीं थी कि जीवनके रस-विलास के प्रथम अध्यायमें माँ-चाची दोनों बाधक सिद्ध होंगी।

दूसरे दिन राजलक्ष्मी ने बिहारी को बुला भेजा और कहा—"बेटा! तुम एक बार महीन से कह दो कि माँ बहुत दिनों से अपने नैहर नहीं गयीं, अब फिर एक बार अपने गाँव जाना चाहती हैं।"

बिहारी ने कहा—"जब बहुत दिनों से जाना नहीं हुआ तो अब न जाने से भी तो कोई हर्ज न होगा! अच्छा, मैं महीन भैया से एक बार कहता हूँ, किन्तु वह किसी तरह भी राजी होगा, ऐसा नहीं मालूम होता?"

महेन्द्र से बिहारी ने यह बात खोल दी तो उसने कहा—"ठीक है। जन्म स्थान देखनेकी इच्छा स्वाभाविक है, किन्तु वहाँ अधिक

दिनों तक न रहना ही अच्छा होगा, बरसात के लिए वह जगह अच्छी नहीं है।"

महेन्द्र ने सहज में ही सम्मति दे दी, इससे बिहारी रुष्ट हुआ। कहा—"माँ अकेली जायँगी, उन्हें कौन देखेगा, कौन उनकी सेवा शुश्रूषा करेगा। भाभी को भी उनके साथ भेज दो न!" यह कहकर मुसकुरा दिया।

बिहारी की गूढ़ भर्त्सना से महेन्द्र ने कुण्ठित होकर कहा—"क्या समझते हो कि यह न कर सकूँगा?" किन्तु इससे अधिक उसके मुँह से और कोई बात नहीं निकली।

इसी तरह के व्यवहारों से बिहारी आशा का हृदय विमुख कर देता और यह समझकर कि आशा मुझसे नाराज हो रही है, उसे मानो एक तरह का सूखा आनन्द मिलता था।

यह बताने की जरूरत नहीं कि अपनी जन्मभूमि देखने के लिए राजलक्ष्मी बहुत उत्सुक नहीं थीं। ग्रीष्मकाल में जब नदी का जल घट जाता है, तब मल्लाह जिस तरह पग-पग पर लग्गी डालकर थाह लेता है कि कहाँ कितना जल है, राजलक्ष्मी भी उसी तरह भावान्तर उपस्थित होने पर माँ-बेटे के सम्पर्क के बीच लग्गी डालकर थाह ले रही थीं। उन्हें ऐसी आशा नहीं थी कि नैहर चले जानेका प्रस्ताव इतना शीघ्र हल हो जायगा। मन-ही-मन उन्होंने कहा—"अन्नपूर्णाके गृहत्याग और मेरे गृहत्याग में फर्क है—वह है मंत्र जाननेवाली डाइन और मैं हूँ केवल माँ, मेरा चला जाना ही अच्छा होगा।"

अन्नपूर्णा भीतर की बातें समझ गयीं, उन्होंने महेन्द्र से कहा—"जीजी चली जायंगी तो मैं भी यहाँ न रह सकूंगी।"

महेन्द्र ने राजलक्ष्मी से कहा—"सुन रही हो माँ? तुम जाओगी तो चाची भी जायँगी, तो फिर यहाँ घर का काम कैसे चलेगा?"

राजलक्ष्मी ने द्वेषविष से जर्जरित होकर कहा—"तुम जाओगी बहू ? क्या यह सम्भव है। तुम चली जाओगी तो यहाँ का काम कैसे चलेगा. तुम्हारा यहाँ रहना जरूरी है।"

राजलक्ष्मी अधिक देर न सहन कर सकीं;दूसरे दिन दोपहर को वे गाँव को जाने के लिए तैयार हो गयीं। बिहारी और दूसरे लोगों को भी इस बात में कुछ भी सन्देह नहीं था कि महेन्द्र ही पहुँचाने के लिए जायगा। किन्तु जब जाने का समय हुआ तब मालूम हुआ कि महेन्द्रने माँ के साथ एक दरबान और मुनीमजी को भेजने का इन्तजाम किया है।

बिहारी ने कहा. "महीन भैया, तुम तो अब तक भी तैयार नहीं हुए।" महेन्द्र ने लज्जित होकर कहा, "मेरी तैयारी तो कालेज की... ।" बिहारी ने कहा, "अच्छा, तुम ठहरो, मैं ही माँ को पहुँचा आऊँगा।"

महेन्द्र मन ही मन रुष्ट हुआ। अकेले में उसने आशा से कहा,–'वास्तवमें बिहारीने ज्यादती शुरू कर दी है. वह दिखाना चाहता है मानो मा का खयाल मुझसे अधिक वही रखता है।" अन्नपूर्णा को रुक जाना पड़ा. किन्तु लज्जा, क्षोभ और क्रोध से वे संकुचित सी हो उठीं। चाची की इस तरह की उदासीनता देखकर महेन्द्र रुष्ट हो उठा और आशा भी गुमानमें पड़ गयी।

७

राजलक्ष्मी अपने जन्मस्थान को पहुँच गयीं। पहले तै हो चुका था कि उनको गाँव में पहुँचा कर बिहारी लौट आवेगा, किन्तु वहाँ की हालत देखकर वह नहीं लौटा।

राजलक्ष्मी के नैहर में दो तीन अति वृद्धा विधवाओं के अतिरिक्त और कोई नहीं था। मकान के चारों तरफ जंगल, घनी बंसवारी थी। पोखरे का जल हरे रङ्ग का था, दिन दहाड़े ही गीदड़ों की चिल्लाहट सुनकर राजलक्ष्मी का चित्त घबराने लगा।

बिहारी ने कहा, "माँ, है तो यह जरूर ही जन्मभूमि, किन्तु इसे 'हम स्वर्गादपि गरीयसी' कदापि नहीं कह सकते। कलकत्ता चलो। यहाँ तुम्हें छोड़कर चला जाऊँगा तो मेरे ऊपर पाप पड़ेगा।"

राजलक्ष्मी को भी सांस लेने का मौका मिला और जान बची! ऐसे ही समय में वहाँ विनोदनी पहुँची और आश्रय दिया।

विनोदिनी का परिचय पहले ही दिया जा चुका है। एक समय था जब महेन्द्र और उसके अभाव में बिहारी के साथ उसके विवाह की बातचीत हुई थी। विधाता के विधान से जिसके साथ उसका शुभ विवाह सम्पन्न हुआ, उसकी सभी अन्तरिन्द्रियों में प्लीहा ही सबसे जबर्दस्त थी। प्लीहा का अत्यन्त भार बढ़ जाने के कारण वह बहुत दिनों तक जीवित न रह सका।

उसकी मृत्यु के बाद से विनोदिनी जंगल में पड़ी एक मात्र उद्यानलता की भाँति निरानन्द गांव में कुम्हिलायी हालत में दिन बिता रही थी। आज उसी अनाथा ने आकर राजलक्ष्मी को भक्तिभाव से प्रणाम किया और उनकी सेवा में आत्म-समर्पण कर दिया।

इसी को सेवा कहते हैं! क्षणकाल के लिए भी आलस्य नहीं है। कैसा सुव्यवस्थित काम, रसोई कितनी सुन्दर, कैसी मीठी बातचीत!

राजलक्ष्मी ने कहा, "ऐसा करते रहनेसे तो तुम बीमार पड़ जाओगी बेटी।"

अपने को बहुत ही तुच्छ दिखलाकर विनोदिनी बोलती—"दुःख से भरे हमारे शरीर में कभी कोई बीमारी नहीं पकड़ती,

बूआ ! अहा, कितने दिनों बाद अपनी जन्मभूमि को आयी हो, यहां क्या है किस चीज से तुम्हारा आदर करूँ ।"

बिहारी दो दिनों में ही मुहल्ले का मालिक बन बैठा। कोई किसी बीमारी की दवा और कोई किसी मुकद्मे में परामर्श करने के लिए आता, कभी कोई अपने लड़के को आफिस में नौकरी दिलाने की कोशिश में आता और कोई उससे दरख्वास्त लिखवा लेता। बूढ़ों के ताश शतरञ्ज के बैठकखाने से लेकर ताड़ी की दूकानों तक सर्वत्र ही वह अपने सकौतुक कौतूहल और स्वाभाविक सहृदयता लेकर आना जाना रखता—कोई भी उसे अपने से दूर का नहीं समझता और सभी उसकी इज्जत करते थे।

इस कुस्थान में पड़े हुए कलकत्ते के इस लड़के के निर्वासन दंड की सजा को यथासाध्य लघु करनेके लिए विनोदिनी अन्तःपुर की ओट से बराबर कोशिश करती रहती थी। गाँव से घूमकर लौटनेके साथ ही प्रत्येक बार ही बिहारी देखता कि किसी ने उसके कमरे को झाड़ पोंछकर साफ सुथरा बना दिया है, एक कांसे के गिलास में दो चार फूल और पत्तों के गुच्छे सजाये हुए हैं और उसकी गद्दी के एक तरफ बङ्किम और दीनबन्धु ग्रन्थावलियाँ सजीसजायी रखी हुई हैं। ग्रन्थ के पहले कवर के भीतरी हिस्सेमें स्त्रियोंकी लिखावटमें 'विनोदिनी'का नाम लिखा हुआ है।

गाँव में जिस तरह के आतिथ्य का प्रचलन है उससे इसमें फर्क था। बिहारी उसीका उल्लेख करके जब प्रशंसा करने लगता तब राजलक्ष्मी कहतीं—"इसी लड़की को तुम लोगों ने ग्रहण नहीं किया ।"

बिहारी हँसकर कहता—"यह काम तो हम लोगों ने अच्छा नहीं किया, हम ठगे गये। किन्तु विवाह न करके ठगा जाना अच्छा है, विवाह करके ठगे जाने से ही दिक्कत है।"

राजलक्ष्मी केवल यही सोचती, "अहा, यही लड़की तो मेरी पतोहू होने योग्य थी। क्यों नहीं हुई ?"

ज्योंही राजलक्ष्मी कलकत्ता लौट जाने की बात कहती त्योंही विनोदिनीकी आँखें छलछला उठतीं। वह कहती, 'बूआ, तुम दो दिन के लिए यहाँ क्यों आयी। जब तुम्हें नहीं जानती थी दिन तो एक तरह कट जाता था, अब तुमको छोड़कर मैं किस तरह रह सकूँगी।"

राजलक्ष्मी मनके आवेगसे बोल उठती, "बेटी तुम मेरे घर में पतोहू क्यों न बनकर आयी, तुझे मैं अपनी छाती में समेट कर रखती।"

यह बात सुनकर विनोदिनी लाज में पड़कर किसी बहाने वहाँ से उठकर चली जाती।

राजलक्ष्मी प्रतीक्षा में थी कि कलकत्ते से कोई निवेदन पत्र आया होगा। जन्म से लेकर आजतक उनका महीन माँ को छोड़कर कभी अलग नहीं रहा—अवश्य ही इतने दिनों में वह माता के वियोग में व्याकुल हो उठा होगा। राजलक्ष्मी अपने लड़के की उसी माँग और उसके अभिमान की उसी चिट्ठी के लिए तृषित हो उठी थीं।

बिहारी को महेन्द्र का पत्र मिला। महेन्द्र ने लिखा था, "माँ शायद बहुत दिनोंके बाद अपने जन्मस्थान में जाकर बहुत ही आराम में होंगी।"

राजलक्ष्मी ने सोचा, "अहा, महेन्द्र ने अभिमान करके लिखा है। आराम में होंगी। अभागी माँ क्या कभी महेन्द्र को छोड़कर कहीं भी सुख से रह सकती है।"

"ऐ बिहारी, इसके बाद महीन ने क्या लिखा है। पढ़कर सुनाओ न बेटा।"

बिहारी ने कहा, "इसके बाद कुछ भी नहीं है माँ"—कहकर

चिट्ठी को मुट्ठी में मींजकर एक पुस्तक में रखकर कमरे के एक कोने में फेंक दिया।

राजलक्ष्मी क्या अब स्थिर रह सकती थीं। अवश्य ही महीन ने माँ से रुष्ट होकर लिखा है जिससे बिहारी ने उसे पढ़कर नहीं सुनाया।

जिस तरह बछड़ा गाय के थन में आघात पहुँचाकर दूध और वात्सल्य का संचार करता है—महेन्द्र के क्रोध ने उसी तरह राजलक्ष्मी को आघात पहुँचाकर उसके अवरुद्ध वात्सल्य को बाहर निकाल दिया था। उन्होंने महेन्द्रको माफ कर दिया। कहा, "अहा, बहू को लेकर महीन सुख में है, सुख में ही रहे, जिस तरह ही क्यों न हो वह सुखी रहे। बहू के मामले में पड़ कर मैं उसे कभी कोई कष्ट न दूंगी। अहा, जो माँ कभी उसे क्षणभर भी छोड़कर नहीं रह सकती वही माँ चली गयी है, इससे महेन्द्र रुष्ट हो गया है और माँ से मान कर बैठा है।" बार-बार उनकी आँखों में आँसू उछल पड़े।

उस दिन राजलक्ष्मी ने बिहारी से बार-बार आकर कहा, "जाओ बेटा, तुम जाओ स्नान कर डालो। यहाँ तुम्हारा कोई काम समय पर नहीं हो पाता।"

बिहारी को उस दिन मानो स्नान-भोजन की ओर बिलकुल ही प्रवृत्ति नहीं थी। उसने कहा, "माँ, मेरी तरह नालायक लड़के के लिए नियमपालनकी कौनसी बात कहती हो, यही अच्छा है।"

राजलक्ष्मीने जिद करके कहा—"नहीं बेटा, तुम स्नान करने के लिए चले जाओ।"

सैकड़ों बार अनुरोध करने पर बिहारी नहाने गया। उसके कमरे से बाहर निकलते ही राजलक्ष्मी ने पुस्तक के भीतर से तेजी से वह कुञ्चित चिट्ठी निकाल ली।

विनोदिनी के हाथ में पत्र देकर कहा, "देखो तो बेटी, महीन ने बिहारी को क्या लिखा है।"

विनोदिनी पढ़कर सुनाने लगी। महेन्द्रने शुरू शुरू में माता की बातें लिखी हैं, किन्तु वह बहुत ही थोड़ी हैं। बिहारी ने जितना सुनाया था, उससे अधिक नहीं थी।

इसके बाद ही आशा की बात लिखी हुई थी। महेन्द्र ने मानो रंग-रहस्य आनन्द से उन्मत्त होकर इसे लिखा हो।

बहुत थोड़ा अंश पढ़कर सुनाने के बाद विनोदिनी रुक गयी--कहा, "बूआ, यह बात और सुनकर क्या करोगी?"

राजलक्ष्मी के स्नेहव्यग्र मुख का भाव क्षणभर में पत्थर की भांति कठोर बनकर मानों जम गया। क्षणकाल तक चुप रहकर उन्होंने कहा, 'रहने दो'--कहकर चिट्ठी वापस न लेकर ही चली गयीं।

उस चिट्ठी को हाथ में लिये विनोदिनी कमरे के अन्दर चली गयी। अन्दर से किवाड़ बन्द कर बिछौने पर बैठकर पढ़ने लगी।

उस चीट्ठी में विनोदिनी को क्या रस मिला, यह विनोदिनी ही जानती है, किन्तु वह कौतुकरस तो कदापि नहीं है। बार-बार पढ़ते-पढ़ते उसकी दोनों आंखें दोपहर के जलते हुए बालू की तरह जलने लगीं, उसकी साँस मरुभूमिकी हवा की भांति गर्म हो उठीं।

महेन्द्र कैसे हैं, आशा कैसी है, महेन्द्र आशा का प्रेमबन्धन कैसा है, यही बात केवल उसके मनमें चक्कर लगाने लगी। चिट्ठी को गोद में चिपकाकर पैर फैलाकर दीवार पर टेककर बड़ी देर तक सामने की ओर देखती हुई बैठी रही।

महेन्द्र की वह चिट्ठी बिहारी को खोजने पर फिर कभी नहीं मिली।

एक दिन दोपहर को हठात् अन्नपूर्णा यहाँ आ धमकी।

किसी बुरे समाचार की आशंका से हठात् राजलक्ष्मी की छाती थरथरा उठी—कोई भी बात पूछने का साहस नहीं हुआ, अन्नपूर्णा की तरफ पीले चेहरे के साथ ताकती रह गयीं।

राजलक्ष्मी ने कहा—"तुम यहाँ आ गयी कैसे?"

अन्नपूर्णा ने कहा—"जीजी, तुम अपनी घरगृहस्थी का काम देख सुनकर सम्हाल लो। मेरा अब संसार में मन नहीं लगता। मैं काशी जाऊँगी, यही विचार मन में रखकर यात्रा में घर से निकली हूँ। इसलिए तुम्हारी पदधूलि लेने आयी हूँ। जान में, अनजान में मैंने बहुत से अपराध किये हैं; माफ करना और तुम्हारी पतोहू (कहते-कहते आंखों से आँसू लुढ़कने लगे—वह बच्ची है, उसकी माँ नहीं है, निरपराधिनी हो या अपराधिनी वह तुम्हारी ही है।"—आगे और कुछ भी न बोल सकी।

राजलक्ष्मी उनके स्नान-भोजन का इन्तजाम करने में व्यस्त हुईं। खबर मिलते ही बिहारी गदाई घोष के चण्डी मण्डप से उठकर चले आये। अन्नपूर्णा को प्रणाम करके उन्होंने कहा, "चाची, क्या ऐसा भी होगा। हम लोगों को निर्दय भाव से छोड़कर तुम चली जाओगी?"

अन्नपूर्णा ने आँसू रोककर कहा, मुझे अब लौटानेकी कोशिश मत करो बिहारी—तुम लोग सभी सुखी हो, मेरे बिना कोई काम न बिगड़ेगा।"

कुछ देर तक बिहारी चुपचा बैठा रहा। इसके बाद कहा—"महेन्द्र का भाग्य खराब है, तुम्हें उसने विदा कर दिया।"

अन्नपूर्णा चकित हो गयीं और कहा, "ऐसी बात मत कहो। महीन पर क्रोध नहीं किया है। मेरे न चले जाने से गृहस्थी में कल्याण न होगा।"

बिहारी बहुत दूर तक देखता चुपचाप बैठा रहा। अन्नपूर्णाने आँचल से एक जोड़ा सुन्दर कंगन निकालकर कहा, "बेटा,

यह कंगन रख लो, जब बहू घर आवेगी, मेरी ओर से आशीर्वाद देकर उसे पहिना देना।"

बिहारी कंगन सिर पर धारण करके आँसू रोकने के लिए पास के ही कमरे में चला गया।

बिदा होते समय अन्नपूर्णा ने कहा, "बिहारी, मेरे महीन और आशा का ख्याल रखना। राजलक्ष्मी के हाथ में एक कागज रखकर कहा—"मेरे ससुर की सम्पत्ति में मेरा जो हिस्सा है वह इस दानपत्र में मैंने लिख दिया। मुझे केवल १५ रुपया मासिक भेज दिया कीजिये।"

यह कहकर जमीन पर लेटकर राजलक्ष्मी की पदधूलि लेकर सिर पर चढ़ा ली और बिदा होकर तीर्थयात्रा के उद्देश्य से निकल पड़ीं।

८

आशा एक तरह डर गयी। यह क्या हो गया। माँ चली गयी। मौसी भी चली गयीं। सोचने लगी—हमारा सुख मानों सबको भगा रहा है, मानो इस बार मुझे ही भगाने की बारी है। परित्यक्त खाली पड़ी हुई गृहस्थी के बीच दाम्पत्य की नयी प्रेम लीला उसके लिए न मालूम किस तरह अनुचित प्रतीत होने लगी।

संसार के कठोर कर्तव्य से प्रेम को फूल की भाँति तोड़कर अलग कर लेने पर वह केवल अपने ही रस से अपने को जीवित नहीं रख सकता। वह धीरे-धीरे विमर्ष और विकृत हो उठता है। आशा भी मन ही मन समझने लगी कि हमारे अनवरत मिलन के बीच एक तरह की थकावट और कमजोरी मौजूद है। वह मिलन

मानो रह-रहकर केवल मुड़ जाया करता है—संसार के दृढ़ और प्रशस्त आश्रय के अभाव में उसे खींचकर खड़ा रखना ही कठिन हो जाता है। काम के बीच में प्रेम की जड़ न रहने से भोग का विकास परिपूर्ण और स्थायी नहीं हो पाता।

महेन्द्र भी अपने विमुख संसारके विरुद्ध विद्रोह करके अपने प्रेमोत्सव की सभी वृत्तियों को एक ही साथ जलाकर बड़े ही समारोह के साथ शून्य गृह अकल्याण के बीच मिलन का आनन्दोपभोग करने की कोशिश करने लगा। आशा के मन में एक छोटासा झटका लगाकर ही उसने कहा, "चुन्नी, आजकल तुमको क्या हो गया है बतलाओ तो? मौसी चली गयीं तो इसके लिए इतनी उदास क्यों बन गयी हो? केवल हम दोनों के प्रेम में ही सभी प्रेमों का अवसान क्या नहीं हो सकता?"

आशा दुखी होकर सोचने लगती, "तब तो मेरे प्रेममें, एक तरहकी अपूर्णता मौजूद है। मैं तो मौसीके बारेमें प्रायः सोचती रहती हूँ, सास चली गयी है, इस कारण ही तो मुझे डर है।'—फिर तो वह अपनी पूरी शक्ति लगाकर अपने प्रेम की त्रुटियों को दूर करने की कोशिश करने लगती।

घर के जरूरी काम अब अच्छी तरह हो नहीं पाते—नौकर चाकर धोखा देने लगे हैं। एक दिन दाई बीमार पड़ जाने से नहीं आयी, पाचक महाराज शराब पीकर न मालूम कहाँ गायब हो गया। महेन्द्रने आशासे कहा—"बड़े ही मजेकी बात हुई, आज हम अपने ही हाथों से रसोई तैयार कर लेंगे।"

महेन्द्र किराये की गाड़ी पर सवार होकर सौदा खरीदने न्यू मार्केट चला गया। किस चीज की कितनी जरूरत है यह उसे अच्छी तरह मालूम नहीं था। इस नये काम में पड़कर जाँच करने में दो तीन घंटा समय बीत गया और तरह तरहकी अखाद्य सामग्री तैयार करके महेन्द्र अत्यन्त आमोद अनुभव करने लगा। आशा

महेन्द्रके इस आमोदमें शामिल न हो सकी, अपनी अज्ञता और असमर्थता समझकर वह मन ही मन अत्यन्त लज्जित और क्षुब्ध हो उठी।

हर कोठरी में असबाब और चीजों में इतनी गड़बड़ी पैदा हो गयी है कि आवश्यकता पड़ने पर किसी भी चीज को ढूँढ़ निकालना ही कठिन है।

महेन्द्र के डाक्टरी के औजारों में से एक तो तरकारी काटने में व्यवहृत होकर अनजान में एक दिन कूड़ाखाने में चला गया और कागज की नोटबही पंखे के काम में आकर रसोईघर की टूटी खाट पर विश्राम करने लगी।

इन अनहोनी गड़बड़ियों के हो जाने पर महेन्द्र के कौतुक की सीमा नहीं रही, किंतु आशा व्यथित हो उठी।

उच्छृंखल स्वेच्छाचार के सोते में सारी गृहस्थी को बहाकर हँसते हुए बह जाना बालिका के लिए विभीषिकामय दिखाई पड़ने लगा।

एक दिन शाम को दोनों ही बरामदे में बिस्तर डालकर बैठे हैं। सामने खुली छत पड़ी है। वृष्टि के बाद कलकत्ता की अनन्त इमारतों की पंक्ति प्रकाश से जगमगा उठी हैं। बगीचे से बहुत से भींगे फूल संग्रह कर आशा सिर झुकाये माला गूँथ रही है। महेन्द्र उसे लेकर खींचा-खींची करके विघ्न डाल कर प्रतिकूल समालोचना करके व्यर्थ ही झगड़ा खड़ा करने की कोशिश कर रहा था। इन अकारण के उत्पीड़नों के लिए आशा के उसकी भर्त्सना करने को तैयार होते ही किसी बहाने उसका मुँह बन्द करके शासन के विघ्न को अंकुर में ही नष्ट कर देता था।

ऐसे ही समय में पड़ोसी मकान के पिंजरे से कोयल की कुहू ध्वनि सुनाई पड़ी। तुरत ही महेन्द्र और आशा की दृष्टि ऊपर झूलते हुए पिंजड़े की तरफ खिंच गयी। उनकी कोयल

पड़ोसी कोयल की ध्वनि को कभी चुपचाप सहन नहीं करती थी, आज यह उसका जवाब क्यों नहीं देती।

आशा ने घबराकर कहा, "चिड़िये को क्या हो गया है ?"

महेन्द्रने कहा, "तुम्हारी आवाज सुनकर लज्जित हो रही है।"

आशा ने विनीत स्वर में कहा, "नहीं दिल्लगी नहीं, देख लो न इसको क्या हो गया है।"

तब महेन्द्र पिंजड़ा नीचे उतार लाया। पिंजड़े का ढक्कन खोलकर देखा कि चिड़िया मरी पड़ी है। अन्नपूर्णा के चले जाने के बाद नौकर भी छुट्टी लेकर चला गया था, चिड़िया की देखभाल किसी ने नहीं की।

देखते-देखते आशा का चेहरा मलीन हो उठा। उसकी अंगुली रुक गयी, फूल ज्यों के त्यों पड़े रह गये। महेन्द्र के मन में चोट लगने पर भी असमय में रसभंग होने की आशंका से उसने इस घटना को हँसकर उड़ा देने की कोशिश की। कहा, 'अच्छा ही हुआ। मैं डाक्टरी करने चला जाता तो वह कू कू करके तुम्हें तंग करती रहती।' यह कहकर महेन्द्र ने आशा को दोनों भुजाओं में समेटकर पास खींच लाने की चेष्टा की।

धीरे-धीरे अपने को बन्धन से छुड़ाकर आशा ने आंचल से सभी फूल फर्श पर बिखेर दिये। कहा—"अब क्यों। छि छि ! तुम जल्द जाओ माँ को लौटा लाओ।'।

६

ऐसे ही समय में दोमंजिले से 'महीन भैया, महीन भैया' पुकार सुनाई पड़ी। 'आओ, कौन है' यह कहकर महेन्द्रने जवाब

दिया। बिहारी के आने की आहट पाकर महेन्द्र का चित्त प्रफुल्लित हो उठा। विवाह हो जाने पर बिहारी बीच-बीच में सुख में विघ्न स्वरूप उसके पास आया करता था, आज अब भी वही बाधा सुख के लिए बहुत ही जरूरी मालूम होने लगी।

आशा भी बिहारी के आगमन से स्वस्ति अनुभव करने लगी। सिर पर घूँघट खींचकर झटपट वह उठ खड़ी हुई। यह देखकर महेन्द्र ने कहा, "कहाँ जा रही हो, दूसरा कोई नहीं है, बिहारी आ रहा है।"

आशाने कहा, "देवर के लिए कुछ जलपान का बन्दोबस्त कर आऊँ।"

किसी काम में लग जाने का मौका मिल जाने से आशा की थकावट बहुत दूर हो गयी। आशा सास का समाचार मालूम करने के लिए घूँघट खींचे खड़ी रह गयी। बिहारी से अभी वह बातचीत नहीं करती।

बिहारी ने प्रवेश करने के साथ ही कहा "आः सब नष्ट हो गया। किस रसोपभोग के ही बीच मैंने कदम रखा। भय नहीं भाभी, तुम बैठ जाओ, मैं भाग जाता हूँ।"

आशा बिहारी के मुँह की तरफ ताकने लगी। महेन्द्र ने पूछा—"बिहारी ! माँ का समाचार बताओ।"

बिहारीने कहा—"माँ चाचीकी चर्चा आज क्यों भाई। इसके लिए तो बहुत समय अभी पड़ा हुआ है। Such a night was not made for sleep, nor for mothers and aunts !

इतनी बातें कहकर बिहारी के लौटने को तैयार हो जाने पर महेन्द्र ने उसे जबरदस्ती खींच पास लाकर बैठाया। बिहारी ने कहा—"भाभी देखो मेरा कुछ अपराध नहीं है—मुझे बलपूर्वक घसीट लाया—पाप तो किया महीन भैया ने, उसका शाप मेरे

ऊपर न पड़ जाय।"

कोई उत्तर न दे सकने के कारण ही इन बातों से आशा बहुत रञ्ज हो उठती। बिहारी जान बूझकर उसे तंग किया करता।

बिहारी ने कहा—"मकानकी श्री तो देख रहा हूँ—क्या अब भी माँ को बुला लाने का समय नहीं हुआ?"

महेन्द्र ने कहा—"अवश्य ही हमलोग तो उसी की प्रतीक्षा में हैं।"

बिहारी ने कहा—इसी बात को उन्हें बनाकर पत्र लिखने में बहुत थोड़ा समय लगेगा, किन्तु उनके सुख की सीमा न रह जायगी। "भाभी, महेन भैयाको दो मिनटकी छुट्टी मंजूर करनी पड़ेगी, तुमसे यही निवेदन है।"

आशा रञ्ज होकर चली गयी—उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे। महेन्द्र ने कहा—"किस शुभ मुहूर्तमें तुम लोगों में मुलाकात हुई थी। किसी तरह भी मेल नहीं हुआ—केवल खटपट चल रही है।"

बिहारी ने कहा—"तुम्हें तो तुम्हारी माँ ने बिगाड़ रखा है और अब स्त्री भी बिगाड़ने लग गयी है। यही मुझसे देखा नहीं जाता, इसीलिए मौका मिलने पर दो-एक बात कर देता हूँ?"

महेन्द्र—इससे क्या फल मिलता है?

बिहारी—तुम्हारे लिए तो कुछ भी फल नहीं होता, किन्तु मुझे तो कुछ फल मिलता है।

१०

बिहारीने स्वयं बैठकर महेन्द्र से चिट्ठी लिखवा ली और उस पत्रको लेकर दूसरे दिन ही राजलक्ष्मी को बिदा करा लाने के लिए रवाना हो गया। राजलक्ष्मी समझ गयीं कि यह पत्र बिहारी का ही

लिखा हुआ है—किन्तु इस हालत में भी वहाँ न ठहर सकीं। उनके साथ विनोदिनी भी आयी।

घर लौट आने पर मालकिन ने घर की जैसी दुरवस्था देखी-सभी वस्तुएँ गन्दी मैली-कुचैली इधर-उधर बिखरी पड़ीं—इससे बहू के प्रति उनकी तबियत और झल्ला उठीं।

किन्तु बहू के स्वभाव में यह कैसा परिवर्तन! परछाहीं की भाँति उनका अनुसरण करती है। आदेश के बिना भी उनकी सहायता के लिए आगे बढ़ आती है। घबराकर वे बोल उठीं—"रहने दो, बन्द करो, तुम और भी बिगाड़ दोगी! जिस काम को नहीं जानती, उस काम में हाथ क्यों लगाना?"

राजलक्ष्मी समझ गयीं कि अन्नपूर्णा के चले जानेसे ही बहू की इतनी उन्नति हुई है। किन्तु उन्होंने सोचा—महेन्द्र समझेगा कि जब तक चाची मौजूद थीं तब तक बहू को लेकर मैं बहुत ही आराम के साथ निष्कण्टक था और माँ के आते ही मेरा विरह दुःख आरम्भ हो गया। इससे यह प्रमाणित हो जायगा कि अन्नपूर्णा ही उसकी हितैषी हैं और माँ सुख में विघ्न डालनेवाली है, जरूरत ही क्या है।"

आज कल जब कभी दिन के समय महेन्द्र बुलाता, बहू पास जाने में हिचकने लगती तो राजलक्ष्मी उसकी भर्त्सना करके बोल उठतीं, "महीन बुला रहा है, क्या उसपर ध्यान नहीं दिया जाता। अधिक प्यार पाने पर अन्त में ऐसा ही हुआ करता है। जाओ, तुम्हें तरकारी में हाथ लगाने की जरूरत नहीं है।"

फिर वही स्लेट, पेन्सिल और चारुपाठ लेकर झूठ-मूठ के खेल प्रेम का अमूलक अभियोग लेकर एक दूसरे को अपराधी बनाना। किसका प्रेम अधिक है, इस बातको लेकर बिना युक्ति का तर्क। वर्षा के दिन को रात बना देना और चाँदनी रात को दिन बना देना। थकावट और क्लान्ति को बलपूर्वक दूर कर देना। परस्पर को इस तरह का अभ्यस्त बना देना कि, संयोग जब उदास चित्त में

किसी तरह का आनन्द नहीं दे रहा है, तब भी क्षणकाल के लिए भी मिलनपाश से मुक्त होना भयंकर प्रतीत होने लगता है—संभोग सुख भस्म से आच्छन्न हो चला है, तथापि दूसरे काम में जाने के लिए भी कदम नहीं उठता। भोगसुख का यह भयङ्कर अभिशाप है सुख अधिक दिन तक नहीं रहता किन्तु बन्धन ही अछेद्य हो उठता है।

ऐसे ही समय में एक दिन विनोदिनी आ धमकी और आशाके गलेसे लिपटकर बोली—"बहिन, तेरा सोहाग चिरकाल तक अक्षय रहे, किन्तु मैं दुःखिनी हूँ, इसलिए ही क्या मेरी ओर एक नजर देखना भी नहीं चाहिए?"

आत्मीयके मकान में बचपन से ही परार्या की भाँति लालित पालित होने के कारण समाज में सर्वसाधारण में आशा एक प्रकार की आन्तरिक लज्जा का भाव पोषण करती थी, उसे बराबर यह भय मालूम होता रहता था कि पीछे कहीं कोई मेरा त्याग न कर दे। विनोदिनी जब अपनी दोनों भौंहें, तीक्ष्ण दृष्टि, सुन्दर मुख और प्रस्फुटित यौवन लेकर उपस्थित हुई तब आशा को साहस नहीं हुआ कि अगुवानी करके उससे परिचय प्राप्त करे।

आशा ने देखा कि सास से विनोदिनी जरा भी सङ्कोच का भाव नहीं रखती, राजलक्ष्मी भी मानो दिखा दिखाकर विनोदिनी का सम्मान बढ़ाती रहती हैं, जब तब आशा को विशेष रूप से सुना सुनाकर विनोदिनी से प्रशंसावाक्य से उमड़ती जाती है। आशा ने देख लिया कि विनोदिनी हर तरह के गृहकार्य में निपुण है प्रभुत्व मानो उसके लिए अत्यन्त सहज स्वभावसिद्ध सा हो गया है, दास दासियों को काम में लगाये रहती है, झिड़कते रहने और हुक्म चलाने में वह जरा भी सङ्कुच नहीं करती। यह सब देखकर आशा विनोदिनी की तुलना में अपने को अत्यन्त तुच्छ समझने लगी। वहाँ सब गुणों से युक्त विनोदिनी ने जब स्वयं आगे बढ़कर आशा

से प्रणय की प्रार्थना की तब संकोच के बाधा से टकराकर के ही बालिका का आनन्द और भी चारगुना उमड़ पड़ा। जादूगर की माया की भाँति उन दोनों का प्रणयवीज एक दिन में ही अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित हो उठा।

आशा ने कहा, "आओ बहन, हम लोग अपने लिए एक कल्पित नाम रखकर मित्रता स्थापित कर लें।"

विनोदिनीने हँसकर कहा, "सब तो पुराने पड़ गये हैं आदर के नामों का तो अब कोई आदर ही नहीं रह गया।"

आशाने कहा—"तुम्हें कौन नाम पसन्द है।"

विनोदिनी ने हँसकर कहा—"आँख की किरकिरी।"

सुनने में मीठा मालूम होनेवाले नाम की ओर ही आशा का झुकाव था, किन्तु विनोदिनी के परामर्श से आदर को इस गाली को ग्रहण कर लिया। विनोदिनी की गर्दन पकड़ कर कहा—"आँख की किरकिरी' कहकर हँसती हुई लुढ़क पड़ी।"

११

आशा को सहेली की बड़ी जरूरत पड़ी थी। प्रेम का उत्सव भी केवल दो ही जनों में सम्पन्न नहीं होता। सुखालाप की मिठाई बाँटने के लिए दूसरों की भी जरूरत पड़ती है।

क्षुधित-हृदया विनोदिनी भी, नयी बहू के प्रेम का इतिहास मतवाले की ज्वालामय मदिराकी भाँति कान खोलकर पीने लगी। उसका मस्तिष्क उन्मत्त हो गया और शरीर का रक्त जल उठा।

सुनसान दोपहर को माँ जब नींद में विभोर हो जाती, दास-दासी नीचे के तल्ले में बैठकखाने में विश्राम करने के लिए

गायब हो जाते और बिहारी के उसकाने से महेन्द्र थोड़ी देर के लिए कालेज चला जाता और धूप से उत्तप्त नीले आकाश के अन्तिम प्रान्त से चीलों की तीखी आवाज अति क्षीण शब्द में कुछ-कुछ सुनाई पड़ने लगती, तब निर्जन शयनगृह में नीचे के बिस्तर पर तकिये पर आशा अपने बिखरे बाल बिखेर कर लेट जाती, विनोदिनी छाती के नीचे तकिया दबाकर पट सोकर गुनगुनाती हुई गुञ्जरित कहानी में विभोर हो पड़ी रहती, उसके दोनों कर्णमूल लाल हो उठते, साँस प्रबल वेग से बहने लगती।

बार बार प्रश्नों की झड़ी लगाकर विनोदिनी छोटी से छोटी बातें निकाल लेती, एक ही बात बार-बार सुनाती, घटना समाप्त हो जाने पर कल्पना का उद्भावन कर लेती और बोल उठती—"अच्छा बहिन, यदि ऐसा होता तो कैसा होता, यदि ऐसा होता तो तुम क्या करती।" इन सब असम्भव कल्पनाओं के बीच सुखकर आलोचना को और भी लम्बी बनाकर खींचकर चलना आशा को भी अच्छा मालूम होता।

विनोदिनी कहती—"अच्छा बहिन आँखकी किरकिरी, यदि तेरे साथ बिहारी बाबू का ब्याह हुआ होता ?"

आशा—नहीं बहिन, तुम यह बात मुँह से मत निकालो, छि: छि:, मुझे बड़ी लज्जा मालूम होती है, किन्तु तेरा विवाह हुआ होता तो क्या ही अच्छी बात हुई होती। तुम्हारे ब्याह की भी तो बातचीत हुई थी।

विनोदिनी—मेरे साथ विवाह की बातचीत तो बहुतों की हुई थी। नहीं हुआ तो अच्छा ही हुआ—मैं जिस हालत में हूँ अच्छी तरह हूँ।

आशा इस बातका विरोध करने लगती। वह किस तरह मान लेगी कि विनोद की हालत मेरी हालत से अच्छी है।—एक-बार यह समझ लो तो बहिन किरकिरी, यदि मेरे पति के साथ

तुम्हारा ब्याह हो गया होता और थोड़ी ही कसर मिट जाने पर तो हो ही जाता।'

ऐसा तो हो ही गया होता। नहीं हुआ क्यों। आशा का यह पलंग यह बिछौना तो किसी दिन उसकी ही प्रतीक्षा में था। विनोदिनी इस सुसज्जित कमरे की ओर देखती है और उस बात को किसी तरह नहीं भूल पाती। इस मकान में वह अतिथिमात्र है—आज जगह मिली है, कल छोड़कर चला जाना पड़ेगा।

तीसरे पहर सन्ध्याके पहले ही स्वयं तत्पर होकर विनोदिनी बड़ी निपुणता के साथ आशा के बाल सँवार कर जूरा या वेणी बाँध देती और सजाकर पतिमिलन के लिए भेज देती। उसकी कल्पना मानों घूँघट की ओट में इस सज्जिता वधू के पीछे-पीछे मुग्ध युवक के अभिसार में निर्जन कमरे में पहुँच जाती। और कभी कभी वह आशा को रोक रखती, किसी तरह भी छोड़ना नहीं चाहती। कहती 'आः थोड़ी देर तक बैठ लो न। तुम्हारे पति तो कहीं भागे नहीं जा रहे हैं, वे तो बन के मायामृग नहीं हैं वे तो आँचल के अन्दर पाले हुए हरिण हैं।' यह कहकर तरह तरह के बहानेसे उसे पकड़कर देर करने की चेष्टा करती।

महेन्द्र बहुत ही रुष्ट होकर कहता—तुम्हारी सखी तो हिलने डोलने तक का नाम नहीं लेतीं। अपने घर जाना कब होगा।'

आशा व्यग्र होकर कहती—'नहीं, तुम मेरी आँख की किरकिरी पर क्रोध मत करो। तुम नहीं जानते कि वह तुम्हारी बातें सुनना कितना पसन्द करती है, कितने यत्न से मुझे सजाकर तुम्हारे पास भेज देती है।'

राजलक्ष्मी आशा को काम नहीं करने देतीं। विनोदिनी ने वधू का पक्ष लेकर उसे काम में लगाया। प्रायः समूचा दिन विनोदिनी को काम में आलस्य नहीं मालूम होता, अपने साथ ही वह आशा को भी छुट्टी नहीं देना चाहती। विनोदिनी एक के

बाद एक करके बराबर इस तरह कामों का सिलसिला बनाने लगी कि उसके बीच अवसर प्राप्त करना आशा के लिए बहुत ही कठिन हो चला। यह समझकर कि आशा का पति छतवाले खाली कमरे के एक कोने में चुपचाप बैठकर क्रोध से छटपटा रहा है। विनोदिनी मन ही मन तीव्र कठोर हँसी हँसती रहती। आशा घबराकर कहती, अब जाने दो बहिन आँख की किरकिरी, वे रूठ हो जायेंगे।'

विनोदिनी शीघ्रता से बोल उठती—'बैठो, इसको समाप्त कर लो और अधिक देर न होगी।'

क्षणभर में फिर घबराकर आशा बोलती—'नहीं बहिन, इस बार वे सचमुच ही नाराज हो जायँगे—मुझे छोड़ दो, मैं चली जाऊँ।

विनोदिनी जवाब देती—'अहा, थोड़ा नाराज ही हो जायँ तो क्या। सोहाग के साथ रंजिश का मिलन न होने से प्रेम का स्वाद नहीं रह जाता—तरकारी में गर्म मसाले की भांति।'

किन्तु गर्म मसाले का स्वाद कैसा होता है, यह बात विनोदिनी ही जानती थी, केवल उसके साथ तरकारी नहीं थी। उसकी नस-नस में मानो आग जल उठी। वह जिधर ही देखती है उधर ही मानों आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। ऐसी सुख की गृहस्थी—इस तरह के सोहाग का पति। इस घर को तो मैं राजा का राजत्व और इस पति को पैरों का दास बनाकर रख सकती। उस हालत में क्या इस घर की यह दशा, इस मनुष्य की यह स्त्री रहती। मेरी जगह पर यह एक नादान, बच्ची, खेलने की पुतली!'

(आशा का गला जकड़कर)'बहिन आँख की किरकिरी, कल तुम लोगों में क्या बातचीत हुई। मैंने तुम्हें जो कुछ सिखाया,

क्या वह सब तुमने कहा था ? तुम लोगों के प्रेम की बात सुन लेने पर मुझे भूख प्यास कुछ भी नहीं लगती बहिन ।'

१२

एक दिन क्रोधित होकर महेन्द्र ने अपनी माँ को बुलाकर उनसे कहा—क्या यह अच्छा हो रहा है। पराये घर की युवती अनाथा को लेकर अपने कन्धे पर एक बोझ बढ़ाने से फायदा होगा। मेरी तो इसमें जरा भी सम्मति नहीं है। न मालूम कब किसी तरह का संकट आ सकता है।'

राजलक्ष्मी ने कहा, "यह तो हमारे विपिन की बहू है, इसे तो मैं कभी परायी नहीं समझती।"

महेन्द्र ने कहा—"नहीं माँ, यह तो अच्छा काम नहीं हो रहा है। मेरा विचार है कि इसे यहाँ रखना उचित नहीं होरहा है।"

राजलक्ष्मी भलीभाँति जानती थीं कि विपिनके मत की उपेक्षा करना मामूली बात नहीं है। उन्होंने विहारीको बुलाकर कहा, "ऐ बिहारी, तू एक बार महीन को समझा दो। विपिन की बहू यहाँ है इसीलिए तो मैं इस बुढ़ापे में कुछ विश्राम करने का मौका पाती हूँ। यदि परायी हो या कुछ भी हो अपने किसी स्वजनसे तो कभी मुझे ऐसी सेवा नहीं मिली।"

राजलक्ष्मी की बातों का कुछ भी उत्तर न देकर विहारी महेन्द्र के पास पहुँच गया। कहा—"महीन भैया, विनोदि उनके बारेमें क्या कुछ विचार रहे हो ?" ...कर... तुम्हें

महेन्द्रने हँसकर कहा—"विचार करते करते सो... ओर... को मित्र नींद नहीं आती। अपनी भाभीसे पूछ क्यों नहीं लेते'

विनोदिनी के ध्यानमें मेरे प्रति और सब ध्यान भी उनका भंग हो गया है ।"

आशा ने घूँघट की ओट से चुपचाप महेन्द्र को धमकाया।

बिहारी ने कहा—"क्या कहते हो। दूसरा विषवृक्ष है।"

महेन्द्र—ठीक कहते हो भाई। अब उसे विदा करने के लिए चुन्नी छटपटा रही है।

घूँघटकी ओट से आशा की दोनों आँखें फिर भर्त्सना करने लगीं।"

बिहारी ने कहा—'विदा करने पर भी लौटने में कितनी देर लगेगी। विधवा का विवाह कर दो—विषदन्त एकदम ही टूट जायँगे।'

महेन्द्र—कुन्द का भी तो विवाह किया गया था।

बिहारी ने कहा—रहने दो; उस उदाहरण की अभी कोई जरूरत नहीं है। विनोदिनी के बारे में मैं कभी-कभी सोचा करता हूँ। तुम्हारे यहाँ तो उनका, सारा जीवन गुजारा नहीं हो सकता। इसके बाद जिस वन को मैं देख आया हूँ, वहाँ उन्हें आजीवन वनवास में भेज देना भी तो कठोर दण्ड ही होगा।"

महेन्द्र के सामने अबतक विनोदिनी बाहर नहीं निकली थीं, किन्तु बिहारी उसे देख चुका था। बिहारी इतना तो समझ गया है कि यह नारी जंगल में फेंक रखने की चीज नहीं है। किन्तु अग्निशिखा किसी रूप में हो वही घर में आग भी लगा देती है—यह आशंका भी बिहारी के मन में मौजूद थी।

की महेन्द्र ने बिहारी से यह बात कहकर उसका बड़ा ही परि-
की पुतला। बिहारी ने भी उसका जवाब दिया। किन्तु उसका
(आश गया था कि यह नारी खेल के लिए नहीं है, इसकी
की जा सकती।
तुम लोगों
मी ने विनोदिनीको सावधान कर दिया। कहा, "देखो

बेटी, बहू को लेकर तुम इतनी खींचतान मत किया करो। तुम देहात के गृहस्थ घर की लड़की हो, आजकल का चालचलन तुम्हें मालूम नहीं है। तुम बुद्धिमती हो, अच्छी तरह समझ बूझकर काम करना।'

इसके बाद विनोदिनी बहुत ही आडम्बर के साथ आशा को अपनेसे दूर ही रखने लगी। कहा—"मैं यहाँकी कौन हूँ बहिन। मेरी अवस्था की महिला यदि अपनी इज्जत बचाकर चलना न जानेगी तो कब कैसी दुर्घटना हो जाय इसका क्या ठिकाना है।"

आशा घबरा घबराकर रो उठती—विनोदिनी प्रतिज्ञा में अटल हो गयी। मन की बातों के बोझ से आशा का गला भर उठा, किन्तु विनोदिनी ने उस तरफ कुछ भी ख्याल नहीं किया।

इधर महेन्द्र की दशा यह थी कि उसका बाहुपाश शिथिल और उसकी मुग्ध दृष्टि क्लान्ति से घिरती चली आ रही थी। पहले जिन अनियमों और उच्छृङ्खलताओं को कौतुकजनक समझता था अब वे ही उसे कुछ अंशों में कष्टकर प्रतीत होने लगीं। आशा की घर गृहस्थी के कामों में अपटुता देखकर वह मन ही मन रंज होने लगा, किन्तु मन का भाव खोलकर नहीं कहता। खोलकर कुछ न कहने पर भी आशा भी मन ही मन समझने लगी कि निरवच्छिन्न मिलने में प्रेम की मर्यादा मलीन होती जा रही है। महेन्द्र के सोहाग में कुछ त्रुटि शुरू होने लगी, कुछ तो ज्यादतियों और कुछ आत्मवञ्चना के रूप में।

ऐसे समय में पलायन के अतिरिक्त मुक्ति नहीं, विच्छेद के सिवा दूसरी दवा भी नहीं। स्त्रियों के स्वभावानुसार उनके संस्कार के अनुकूल इन दिनों आशा महेन्द्र को छोड़कर तुम्हें जाने की चेष्टा करती किन्तु विनोदिनी के सिवा और को मित्र पास जाने का स्थान ही उसके लिए कहाँ था।

प्रणय की उत्तप्त मिलन-शय्या के बीच आँखें खोलकर महेंद्र धीरे धीरे गृहस्थी के कामों और लिखने-पढ़ने की ओर कुछ अपना ध्यान बढ़ाने लगा। डाक्टरी किताबों का कोई असम्भव स्थानों से उद्धार करके उनपर लगी धूलि झाड़ने लगा और पतलून पायजामा धूप में सुखाने लगा।

१३

जब विनोदिनी किसी तरह भी पकड़ी न जा सकी तब आशाके दिमागमें एक युक्ति आ गयी। उसने विनोदिनीसे कहा, "बहिन किरकिरी, तुम मेरे पतिके सामने क्यों नहीं बाहर निकलती। भागी भागी क्यों फिरती हो?"

विनोदिनी ने संक्षिप्त में और तेजी में उत्तर दिया, "छि, छि।"

आशा ने कहा--"क्यों। मैंने माँ से सुना है, तुम तो हमारे लिए कोई परायी नहीं हो।"

विनोदिनी ने गम्भीर मुँह से कहा, "संसार में अपनी या परायी कोई नहीं है। जो अपनी समझे वही अपनी-जो परायी सोच ले तो वह अपनी होने पर भी परायी।"

आशा ने मन ही मन कहा, "इस बात का तो अब कोई उत्तर ही नहीं है। वास्तव में ही मेरे पति विनोदिनी के साथ अन्याय किया करते हैं, वास्तव में ही उसे परायी समझते हैं, और उस पर अकारण ही रंज हो उठते हैं।"

उस दिन शाम को आशा ने बड़े ही आदर से दबाव डाल कर कहा "मेरी आंख की किरकिरी से तुमको बातचीत करनी [illegible]"

[illegible] महेन्द्रने मुस्कुराकर कहा, 'तुम्हारा साहस तो कम नहीं है।'

आशा ने कहा--"क्यों भय किस बात का?"

महेन्द्र—अपनी सखी के सौन्दर्य का जैसा वर्णन करती हो, इससे तो यह मालूम होता है कि यह कोई निरापद स्थान नहीं है।

आशा ने कहा—"अच्छा मैं यह सम्हाल सकूँगी। मजाक छोड़ दो उससे बातचीत करोगे या नहीं, बता दो।'

विनोदिनी को देखने की उत्सुकता महेन्द्र के मन में नहीं थी, ऐसा बात नहीं है। यहाँ तक कि आजकल उसे देखने के लिए उसके मन में कभी कभी आग्रह भी पैदा होता है। यह अनावश्यक आग्रह उसे अपने लिए अच्छा नहीं जँचा।

हृदयके सम्पर्क विषय पर महेन्द्र का उचित अनुचित आदर्श साधारण लोगों की अपेक्षा कुछ कड़ा है। कहीं पीछे चलकर माता के अधिकार में कोई त्रुटि न आ जाय। इसके लिए पहले वह विवाह का नाम तक भी नहीं लेता था। इन दिनों आशा से सम्बन्ध स्थापित करने की बात को वह इस तरह बचा रखना चाहता है कि दूसरी स्त्रियों के प्रति मामूली कौतूहल को भी वह अपने मनमें सम्मान नहीं देना चाहता। प्रेम के सम्बन्ध में वह अत्यन्त ही स्पष्ट और शुद्ध है, इसका उसके मन में एक तरह का गर्व था। यहाँ तक कि वह बिहारी को मित्र मानता था, इस कारण और किसी को मित्र कहकर स्वीकार करना उसे बिलकुल ही पसन्द नहीं था। यदि और कोई उसकी तरफ आकृष्ट होकर उसके पास आ जाता तो महेन्द्र मानो, उसे पूरी कोशिश से दूर रखने की चेष्टा करता और उपेक्षा दिखाता और बिहारी के प्रति अवज्ञा और उपहास प्रकट किया करता तथा साधारण जनता के प्रति अपनी अत्यन्त उदासीनता की घोषणा किया करता। इस पर बिहारी कुछ आपत्ति करता तो महेन्द्र कहता—"तुम ऐसा कर सकते हो बिहारी, जहाँ कहीं भी जाते हो तुम्हें मित्रों की कमी नहीं होती. किन्तु मैं तो हर आदमी को मित्र कहकर खींचातानी नहीं कर सकता।"

इस तरहके स्वभाव वाले महेन्द्र का मन जब इन दिनों बीच-बीच में अनिवार्य व्यग्रता और उत्सुकताके साथ उस अपरिचिता के प्रति स्वयं दौड़ने लगा तब वह अपने ही आदर्श की तुलना में अपने को तुच्छ समझने लगा। अन्त में ऊबकर वह विनोदिनी को घर से विदा कर देने के लिए माँ को तङ्ग करने लगा।

महेन्द्रने कहा—"रहने दो चुन्नी, तुम्हारी आँखकी किरकिरी के साथ बातचीत करने का समय नहीं है। पढ़ने के समय डाक्टरी की पुस्तक पढ़ूँगा, अवकाश के समय तुम पास रहती हो, फिर बीच में साथी को कहाँ रखोगी ?"

आशा ने कहा—"अच्छा, तुम्हारी डाक्टरी में हिस्सा न लूँगी, मैं अपना ही हिस्सा किरकिरीको दूंगी।"

महेन्द्र ने कहा—"तुम तो दोगी, मैं क्यों दूँ ?"

'आशा विनोदिनी को प्यार कर सकती है' इसपर महेन्द्र का यह कहना था कि यह पति के प्रति उसके प्रेम की न्यूनता सिद्ध करता है। महेन्द्र अभिमान में कहता, 'मेरी तरह तुम्हारा प्रेम अनन्य नहीं है।' आशा यह किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं करती,—इस पर झगड़ा करने लगती, रोने लगती, किन्तु तर्क में विजय उसे नहीं मिलती।

महेन्द्र अपने और अपनी पत्नी के बीच विनोदिनी को सूच्यग्र परिमाण में भी स्थान देना पसन्द नहीं करता, यही उसके लिए गर्व का विषय हो गया। महेन्द्र का यह गर्व आशा से सहा नहीं जाता, किन्तु आज उसने पराजय स्वीकार करके कहा—"अच्छा, ठीक है, मेरे प्रेम के नाम पर ही तुम मेरी किरकिरी के साथ वार्तालाप करो।"

आशा के प्रति अपने प्रेम की दृढ़ता और श्रेष्ठता प्रमाणित करके अन्त में महेन्द्र विनोदिनी से बातचीत करने में अनुग्रह पूर्वक सहमत हो गया। पहलेही उसने यह बतला दिया, "किन्तु

इसका यह मतलब नहीं है कि जब तक उपद्रव खड़ा करते रहने से मैं जीवित रह सकूँगा।"

दूसरे दिन खूब तड़के ही आशा विनोदिनी के बिस्तर पर पहुँचकर उसे भुजाओंमें लपेटकर बैठ गयी। विनोदिनी ने कहा– 'क्या ही आश्चर्य की बात है। चकोरी आज चन्द्रमा को छोड़कर बादल के दरबार में कैसे आ गयी?"

आशा ने कहा—"तुम लोगों की तरह कविता की भाषा तो मुझे कुछ भी नहीं मालूम है बहिन, वन में मोती छींटने से क्या लाभ। जो तुम्हारी बातों का जवाब दे सकता हो, एक बार उसे ही अपनी बातें सुनाओ न।"

विनोदिनी ने कहा—"वह रसिक मनुष्य कौन है?"

आशा ने कहा—"तुम्हारे देवर मेरे पति। नहीं बहिन, कोई दिल्लगी नहीं–वे तुमसे बातचीत करने के लिए बड़ा ही जोर दे रहे हैं।"

विनोदिनी ने मन ही मन कहा, "स्त्री के हुक्म से मेरी बुलाहट हुई है। यों ही दौड़ी चली जाऊँगी, ऐसी मुझे न पाओगी।"

विनोदिनी किसी तरह भी राजी नहीं हुई। तब आशा अपने पति से बड़ी ही लज्जा अनुभव करने लगी।

महेन्द्र मनही मन बहुत ही रंज हुआ। सोचने लगा, "इतना घमण्ड है कि मेरे सामने बाहर निकलने में आपत्ति करती है। मुझे दूसरे साधारण मनुष्यों की भाँति समझ रही है। दूसरा कोई होता तो तरह तरह की युक्तियाँ और बहाना दिखाकर विनोदिनी से भेंट मुलाकात और बातचीत कर लेता, परिचय बढ़ा लेता। मैंने तो बिल्कुल ही कोशिश नहीं की। क्या इस हालत में भी विनोदिनी को मेरे स्वभाव का परिचय नहीं मिला। यदि वह एक बार भी अच्छी तरह जान जायगी तो समझ लेगी कि दूसरे पुरुषों में और मुझमें कितना अन्तर है।"

विनोदिनी ने भी दो दिन पहले गुमान में मन ही मन कहा था—"इतने दिनों से मैं इस मकान में हूँ, महेन्द्र तो एकबार भी मुझे देखने की कोशिश तक नहीं करता । जब मैं मौसी के कमरे में रहती हूँ तो वह कभी किसी भी बहाने उस कमरे में नहीं आता । इतनी उदासीनता का क्या मतलब है । क्या मैं कोई जड़ पदार्थ हूँ, क्या मैं महिला नहीं हूँ । यदि एकबार भी मेरा परिचय मिल जाता तो विनोदिनी और चुन्नी में कितना फर्क है यह बात उसकी समझ में आ जाती ।"

आशा ने पति से प्रस्ताव किया—"इस बहाने से कि तुम कालेज चले गये हो, मैं आँख की किरकिरी को अपने कमरे में बुला लूँगी, फिर इसके बाद तुम बाहर से अन्दर चले आना—ऐसा करने से ही वह काबू में आ जायगी ।"

महेन्द्र ने कहा, "किस अपराध से उसके लिए इतनी कड़ी सजा की तैयारी हुई ?"

आशा ने कहा—"नहीं, सचमुच ही मेरे मन में बड़ा क्रोध आ गया है । तुमसे मुलाकात करने में भी उसे आपत्ति है । प्रतिज्ञा भङ्ग कर लूँगी तभी छोड़ूँगी ।"

महेन्द्र ने कहा—"तुम्हारी प्रिय सखी को देखे बिना मैं मर नहीं रहा हूँ । मैं इस तरह लुकछिपकर देखना पसन्द नहीं करता ।"

आशा ने विनयपूर्वक महेन्द्र का हाथ पकड़कर कहा—"मेरे सिर की सौगन्ध, एक बार तो तुम्हें यह काम करना ही पड़ेगा, जैसे ही हो एकबार तो उसका गुमान तोड़ना ही होगा । फिर बाद को जैसी इच्छा तुम लोगों की होगी वैसा ही करना ।"

महेन्द्र निरुत्तर रह गया । आशा ने कहा, "मेरे प्राण-प्यारे, मेरे इस अनुरोध को मान लो ।"

महेन्द्र का आग्रह विनोदिनी को देखने के लिए प्रबल होता

जा रहा था—तो भी अतिरिक्त मात्रा में उदासीनता प्रकट करके उसने सम्मति दे दी।

शरत् काल के स्वच्छ निस्तब्ध दोपहर के समय विनोदिनी महेन्द्र के निर्जन शयनगृह में बैठकर आशा को कार्पेट का जूता बुनना सिखा रही थी। आशा अनमनी होकर बार बार दरवाजे की ओर देखकर बुनने में भूल करके विनोदिनी के प्रति अपनी असाध्य त्रुटि दिखा रही थी।

अन्त में विनोदिनी ने रुष्ट होकर उसके हाथ से झपट कर कार्पेट छीन कर फेंक दिया और कहा—"तुमसे यह काम न बनेगा, मेरे लिए बहुत काम है, जा रही हूँ।"

आशा ने कहा, "कुछ देर तक और बैठ लो, अब देखो गलती न करूँगी।' यह कहकर सिलाई करने बैठ गयी।

इस बीच चुपचाप विनोदिनी के पीछे दरवाजे के पास महेन्द्र आकर खड़ा हो गया। आशा सिलाई से सिर ऊपर न उठाकर धीरे-धीरे हँसने लगी।

विनोदिनी ने कहा, "हठात् हँसनेके लिए कौनसी बात याद पड़ गयी?" आशा अब न रह सकी। ऊँचे स्वर में हँसती हुई विनोदिनी के ऊपर कार्पेट फेंककर कहा—"नहीं बहिन, तुमने ठीक ही कहा है—यह काम मुझसे न होगा"—यह कहकर विनोदिनी की गर्दन पकड़कर ठठाकर हँसने लगी।

शुरू में ही विनोदिनी सब बातें समझ गयी थी। आशा की चञ्चलता और इशारा देखकर उससे कोई बात छिपी नहीं रह गयी। किस समय महेन्द्र पीछे आकर खड़ा हो गया, इसका भी उसे पता चल गया था। अत्यन्त सरल निरीह की भाँति वह आशा के इस अत्यन्त क्षीण जाल में पकड़ी गयी।

महेन्द्र ने कमरे में प्रवेश करके कहा—"हँसने के कारण से मैं अभागा वञ्चित क्यों रखा गया?"

विनोदिनी चौंक उठी और कपड़े से माथा ढँककर उठने के लिए तैयार हो गयी। आशाने उसका हाथ पकड़कर दबा लिया।

महेन्द्र ने हँसकर कहा—"आप बैठिये, मैं जा रहा हूँ। या आप भी बैठ जाइये मैं भी बैठ जाता हूँ।"

विनोदिनी ने साधारण औरतों की तरह आशा से हाथ छीनाछीनी करके हल्ला करके लज्जाका धूमधड़का नहीं मचाया। सहज स्वर में ही कहा—"केवल आपके ही अनुरोध से बैठ रही हूँ। किन्तु मन में शाप मत दीजियेगा।"

महेन्द्र ने कहा—"यह कहकर शाप दूँगा कि बड़ी देर तक उठ जाने की शक्ति आप में न रह जाय।"

विनोदिनी ने कहा—"इस अभिशाप से मैं नहीं डरती, क्योंकि आप की वड़ी देर अधिक समय तक न रहेगी। शायद पूरा हो चला।"

इतना कहकर वह उठने के लिए तैयार हो गयी। आशा ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "तुमको मेरे सिर की कसम, और थोड़ी देर तक बैठो।"

१४

आशा ने पूछा—"सच कहो, मेरी आँख की किरकिरी, तुम्हें कैसी मालूम हुई ?"

महेन्द्र ने कहा—"बुरी नहीं है।"

आशा ने अत्यन्त खिन्न होकर कहा—"तुमको तो कोई भी पसन्द ही नहीं आती।"

महेन्द्र—"केवल एक आदमी को छोड़कर।"

आशा ने कहा—"अच्छा, उसके साथ कुछ और अच्छी तरह बातचीत होने दो, तब पूछूँगी कि पसन्द है या नहीं।" महेन्द्र कहा--"फिर बातचीत ? मलूम होता है अब लगातार यही क्रम चलता रहेगा।"

आशा ने कहा--"भलमनसाहत के ख्याल से भी तो लोगों से बातचीत करनी पड़ती है। एक दिन के परिचय के बाद ही यदि मिलना जुलना और बातचीत बन्द कर दोगे तो "आँख की किरकिरी" क्या सोचेगी। लेकिन तुम्हारी सभी बातें विचित्र होती हैं। दूसरा कोई होता तो ऐसी स्त्री से बात-चीत करने के लिए कोशिश करता रहता, लेकिन तुम्हारे ऊपर तो मानों एक भारी आफत आ पड़ी है।"

दूसरों से अपने में इतना फर्क रहने की बात सुनकर महेन्द्र बहुत ही खुश हुआ। कहा—"अच्छी बात है इसके लिए घबराने की क्या जरूरत है। मुझे भी भाग जाने के लिए दूसरी जगह नहीं है और अभी तुम्हारी सखी के भी भाग जाने का कोई उपाय नहीं है इसलिए बीच-बीच में मुलाकात जरूर होती रहेगी और मुलाकात हो जाने पर भलमनसी का बर्ताव करना चाहिये, यह बात तुम्हारा पति पहले से ही सीख चुका है।"

महेन्द्र ने मन ही मन सोच रखा था कि अब किसी न किसी बहाने वह सामने आ जाया करेगी ही। किन्तु यह उसकी भूल थी। विनोदिनी पास से भी कभी नहीं गुजरती—अचानक रास्ते में आते जाते भी वह दिखाई नहीं पड़ती।

पीछे किसी तरह की व्यग्रता प्रकट न हो जाय इस विचार से महेन्द्र विनोदिनी की कोई चर्चा अपनी स्त्री से नहीं कर सकता। बीच-बीच में विनोदिनी से मिलने की सामान्य इच्छा को छिपाने और दबा रखने से महेन्द्र की व्यग्रता मानों और

भी बढ़ जाती उसके अलावा विनोदिनी की उदासीनता उसे और भी उत्तेजित कर देती।

विनोदिनी से मुलाकात होने के दूसरे दिन महेन्द्र ने प्रसंग छोड़कर हँसी के बहाने से आशा से पूछा—"अच्छा, तुम्हारी आँख की किरकिरी ने तुम्हारे इस अयोग्य पति को कैसा समझा?

महेन्द्र की आशा थी कि इस प्रश्न के उत्तर में उसे बहुत उत्साहपूर्ण विस्तृत रिपोर्ट मिलेगी किन्तु इसके लिए धैर्य धारण करके भी जब कोई फल नहीं मिला तो उसने आप ही हँसी के बहाने यह प्रश्न उठाया।

आशा मुश्किल में पड़ गयी। आँख की किरकिरी ने तो कोई भी बात नहीं कही। इसलिए आशा अपनी सखी से बहुत असन्तुष्ट हो गयी थी।

आशा ने पति से कहा—"ठहरो पहले दो चार दिन बात-चीत चलने दो तब न वह कुछ कहेगी। कल कितनी देर तक मुलाकात ही हुई या बातचीत भी कितनी हुई।"

इससे भी महेन्द्र कुछ निराश हो गया और विनोदिनी के सम्बन्ध में लापरवाही दिखाना उसके लिए और भी सम्भव हो गया।

इन सब आलोचनाओं के बीच बिहारी आ पहुँचा। आते ही पूछा—"क्या महीन भैया, आज किस विषय पर तुम लोगों में बहस चल रही है?"

महेन्द्र ने कहा—"देखो तो भाई, विनोदिनी या कुमुदिनी, प्रमोदिनी ऐसा ही कुछ नाम है, जिससे तुम्हारी भाभी ने दोस्ती कायम की है और आपस में पुकारने के लिए "बालों की रस्सी, या 'मछली की काँटा' ऐसा ही कुछ नाम रखा है। किन्तु इस कारण मुझको भी उसके साथ साथ दोस्ती करके 'चुरुट की

राख' या "टियासलाईकी काठी" ऐसा ही कुछ पुकारने का नाम रखना पड़ेगा ! भला ऐसा होने से क्या जान बच सकती है"

आशा के गूँघट के बीच चुपचाप बड़े वेग का झगड़ा जग उठा। क्षणभर बिहारी महेन्द्र के मुँह की ओर देखकर हँस उठा–कहा, "भाभी, लक्षण तो अच्छे नहीं है। ये सब भुलावे की बातें हैं। मैंने तुम्हारी आँख की किरकिरी को देखा है। यदि मुझे बार-बार उन्हें देखने का मौका मिलता रहे तो मैं उसे दुर्भाग्य न समझूँगा, यह बात मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ। किन्तु इतना सब होने पर भी महीन भैया यदि अनिच्छा प्रकट कर रहे हैं तो बड़े ही सन्देह की बात है।"

महेन्द्र और बिहारी में इतना अधिक अन्तर है, आशा को इसका एक और प्रमाण मिला।

हठात् महेन्द्र को फोटोग्राफ खींचने का शौक हुआ। पहले एक बार उसने फोटोग्राफ सीखना शुरू करके फिर उसे छोड़ दिया था। अब फिर उस कैमरे की मरम्मत करके अरक खरीदकर चित्र लेना शुरू कर दिया। घर के नौकर चाकरों तक के फोटो उतारे गये।

आशा एक दिन यह जिद कर बैठी—"आँख की किरकिरी' का भी फोटो लेना पड़ेगा।"

महेन्द्र ने अत्यन्त संक्षेप में कहा—"अच्छा।"

"आँखकी किरकिरी" ने उससे भी संक्षेपमें कहा—"नहीं।"

आशा को फिर एक बार दूसरी युक्ति निकालनी पड़ी और वह युक्ति भी विनोदिनी से छिपी नहीं रही।

तै हुआ कि दोपहरको आशा उसे अपने कमरे में बुलाकर किसी तरह सुला देगी और महेन्द्र उसी अवस्था में फोटो लेकर अबाध्य सखी को ठीक तरीकों से छका देगा।

आश्चर्य की बात है विनोदिनी दिन को कभी न सोती थी, किन्तु आशा के कमरे में आने पर उस दिन उसे झपकी आ गयी।

शरीर पर एक लाल चादर ओढ़कर, खुली खिड़की की तरफ मुँह करके और हाथ पर माथा रखकर ऐसे ही सुन्दर तरीके से सो गयी कि महेन्द्र ने कहा—"मालूम होता है कि यह फोटो खिचवाने के लिए इच्छापूर्वक तैयार हुई है।"

पैरों की आहट न करके महेन्द्र केमरा ले आया। किस तरफ से फोटो लेने में अच्छा होगा यह समझने के लिए उसे विनोदिनी को चारों तरफ से अच्छी तरह देख लेना पड़ा। यहाँ तक कि 'आर्ट' के लिए बहुत सावधानी से उसके सिरहाने जाकर उसके खुले हुए बालों को भी एक जगह से कुछ हटा देना पड़ा—फिर पसन्द न आने पर उसे पूर्ववत् ठीक कर देना पड़ा। उसने आशा से चुपके से कहा, पैरों के पास की चादर के आँचल को कुछ बायीं तरफ हटा दो।

अनजान आशा ने उसके कान में कहा, "मुझसे ठीक तौर से यह काम न बनेगा, नींद टूट जायगी, जग पड़ेगी, तुम्हीं हटा दो।" महेन्द्र ने हटा दिया।

अन्त में फोटो खींचने के लिए महेन्द्र ने ज्योंही केमरे में काँच लगाया, त्योंही विनोदिनी मानों किसी शब्द से हिलकर लम्बी साँस खींचकर झटपट उठ बैठी। आशा तो ठठाकर हँस पड़ी। विनोदिनी बहुत रंज हो गयी, उसने चमकाती हुई दोनों आँखोंसे महेन्द्रपर अग्निवाण बरसाकर कहा-"बड़ा अन्याय है।"

महेन्द्र ने कहा—"अन्याय है, इसमें सन्देह नहीं। चोरी भी की. किन्तु चोरी का माल हाथ नहीं लगा। इससे तो मेरा इहलोक और परलोक दोनों ही बिगड़ गये। अन्याय के काम का पहले पूरा करने दीजिये, फिर पीछे दण्ड दीजियेगा।"

आशा भी विनोदिनी के एकदम पीछे पड़ गयी। फोटो खींचा गया। किन्तु पहला फोटो बिगड़ गया। इस कारण चित्रकार ने दूसरे दिन दूसरा अच्छा फोटो लिये बिना न छोड़ा। इसके बाद

फिर उसने यह प्रस्ताव रखा कि दोनों सखियों का फोटो एक साथ, उनकी मित्रता के चिह्नस्वरूप लिया जाय। विनोदिनी इस प्रस्ताव को अस्वीकार न कर सकी। कहा—"किन्तु यही अन्तिम फोटो है।"

यह सुनकर महेन्द्र ने फोटो को खराब कर डाला। इस तरह फोटो खींचते खींचते जान पहचान बहुत अधिक बढ़ गयी।

१५

बाहर से हिला देने से राख से दबी आग फिर जल उठती है। नव दम्पती के प्रेम का उत्साह फीका पड़ रहा था, वह अब तीसरी तरफसे आघात पाकर फिर जग उठा।

आशा में हँसी दिल्लगी की बातचीत करने की शक्ति न रह गयी थी। किन्तु विनोदिनी यह बहुत अच्छी तरह जानती थी यही कारण है कि विनोदिनी की आट में आशा को बहुत बड़ा आश्रय मिला। महेन्द्र को बराबर आनन्द की उत्तेजना में रखने के लिए उसे अब कठिन प्रयत्न नहीं करना पड़ता था।

विवाह के थोड़े दिनों के बाद ही महेन्द्र और आशा ने परस्पर एक दूसरे को सब तरह से कुल बातों में खतम ही कर देने की तैयारी की थी। संगीत एकदम ही स्वर के आरम्भ से ही शुरू हुआ था, सूद न खाकर एकदम मूलधन खा डालने की ही उन लोगों ने चेष्टा की थी। किन्तु इस पागलपन की बाढ़ को वे नित्य का सांसारिक सहज स्रोत कैसे बना सकते थे। नशे में आ जाने के बाद बीचमें जो थकावट आती है, उसे दूर करने के लिए मनुष्य फिर उस नशे की चाह करता है, किन्तु वह नशा आशा कहाँ से लावेगी। ऐसे ही समय में विनोदिनी ने नये रंगीन बरतन

में भरकर नशा ला दिया। आशा अपने पति को प्रसन्न देखकर सुखी हो गयी।

अब उसके लिए कोई खास अपनी चेष्टा नहीं रह गयी। महेन्द्र और विनोदिनी में जब आपस में हँसी दिल्लगी होती तो वह केवल जी खोलकर हँसने में साथ देती थी। ताश खेलने में महेन्द्र जब आशा को धोखा देता था तब वह विनोदिनी को विचारक मानकर सकरुण अभियोग की अवतारणा करती थी। यदि कभी महेन्द्र उससे दिल्लगी कर बैठता या किसी तरह की अनुचित बात कहता तो वह अपने पक्ष में विनोदिनी से उचित प्रत्युत्तर पाने की आशा में उसके मुँह की तरफ देखने लगती। इसी प्रकार इन तीनों की बैठक जम गयी। किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि विनोदिनी अपने काम में किसी तरह की ढिलाई करने लगती। रसोई पकाना, घरेलू कामों को सम्हालना, राजलक्ष्मी की सेवा करना—इन सब कामों को भली-भांति पूरा करके फिर निश्चिन्त हो चुकने पर ही वह आमोद-प्रमोद में शामिल होती। महेन्द्र घबराकर कहता—"मैं देखता हूँ कि नौकर चाकरों और दासियों दाइयों से कुछ भी काम न लेकर तुम उन्हें मिट्टी में मिला दोगी।" विनोदिनी जवाब में बोल उठती—"खुद काम न करके मिट्टी में मिलनेकी अपेक्षा तो यही अच्छा है। जाओ तुम कालेज जाओ।"

महेन्द्र—आज तो बदली का दिन है—

विनोदिनी—नहीं, यह नहीं हो सकता, तुम्हारी गाड़ी तैयार है, कालेज जाना पड़ेगा।

महेन्द्र—मैंने गाड़ी लाने को मना कर दिया था।

विनोदिनी—"मैं लाने को कह दिया था" यह कहकर महेन्द्र के कपड़े लाकर कालेज जाने के लिए सामने रख देती।

महेन्द्र—तुम्हारा जन्म तो किसी राजपूत के घर में हुआ होता

तो अच्छा होता। युद्धकाल में तुम अपने ही हाथों से स्वजनों को कवच पहिना देती।

अमोद प्रमोद के लिए छुट्टी लेना, पढ़ने जाने में नागा करना—ये सब अब विनोदिनी की कड़ाई से कठिन हो गया। इनमें विनोदिनी से कुछ भी सहारा नहीं मिलता। उसके कड़े शासन से दिनमें दोपहर का हँसी खेल एकदम ही बन्द हो गया। इस प्रकार सन्ध्याकाल का अवकाश महेन्द्र के लिए अत्यन्त रमणीय और लोभनीय मालूम पड़ने लगा। उसका दिन मानों अपने अवसान के लिए प्रतीक्षा में बैठा रहने लगा।

पहले कभी-कभी ठीक समय पर रसोई तैयार न होती थी और उसका बहाना करके महेन्द्र प्रसन्न होकर कालेज जाना रोक देता था। अब विनोदिनी स्वयं बन्दोबस्त करके महेन्द्र के लिए कालेज जाने के समय तक खाना तैयार कर देती है और खाना खा चुकने के साथ ही उसे तुरत खबर मिल जाती है कि गाड़ी तैयार खड़ी है। पहले की हालत तो ऐसी थी कि कपड़ों में कौन कपड़ा कहाँ पड़ा हुआ है, धोबी के यहाँ गया है या कहीं इधर उधर पड़ा है इसका ही पता नहीं लगता था, तहाये जाकर ठीक स्थान पर आलमारी में तो रखे जाने की बात ही अलग रही।

पहले पहल विनोदिनी इन सब विशृङ्खलाओंको लेकर महेन्द्र के सामने ही मुस्कुराहट के साथ डाँटती,—महेन्द्र भी आशा का निरुपाय अनाड़ी पन स्नेह के साथ हँसकर टालदिया दिया करता था। अन्त में सखीवात्सल्य में पड़कर विनोदिनी ने आशा का कर्तव्यभार अपने ऊपर ले लिया। घर की श्री पुनः लौट आयी।

कोट का बटन टूट गया है, आशा शीघ्र उसको ठीक करनेका कोई उपाय नहीं कर पाती। विनोदिनी झटपट आकर घबराई हुई आशा के हाथ से कोट छीनकर झटपट सिलाई कर देती है। एक दिन महेन्द्र के लिए तैयार किये गये भाजन में बिल्ली ने मुँह डाल

दिया—आशा चिन्ता में घबरा उठी, विनोदिनी ने उसी समय रसोईघर में जाकर, सब सामान न मालूम कहाँ से जुटाकर काम चला दिया। आशा आश्चर्य में पड़ गयी।

महेन्द्र इसी तरह भोजन करने, पहनने, ओढ़ने, काम करने और विश्राम करने में सब जगह विनोदिनी की सेवा का अनुभव करने लगा। विनोदिनी के हाथ से तैयार किया गया रेशम का जूता उसके पैरों में और ऊनी गुलबन्स, गले में उसके कोमल मानसिक सस्पर्श की भाँति घेरकर मानों ठहर गये। आशा आजकल सखी के हाथों की सजावट से सज धजकर ठाटबाट से सुन्दर वेश में सुगन्ध लगाकर महेन्द्र के पास जाया करती है। इस सजावट में कुछ तो आशा की अपनी और कुछ तो दूसरे की—सजावट ठाटबाट सौन्दर्य में वह गङ्गा-यमुना के साथ अपनी सखी के साथ मिल गयी है।

आजकल बिहारी का पहले की तरह आदर नहीं होता, उसकी अब बुलाहट नहीं होती। बिहारी ने महेन्द्र के पास लिख भेजा कि कल रविवार है, दोपहर को मैं आऊँगा और माँ के हाथ की रसोई खाऊँगा। महेन्द्र ने देखा रविवार बिल्कुल मिट्टी हो जाना चाहता है, इसलिए उसने जल्दी में उत्तर लिख भेजा कि कल रविवार को तो एक बहुत ही जरूरी काम से मुझे बाहर जाना पड़ेगा।

किन्तु इतना होने पर भी बिहारी उस दिन खाना खाकर महेन्द्र के मकान पर असल बात का पता लगाने के लिए जा धमका। नौकरसे सुना कि महेन्द्र मकान से बाहर कहीं भी नहीं गया है। यह मालूम होते ही वह 'महेन्द्र भैया' 'महेन्द्र भैया' पुकारता धड़-धड़ सीढ़ियों से चढ़ता हुआ ऊपर महेन्द्र के कमरे में पहुँचा। महेन्द्र उसे देखते ही घबरा उठा और कहा, "आज सिर में बड़ा दर्द है।' यह कहकर तकिये पर टेककर लेट गया। यह सुन कर और महेन्द्र का मुरझाया हुआ मुँह देखकर आशा घबरा गयी।

"क्या करना चाहिये" इस सोच में पड़कर वह विनोदिनी के मुँह की ओर देखने लगी। विनोदिनी खूब समझ रही थी कि सिर में कितना और कैसा दर्द है, फिर भी उसने ऊपरी तौर से घबराहट दिखाकर कहा, "बहुत देर से बैठे हुए हो, थोड़ी देर तक सो रहो। मैं "ओडीकोलीन" लाये देती हूँ।"

महेन्द्रने कहा, "रहने दो, कोई जरूरत नहीं।"

विनोदिनी ने इस पर ध्यान नहीं दिया, तेजी से ओडीकोलोन को बर्फ के जलमें मिलाकर ले आयी, और आशा के हाथ में भींगा रूमाल रखकर कहा, महेन्द्र बाबू के माथे पर बांध दो।

महेन्द्र बार बार कहने लगा—"रहने दो न।" बिहारी हँसी को रोककर चुपचाप यह अभिनय देखने लगा। महेन्द्र गर्व के साथ सोचने लगा, "बिहारी देख ले कि मेरा कितना आदर है।"

आशा का हाथ बिहारी के सामने लज्जा से काँपने लगा, वह रूमाल अच्छी तरह न बाँध सकी—कई बूँद आडीकोलीन महेन्द्र की आँख में पड़ गया। विनोदिनी ने आशा के हाथ से रूमाल लेकर अच्छी तरह बाँध दिया और दूसरे कपड़े को ओडीकोलोन से भिगोकर थोड़ा थोड़ा करके बँधी पट्टी पर उसे निचोड़ दिया—आशा घूँघट खींचकर पंखा झलने लगी।

विनोदिनी ने नम्र स्वर में पूछा, "महेन्द्र बाबू आराम मिल रहा है न?"

इस प्रकार अपने मधुर स्वर में मधु डालकर विनोदिनी ने तीखी नजरों से एक बार बिहारी के मुँह की तरफ देख लिया। देखा कि बिहारी की आँखें कौतुक से हँस रही हैं। उसके सामने यह सब खेलवाड़ ही मालूम पड़ रहा था। विनोदिनी समझ गयी थी, इस मनुष्य को भुलावे में डालना सहज काम नहीं है—कुछ भी इसकी नजरों से छिपाया नहीं जा सकता।

बिहारी ने हँसकर कहा—"भाभी, ऐसी शुश्रूषा पाने से रोग अच्छा न होगा बल्कि और बढ़ जायगा।"

विनोदिनी—यह बात मैं कैसे जान सकूँगी, हम तो मूर्ख औरतें हैं। आप लोगों की डाक्टरी किताबों में शायद ऐसा ही लिखा हुआ है।

बिहारी लिखा तो है ही। सेवा देखकर मेरे सिर में भी दर्द शुरू हो गया है। किन्तु हम जैसे अभागे का सिरदर्द तो बगैर इलाज के ही झटपट अच्छा हो जाता है। महीन भाई का अनुभव बड़ा ही तेज है।

विनोदिनी ने भींगे कपड़े को रखकर कहा—"कोई जरूरत नहीं, मित्र की चिकित्सा मित्र ही कर लें।"

इस तरह का कारबार देखकर बिहारी भीतर ही भीतर बड़ा ही रंज हो उठा था। इन कई दिनों तक वह अध्ययन में व्यस्त था, इसके बीच ही महेन्द्र विनोदनी और आशा में इतनी घनिष्ठता बढ़ गयी है इसकी जानकारी उसे नहीं थी। आज उसने विनोदिनी को अच्छी तरह देख लिया और विनोदिनी ने भी उसे देखा।

बिहारी ने कुछ तीखे स्वर में कहा—"अच्छी बात है। मित्र की चिकित्सा मित्र ही करेगा। मैं ही सिरदर्द लाया था और मैं ही उसे साथ लिये जा रहा हूँ। ओडीकोलोन लाकर फजूल का खर्च मत कीजियेगा।" आशा की ओर देखकर कहा—"भाभी, चिकित्सा करके रोग हटाने की अपेक्षा रोग न होने देना ही अच्छा समझा जाता है।"

१६

बिहारी ने सोचा, "अब तो दूर रहने से काम न चलेगा, जैसे भी हो, इन लोगों के बीच में मुझे भी अपना स्थान रखना होगा। इनमेंसे कोई भी मुझे न चाहेंगे, फिर भी मुझे रहना ही चाहिये।"

बुलाहट या आदर अभ्यर्थना की प्रतीक्षा में न रहकर बिहारी महेन्द्र के व्यूह के अन्दर घुसने लगा। विनोदिनी से उसने कहा – "देखो भाभी, इस लड़के को इसकी माँ ने मिट्टी बना दिया है, मित्र ने भी मिट्टी कर दिया है, स्त्री भी मिट्टी कर रही है, अब तुम भी इसी दल में न मिलकर इसे एक नया मार्ग दिखा दो, मेरी यही प्रार्थना है।"

महेन्द्र—अर्थात् ?

बिहारी—अर्थात् मुझ ऐसे आदमी को, जिसे कोई भी कभी नहीं पूछता।

महेन्द्र—उसको मिट्टी करो! बिहारी, मिट्टी होनेकी उम्मेदवारी सहज नहीं है। दरखास्त पेश कर देने से ही काम नहीं होता!

विनोदिनी ने हँसकर कहा—"मिट्टी होनेकी शक्ति रहनी चाहिये बिहारी बाबू!

बिहारी ने कहा—"अपना गुण न रहने पर भी हाथ की करीगरी में निपुणता से यह हो सकता है। एक बार जाँच करके देख ही लो न।"

विनोदिनी—पहले से तैयार होकर आने से कुछ नहीं होता, असावधान रहना पड़ता है। तुम क्या कहती हो सखी "आँख की किरकिरी"! अपने इस देवर का भार तुम ही अपने ऊपर ले लो न।

आशा ने उसे दोनों अंगुलियों से ढकेल दिया। बिहारी ने भी इस दिल्लगी का कुछ जवाब नहीं दिया।

आशा को लेकर बिहारी से दिल्लगी करना बिहारी से सहा न जा सकेगा, यह बात विनोदिनी से छिपी नहीं रह गयी थी। वह आशा को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है और मुझे हलकी करना चाहता है, यह बात विनोदिनी को काँटे के समान चुभी।

उसने फिर आशा से कहा, "तुम्हारा यह देवर मेरे ही बहाने तुमसे ही आदर की भिक्षा माँगने आया है, कुछ दे दो न बहिन।"

आशा नाराज हो गयी। क्षण भर के लिए बिहारी का मुँह लाल हो उठा, बाद को उसने हँसकर कहा—"मेरी दफा ही दूसरे पर टालमटोल करोगी और महीन भैया के साथ ही नकद कारबार करती रहोगी।"

बिहारी सब कुछ चौपट करके मिट्टी में मिलाने के लिए ही आया है। वह यह बात समझ गयी कि बिहारी के सामने सशस्त्र रहना होगा।

महेन्द्र भी रंज हो उठा। खोलकर बातें कह देने से कवित्व की मधुरता नष्ट हो जाती है। उसने कुछ तीव्र स्वर में ही कहा "बिहारी, तुम्हारे महीन भैया किसी कारबार में नहीं जाते। हाथ में जो कुछ मौजूद है, उसी में वे सन्तुष्ट रहा करते हैं।"

बिहारी—वे भले ही न जायँ, किन्तु भाग्य में लिखा रहने से कारबार की लहर बाहर से भी आ लगती है।

विनोदिनी—फिलहाल तो आपके हाथ में कुछ भी नहीं है, किन्तु आपकी लहर किस दिशा से आ रही है। यह कह कर उसने कटाक्ष की हँसी के साथ आशा को हाथ से दबा दिया। आशा नाराज होकर उठ गयी। बिहारी परास्त होकर क्रोध से चुप हो गया, ज्योंही उठ जाने के लिए उठने लगा त्योंही विनोदिनी ने

कहा—"हताश होकर न जाइये बिहारी बाबू, मैं अपनी आँख की किरकिरी को भेज देती हूँ।"

विनोदिनीके जाने के साथ ही सभा भंग हो जाने पर महेन्द्र मन ही मन बहुत ही रुष्ट हुआ। उसका अप्रसन्न मुँह देखकर बिहारी का रुका हुआ जोश उमड़ चला। कहा—"महीन भैया, अपना सर्वनाश करना चाहते हो तो करो। सदा से तुम्हारी यही आदत है। किन्तु जो सरल हृदया बालिका तुम्हारे ऊपर विश्वास करके आश्रय ग्रहण करके जी रही है, उसका सर्वनाश न करना। अब भी कह रहा हूँ कि उसकी जिन्दगी बर्बाद न करना।"—कहते कहते बिहारी का गला भर आया।

महेन्द्र ने अपने क्रोधको रोक कर कहा—"बिहारी, तुम्हारी बातें तो मैं कुछ भी नहीं समझ रहा हूँ। पहेली छोड़कर साफ साफ बताओ, क्या कह रहे हो।"

बिहारी ने कहा—"साफ साफ ही कहूँगा। जानबूझकर ही विनोदिनी तुम्हें अधर्म की तरफ खींच रही है और तुम अनजान में मूढ़ की भाँति कुमार्ग में कदम बढ़ा रहे हो।"

महेन्द्र ने गरजकर कहा—"झूठी बात। तुम यदि भले आदमी की लड़की को इस तरह अन्याय की दृष्टि से देखते हो, मकान के अन्दर आना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।"

इसी समय एक थाली में मिठाई लिये विनोदिनी आयी और हँसती हुई उसने वह थाली बिहारी के सामने रख दी। बिहारी ने कहा, "यह क्या मामला है। मुझे तो भूख नहीं है।"

विनोदिनी ने कहा, "यह कैसे हो सकता है। जरासा मीठा मुँह करके ही आपको जाना होगा।"

बिहारी ने हँस कर कहा—"शायद मेरी दरखास्त मंजूर हो गयी। आदर शुरू हो गया।"

विनोदिनी ने दबी हुई हँसी में कहा—"आप जब नाते में

देवर लगते हैं तो उसका जोर भी तो है। जहाँ दावा चल सकता है तहाँ भीख माँगने की क्या जरूरत है। आप तो जबर्दस्ती आदर छीन सकते हैं। आपकी क्या राय है महेन्द्र बाबू।"

महेन्द्र बाबू के मुँह से कोई बात क्रोधसे नहीं निकल रही थी।

विनोदिनी—बिहारी बाबू, लज्जा के मारे नहीं खा रहे हो या नाराज हो गये हो और किसी को बुला लाना होगा?

बिहारी-कोई जरूरत नहीं है। जो कुछ मिला वही काफी है।

विनोदिनी-दिल्लगी। इसमें आपसे कोई जीत नहीं सकता किन्तु मिठाई से भी आपका मुँह बन्द नहीं होता।

रात को आशा ने महेन्द्र के सामने बिहारी पर रोष प्रकट किया—महेन्द्र ने उसे दूसरे दिनों की तरह हँसकर उड़ा नहीं दिया उसमें पूरा सहयोग दिया।

सवेरे उठते ही महेन्द्र बिहारी के मकान पर गया। कहा—"बिहारी, हजार हो विनोदिनी हमारे घर की औरत नहीं है—तुम जब उसके सामने घर के अन्दर चले आते हो तो वह कुछ रंज हो उठती है।"

बिहारी ने कहा—"क्या यह बात है? तब तो अच्छा काम नहीं हुआ। यदि वे आपत्ति करती हो तो उनके सामने न जाने से मेरा हर्ज ही क्या है।"

महेन्द्र निश्चिन्त हो गया। उसे बिल्कुल ही आशा नहीं थी कि यह अप्रिय काम इतनी सहूलियत से सिद्ध हो जायगा। महेन्द्र बिहारी से डरता था।

उसी दिन बिहारी ने महेन्द्र के घर जाकर कहा, "भाभी, मुझे माफी दे दो।"

विनोदिनी—क्यों बिहारी बाबू?

बिहारी—महेन्द्र से मुझे मालूम हुआ है कि, मैं बेधड़क आपके

सामने मकान के अन्दर चला आता हूँ। इससे आप रंज हुई हैं। माँफी माँगकर बिदा होना चाहता हूँ।

विनोदिनी—यह कैसे होगा बिहारी बाबू, मैं आज हूँ, कल चली जाऊँगी, मेरे कारण आप क्यों चले जायेंगे। यदि मैं जानती कि इतना झमेला मचेगा तो मैं यहाँ आती ही नहीं। इतनी बात कहकर विनोदिनी उदास चेहरा बनाकर मानो आँसू रोकती हुई तेजी से कदम बढ़ाकर दूसरे कमरे में चली गयी।

बिहारी ने थोड़ी देर के लिए मन में यह सोचा कि, झूठमूठ का सन्देह प्रकट करके मैंने विनोदिनी के मन में व्यर्थ ही चोट पहुँचा दी है।

उसी दिन शाम को राजलक्ष्मी ने दुखित होकर कहा,'महीन, विपिन की बहू तो अपने घर जाने के लिए जिद कर रही है।'

महेन्द्रने कहा—'क्यों माँ, यहाँ उन्हें कौनसी असुविधा हो रही है।"

राजलक्ष्मी—असुविधा नहीं। वह कहती है कि उसकी तरह जवान विधवा स्त्री बहुत दिनों तक दूसरे के घर में रहेगी तो लोग निन्दा करेंगे।

महेन्द्र ने क्षुब्ध होकर कहा—"क्या यह पराया घर है?"

बिहारी बैठा था। महेन्द्र ने उसकी तरफ भर्त्सना की दृष्टि से देखा। यह सुनकर बिहारी पछताने लगा। उसने सोचा—कल मेरी बातचीत में निन्दा की कुछ झलक थी शायद उसी से विनोदिनी को चोट पहुँची है।

महेन्द्र और आशा दोनों ही विनोदिनी से नाराज हो गये। एक ने कहा, "हमें परायी समझ रही हो?' दूसरे ने कहा, 'इतने दिनों के बाद हम पराये हो गये।"

विनोदिनी ने कहा—"मुझे क्या आप लोग सदा यहीं रखे रहेंगे?"

महेन्द्र ने कहा—"हममें इतनी ताकत कहाँ !"

आशा ने कहा—"तो तुमने क्यों इस तरह हमारे मन छीन लिए ? उस दिन कुछ भी निश्चय न हो सका।" विनोदिनीने कहा, "नहीं बहिन, अब रहने की जरूरत नहीं, दो दिन के लिए मोह न बढ़ाना ही अच्छा होगा।" इतना कहकर उसने एक बार व्याकुल चित्त से महेन्द्र की तरफ देखा।

दूसरे दिन विहारी ने आकर कहा—"भाभी, जाने की बातें क्यों कर रही हो। क्या मैंने कुछ अपराध किया है—उसकी दंड दे रही हो।"

विनोदिनी ने कुछ मुँह घुमाकर कहा—"आप का क्या दोष है, मेरे भाग्य का ही दोष है।"

विहारी—यदि आप चली जायँगी तो मुझे यह मालूम होने लगेगा कि आप मुझसे नाराज होकर चली गयीं।

विनोदिनी ने सकरुण दृष्टि से नम्रता दिखाकर बिहारी के मुँह की तरफ देखा—कहा-"आप ही बतलाइये, क्या मेरा यहाँ रहना उचित है ?'

विहारी मुश्किल में पड़ा गया। रहना उचित है, यह बात वह कैसे कहे। उसने कहा—"अवश्य आपको तो जाना ही पड़ेगा, न हो, कुछ दिन और रहकर जाइये, इसमें क्या हानि है।"

विनोदिनी ने दोनों आँखें झुकाकर के कहा, "आप लोग सभी मुझसे रहने के लिए अनुरोध कर रहे हैं, आप लोगों की बात न मानना मेरे लिए कठिन है, किन्तु आप लोग यह बड़ा ही अन्याय कर रहे हैं।"

यह कहते कहते उसकी बड़ी आँखों से आँसू के बड़ी-बड़ी बूँदें टपक कर गिरने लगीं।

बिहारी इस नीरव अश्रुजल से व्याकुल हो उठा। उसने कहा—इतने थोड़े दिनों में ही यहाँ आकर आपने अपने गुणों से

सबको वश में कर लिया, यही कारण है कि आपको कोई भी छोड़ना नहीं चाहता—कुछ ख्याल न करो भाभी, तुम जैसी लक्ष्मी को कौन इच्छापूर्वक छोड़ सकता है।

आशा एक कोने में घूँघट खींचकर बैठी थी, वह अपने आँचल से बार बार आँखें पोछने लगी।

इसके बाद फिर विनोदिनी ने कभी जाने की चर्चा नहीं की।

—:⊛:—

१७

Bansi Brot

बीच की गड़बड़ी को एकदम मिटा डालने के लिए महेन्द्र ने प्रस्ताव किया—"अगले रविवार को दमदम वाले बगीचे में जाकर खाना पीना किया जाय।"

आशा बहुत ही उत्साहित हो गयी। किन्तु विनोदिनी किसी तरह भी राजी नहीं हुई। महेन्द्र और आशा के मन में उसके इन्कार करने से बहुत ही असन्तोष पैदा हुआ। उन्होंने सोचा, आजकल विनोदिनी मानो हमलोगों से दूर हटकर रहने की तैयारी में रहा करती है।

तीसरे पहर बिहारी के आने पर तुरत ही विनोदिनी ने कहा; "देखिये तो बिहारी बाबू, महीन बाबू रविवार को अपने दम-दम के बगीचे में टहलने जायँगे, वहीं कुछ खाना-पीना करेंगे, मैं साथ जाना नहीं चाहती, इसलिए आज सबेरे से ही वे दोनों ही नाराज हो गये हैं।"

बिहारी ने कहा—"नाराज होना अनुचित नहीं है। आपके न जाने से इनके खाने-पीने के उत्सव में जो होगा, वह कभी किसी बड़े शत्रु के भी न हो।"

विनोदिनी—चलिये न बिहारी बाबू। यदि आप चलें, तो मैं

भी चलने को राजी हूँ।

बिहारी—अच्छी बात। किन्तु मालिक की इच्छा से काम होता है, वे क्या कहते हैं।

बिहारी के प्रति विनोदिनी का यह विशेष पक्षपात देखकर मालिक और मालकिन दोनों ही नाराज हो गये। बिहारी को साथ ले जाने के प्रस्ताव से महेन्द्र का आधा उत्साह उड़ गया। महेन्द्र बराबर ही इस कोशिश में लगा रहता था कि मित्र के मन में यह बात अङ्कित कर दी जाय कि उसकी उपस्थिति विनोदिनी को किसी समय भी अच्छी नहीं मालूम होती, किन्तु जो बातचीत सुनाई पड़ी उससे वह समझ गया कि अब आगे से बिहारी को आने से रोकना असाध्य हो जायगा।

महेन्द्र ने कहा—अच्छा तो है, हर्ज ही क्या? किन्तु बिहारी तुम जहाँ जाते हो वहाँ कुछ न कुछ गड़बड़ी मचाये बिना नहीं रह सकते। हो सकता है कि वहाँ तुम मुहल्ले के लड़कोंको जमा कर दोगे या किसी गोरे से मारपीट ही करने लगोगे—तुम्हारा क्या ठिकाना है।

बिहारी यह समझकर कि महेन्द्र की आन्तरिक इच्छा नहीं है, मन ही मन हँसने लगा। कहा—"यही तो दुनिया का मजा है, कैसे क्या हो जायगा, कहाँ कौन फसाद खड़ा हो जायगा, यह पहले से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। भाभी, खूब तड़के ही चलना पड़ेगा, मैं ठीक समय पर हाजिर हो जाऊँगा।"

रविवार को सबेरे माल असबाब और नौकर चाकरों केलिए एक थर्ड क्लास और मालिकों के लिए एक सेकेण्ड क्लास गाड़ी किराये पर लायी गयी। बिहारी भी एक बहुत बड़ा पैकबक्स लाकर ठीक समय पर हाजिर हो गया। महेन्द्र ने कहा, यह क्या लेते आये। नौकरों की गाड़ी में इसे रखने की जगह कहाँ है।

बिहारी ने कहा—"घबराओ नहीं भैया, मैं सब ठीक किये देता हूँ।"

विनोदिनी और आशा गाड़ी के भीतर बैठ गयीं। बिहारी को कहाँ जगह मिलेगी, इस चिन्ता से महेन्द्र इधर-उधर कुछ करने लगा। बिहारी ने अपना असबाब गाड़ी की छत पर रख दिया और झटपट कोचबक्स के ऊपर जा बैठा।

महेन्द्र की जान बची। यह सोच रहा था, "बिहारी गाड़ी के भीतर बैठ जायगा, या क्या करेगा, इसका कुछ भी ता ठिकाना नहीं है।" घबराकर विनोदिनी कहने लगी, "बिहारी बाबू गिर तो न जाइयेगा।"

बिहारी ने सुनकर कहा, "डरिये मत, गिर जाना या बेहोश हो जाना मेरे पाठ में नहीं है।"

गाड़ी चलते ही महेन्द्र ने कहा, "न हो, मैं ही ऊपर जाकर बैठूँ और बिहारी को यहाँ भेज दूँ।"

आशा ने घबड़ाकर उसकी चादर पकड़कर कहा—"नहीं, तुम न जा सकोगे।"

विनोदिनी ने कहा—"आपको अभ्यास नहीं है, जरूरत ही क्या है, ऐसा न हो कि गिर जायँ।"

महेन्द्रने उत्तेजित होकर कहा-"गिर पड़ूँगा? कभी नहीं।" यह कहकर वह उसी समय बाहर निकलने को तैयार हो गया। विनोदिनी ने कहा, "आप बिहारी बाबू को दोष देते थे, किन्तु झमेला बढ़ाने में तो आप ही अद्वितीय मालूम पड़ते हैं।"

महेन्द्र ने मुँह लटकाकर कहा, "अच्छा एक काम किया जाय, मैं दूसरी गाड़ी किराये पर ठीक करके उसी में जाऊँ और बिहारी इसके भीतर आकर बैठ जाय।"

आशा ने कहा, "यदि ऐसा होगा तो मैं भी उसी गाड़ी में तुम्हारे साथ चलूँगी।"

विनोदिनी ने कहा, "और मैं शायद गाड़ी पर से कूद ही पड़ूँगी।" इसी तरहकी अनापसनाप बातोंके बाद यह बात टल गयी। महेन्द्र रास्ते भर मुँह अत्यन्त गम्भीर बनाये रहा।

दमदम के बगीचे में गाड़ी पहुँची। नौकरों की गाड़ी बहुत पहले चली थी, किन्तु अबतक भी उसका कहीं पता न था।

शरत्काल का सवेरा बहुत ही मधुर था। धूप आ जाने से ओस सूख गयी थी, किन्तु पेड़रूख स्वच्छ प्रकाश पाकर चमक रहे थे। चहारदीवारीके पास हरसिंगार की पातें थीं। उनके नीचे की जमीन फूलों से भरी हुई थी और सुगन्धि फैली हुई थी।

आशा कलकत्ते के पक्के मकान के बन्धन से छूटकर जंगली मृगी की भाँति प्रसन्न हो उठी। उसने विनोदिनी के साथ बहुत से फूल इकट्ठे किये। पेड़ से पका शरीफा तोड़कर उसके नीचे बैठकर खाया, दोनों तालाब में जाकर बहुत देरतक नहाती रहीं। इन दोनों नारियों ने मिलकर एक बे मतलब के आनन्द में मग्न होकर पेड़ की छाया को और डालियों के बीच से आनेवाली रोशनी को, तालाब के जल को और बगीचे के फल-फूलों को पुलकित कर दिया।

नहा चुकने के बाद दोनों सखियों ने आकर देखा कि नौकरों की गाड़ी तबतक भी नहीं आयी है। महेन्द्र बगीचे के मकान के बरामदे में चौकी पर बैठकर सूखे मुँह से एक विलायती दूकान का नोटिस पढ़ रहा है।

विनोदिनी ने पूछा, "बिहारी बाबू कहाँ हैं?"

महेन्द्र ने संक्षेप में उत्तर दिया, "मालूम नहीं।"

विनोदिनी—चलिये उन्हें ढूँढ़ लावें।

महेन्द्र—इस बात की कोई आशंका नहीं कि उन्हें कोई चुरा ले जायगा, न खोजने से भी वे मिल ही जायंगे।

विनोदिनी—किन्तु हो सकता है कि वे आपके लिए चिन्ता

में पड़कर घबरा रहे हो और डरते हो कि कहीं दुर्लभ रत्न खो न जाय। चलिये उन्हें सान्त्वना दे आवें।

तालाब के किनारे एक बर का पेड़ था और उसकी जड़ से मिला एक चबूतरा। वहीं पर बिहारी अपनी पैकबाक्स खोलकर, किरासिन चूल्हा जलाकर पानी गर्म कर रहा था। सबके आने पर तुरत ही आतिथ्य प्रकट करके पक्की वेदी पर उन्हें बैठने की जगह दी और एक एक प्याली चाय पीने को दी तथा एक छोटी तस्तरी में कुछ मिठाई निकाल कर रख दी। विनोदिनी बार बार कहने लगी, "अच्छा हुआ कि बिहारी बाबू सब सामान जुटाकर लेते आये, इसीसे रक्षा हुई नहीं तो चाय न मिलने से महेन्द्र बाबू को कैसी हालत होती ?

चाय पी लेने पर महेन्द्र की बेचैनी दूर हो गयी, तो भी उसने कहा, "बिहारी ने सब मजा बिगाड़ दिया, बाहर बगीचे में खाना पीना करके मौज लेने आये थे। यहाँ पर घर की तरह पूरी तैयारी करके सामान लेते आये। इसमें मजा नहीं रहता।"

बिहारी ने कहा—"तो तुम मेरी चाय ही लौटा दो। तुम खाना न खाकर जाओ मौज करो—मैं रुकावट न डालूँगा।"

दिन काफी चढ़ गया, तथापि नौकरों की गाड़ी नहीं आयी। बिहारी के बाक्स से खाने पीने का सब सामान निकलने लगा। चावल, दाल, तरकारी और छोटी-छोटी शीशियों में सब तरह का मसाला भी निकला।

विनोदिनी आश्चर्य में पड़कर कहने लगी—"बिहारीबाबू, आप तो हम लोगों से भी आगे बढ़ गये। घर में तो अभी गृहिणी नहीं है, ये सब काम कहाँ से सीख लिया।"

बिहारी ने कहा—"प्राण रक्षा के लिए सीखना पड़ा है। अपना काम स्वयं ही कर लेना चाहिये।"

बिहारी ने बहुत ही हँसी में यह बात कही थी, किन्तु विनो-

दिनी ने गम्भीर होकर बिहारी के मुँह की तरफ कृपापूर्ण दृष्टि से देखा।

विहारी और विनोदिनी दोनों एक साथ रसोई बनाने लगीं। आशा यह देखकर कुछ संकोच के साथ सहायता को पहुँची वो विहारी ने मना किया। इस काम में अनाड़ी महेन्द्र ने सहायता करने की बिल्कुल ही चेष्टा नहीं की। पेड़ की जड़ के सहारे लेटकर एक पैर पर दूसरा पेर रखकर वह हवा से हिलनेवाली बर के पेड़ की पत्तियों पर पड़नेवाली सूर्य किरणों का नृत्य देखने लगा।

रसोई प्रायः तैयार हो जाने पर विनोदिनी ने कहा—"महीन बाबू, आप उस बरके पेड़ की पत्तियों को गिन न सकेंगे, अब नहाने जाइये।"

इस बीच नौकर चाकरों का दल सब सामान लिये आ पहुँचा। उनकी गाड़ी रास्ते में ही टूट गयी थी। उस समय दोपहर हो चुका था।

भोजन के बाद पेड़ के नीचे ताश खेलने का विचार किया गया। महेन्द्र किसी तरह भी राजी न हुआ और देखते देखते छाया के नीचे लेटकर सो गया। आशा कमरे का किवाड़ बन्द कर सोने चली गयी। विनोदिनी ने माथे पर आँचल ओढ़कर कहा, "मैं भी कमरे के भीतर जा रही हूँ।"

बिहारीने कहा—"कहाँ जाइयेगा, बैठिये, कुछ बातचीत कीजिये, अपने गाँव की बात सुनाइये।"

क्षण-क्षण भर में गर्म दोपहर की हवा वृक्ष की पत्तियों को हिलाकर चली जाती थी। बीच-बीच में तालाब के किनारे के जामुन के पेड की घनी पत्तियों के बीच कोयल बोल उठती थी। विनोदिनी अपने बचपन की बातें कहने लगी, अपने माँ बाप की बातें और बचपन के साथियों की बातें करते करते उसके सिर का

कपड़ा खिसक गया। विनोदिनी के चेहरे पर पूर्ण यौवन की जो दीप्ति सदा झलकती रहती था उस बाल्यस्मृति की छाया से वह दीप्ति और भी चमकने लगी। विनोदिनी की आँखों में जिस कौतुकपूर्ण तीव्र कटाक्ष को देखकर तीक्ष्ण दृष्टि वाले बिहारी के मन में अबतक तरह तरह के सन्देह उत्पन्न हुए थे, वह उज्वल सांवली ज्योति जब एक शान्त सजल रेखा से मलीन हो गयी तब बिहारी को मानों कोई दूसरा ही आदमी दिखाई पड़ने लगा। उसने देखा कि इस दीप्तीमण्डलके केन्द्रस्थल में कोमल हृदय अब भी अमृतधारासे सरस बना हुआ है—अमृत रंग-रस-विलास की दहन ज्वाला से अब तक भी नारी हृदय सूख नहीं गया है। विनोदिनी सलज्जा सती स्त्री की भाँति अनन्य भक्ति के साथ पतिसेवा कर रही है, कल्याणमयी जननी की भाँति सन्तान को गोद में धारण किये हुए है, यह मूर्ति क्षण भर के लिए भी कभी बिहारीके मन में पहले उदित नहीं हुई थी। आज मानो अचानक रङ्गमंच का परदा थोड़ी देर के लिए हट गया और घरके अन्दर का एक मंगलमय दृश्य दिखाई पड़ने लगा। बिहारीने सोचा, "विनोदिनी बाहरी तौर पर एक विलासिनी युवतीसी मालूम अवश्य पड़ती है किन्तु उसके भीतर एक पूजारता नारी, अनाहार तपस्या कर रही है।" लम्बी साँस खींचकर बिहारी ने मन ही मन कहा, "मनुष्य अपने आप को ठीक ठीक नहीं पहचान सकता तो दूसरे को क्या पहचानेगा, केवल अन्तर्यामी ही जान सकता है। परिस्थिति में पड़कर जो बाहरी रूप प्रकट होता है दुनिया के लोग उसे ही सच मान लेते हैं" बिहारी ने बातचीत का सिलसिला हटने नहीं दिया, वह बारबार प्रश्नकर करके उसे जारीही रखने लगा, इनसब बातों को इस तरह खोल कर सुनाने लायक कोई आदमी अबतक विनोदिनी को नहीं मिला था—विशेषतः किसी पुरुष के सामने उसने अपने आपको भूलकर इस तरह अस्वाभाविक रूप से ये बातें

नहीं की थीं। आज हृदय की बातें खोलकर कहने से उसकी सारी प्रकृति मानो नवीन जलधारा से स्निग्ध और परितृप्त हो उठी।

बहुत सवेरे उठने को बाध्य होने के कारण आज महेन्द्र थकी हालत में भरपेट सोकर पाँच बजे उठा। उठते ही झुंझलाकर कहा, "अब लौटने की तैयारी होनी चाहिये।"

विनोदिनी ने कहा—"और कुछ देरतक ठहर कर चलें तो क्या कोई हर्ज होगा?"

महेन्द्र ने कहा, "नहीं, चलना ही ठीक होगा, कहीं मतवाले गोरों से मुठभेड़ न हो जाय, इसकी भी तो आशंका है।"

सब माल असबाब और सब सामान बटोर कर रखने में अँधेरा हो गया। ऐसे ही समय नौकरों ने आकर कहा—किराये की गाड़ी न मालूम कहाँ चली गयी, खोजने पर कहीं भी पता नहीं चला। बगीचे के बाहर गाडी खडी थी। दो गोरे गाडीवान से जबरदस्ती छीनकर उसे स्टेशन की तरफ लेते गये हैं।

एक दूसरी गाड़ी लानेके लिए नौकर भेजा गया। रंज महेन्द्र बार बार मन ही मन सोचने लगा, "आज का सारा दिन चौपट गया—वह इतना ऊब उठा था कि अपना मनोभाव छिपाना उसके लिए कठिन हो गया।

शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा वृक्षोंकी डालियोंसे छिपी दिशाओं को पार करके धीरे-धीरे खुले आकाश पर चढ़ने लगा। निस्तब्ध निष्कम्प बगीचा अंधकार और प्रकाश के संमिश्रण से रंजित हो चला। आज इस मायामण्डित पृथ्वी में विनोदिनी ने एक तरह का अपूर्व अनुभव प्राप्त किया। आज जब वह वृक्षों के बीच के तंग रास्ते में आशा के आलिंगन में लिपट गयी तो उसके प्रेम में बनावटी भाव बिल्कुल ही नहीं था। आशा ने देखा कि विनोदिनी की दोनों आँखों से आँसू गिर रहे हैं। आशा ने व्यथित होकर पूछा, "क्यों बहिन, तुम रो क्यों रही हो?"

विनोदिनी ने कहा—"कुछ नहीं बहिन, मैं अच्छी तरह हूँ। आज का दिन मुझे अच्छा लगा।"

आशा ने पूछा—"कौन बात ऐसी थी जो तुम्हें अच्छी मालूम हुई ?"

विनोदिनी ने कहा—"मुझे ऐसा मालूम हो रहा है मानो मैं मर गयी हूँ, परलोक में चली आयी हूँ और यहाँ मानो मुझे मेरा सब कुछ मिल सकता है।"

आश्चर्य में पड़ी हुई आशा इन बातों का कुछ अर्थ न समझ सकी। मृत्यु की बात सुनकर उसने दुःखित होकर कहा, "छिः बहिन, ऐसी बात मुँह से निकालना ठीक नहीं।"

गाड़ी मिल गयी। बिहारी कोचबाक्स पर जा बैठा। विनोदिनी कुछ भी न कहकर बाहर की तरफ देखती रही। चांदनी से सुशोभित वृक्षोंकी पंक्तियाँ दौड़ते हुए घने छाया-प्रवाह की भाँति उसकी आँखों के सामने से निकलती जाती थीं। आशा गाड़ी के एक कोनेमें सो गयी, महेन्द्र रास्तेमें बराबर बहुत ही उदास भाव से बैठा रहा।

१८

बगीचे के भ्रमणवाले दुर्दिन के बाद महेन्द्र फिर एक बार विनोदिनी को वश में कर लेने को उत्सुक था। किन्तु उसके दूसरे दिन ही राजलक्ष्मी को इन्फ्लुएँजा ज्वर हो गया। रोग भारी न होने पर भी कमजोरी विशेष बढ़ गयी थी। विनोदिनी दिनरात उनकी सेवा में नियुक्त हो गयी।

महेन्द्र ने कहा—"दिनरात इस तरह मिहनत करने से अन्त में

तुम स्वयं बीमार पड़ जाओगी। मैं माँ की सेवा के लिए दासी नियुक्त कर देता हूँ।"

बिहारी ने कहा—"महीन भैया, तुम इतना मत घबराओ। वे सेवा कर रही हैं तो करने दो। इस तरह क्या कोई दूसरा कर सकता है?"

रोगी के कमरे में महेन्द्र ने बार बार जाना शुरू किया। एक आदमी कोई काम तो नहीं करता, फिर भी काम के समय बराबर साथ साथ लगा रहता है, यह काम में व्यस्त विनोदिनी के लिए असहनीय मालूम हुआ। उसने रंज होकर दो तीन बार कहा—"महेन्द्र बाबू आप यहाँ बैठकर क्या सहूलियत बढ़ा रहे हैं? आप जाइये—व्यर्थ कालेज की गैरहाजिरी मत बढ़ाइये।"

महेन्द्र बराबर उसके पीछे लगा रहता है यह समझकर विनोदिनी के मन में एक तरह का गर्व और सुख बना रहता था, किन्तु इस हालत में भी जब कि माताजी बीमार पड़ी हुई हैं, उनकी रोगशय्या के पास लुब्ध हृदय से बैठा रहना उसे बड़ा ही खराब मालूम होता था और वह अपना धीरज खो बैठती थी तथा घृणा करने लगती थी। विनोदिनी पर जब किसी काम का भार आ पड़ता है, तब वह और किसी दूसरी बात का ख्याल नहीं रखती। खिलाना, पिलाना, रोगी की सेवा, घरेलू कामकाज सब वह हृदय से करती असावधान नहीं रहती—जिस समय जो काम करना चाहिये उस समय वह काम न करके दूसरे फजूल के काम में लगा रहना उसे बिलकुल ही रुचिकर नहीं मालूम होता।

बीच-बीच में बिहारी थोड़ी देर के लिए राजलक्ष्मी का हाल मालूम करने के लिए आ जाता था। कमरे में आते ही वह तुरन्त समझ जाता था कि कहाँ किस चीज की कमी है और क्या जरूरत है, क्षणभर में सब ठीक करके वह बाहर चला जाता है। विनो-

दिनी मन में समझ जाती थी कि विहारी मेरे इस शुश्रूषा कार्य को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। इस कारण विहारी का आगमन मानो उसे अपने कामों का पुरस्कारसा मालूम होता था।

महेन्द्र ने अपने आप को अत्यन्त धिक्कारा और कड़े नियम मानकर कालेज जाना शुरू कर दिया। उधर उसका स्वभाव बहुत ही रूखा हो गया था और इसके अलावा घर में और कैसा परिवर्तन हो चला है। ठीक समय पर रसोई तैयार नहीं होती, साईस का पता नहीं रहता, मोजा फटकर बिगड़ते देर नहीं लगती। इन दिनों इन सब गड़बड़ियों से महेन्द्र को पहले की तरह मजा नहीं मालूम होता। जब जिस चीज की जरूरत पड़ती है तब झटपट उस चीज को सजी सजायी हालत में पाने का आराम किसे कहते हैं, इसका अनुभव इधर कुछ दिनों से उसे हो गया है। अब उन सब सुविधाओं के अभाव में महेन्द्र को पहले की भाँति मजा नहीं आता।

वह कहता, "चुन्नी, मैंने तुम्हें कई बार बताया है कि स्नान के पहले ही कोट का बटन लगाकर ठीक रखना और पतलून वगैरह ठीक करके रख देना, किन्तु एक दिन भी तुम ऐसा नहीं करती। स्नान के बाद बटन लगाने और कपड़े खोज लाने में मेरा दो घंटा समय लग जाता है।"

इस आक्षेपपूर्ण उक्ति से आशा लज्जित और उदास हो जाती और कहती, "मैंने कहार से कह दिया था।"

महेन्द्र नाराज होकर बोल उठता, "क्या? कहार से कह दिया था! अपने हाथ से करने से तुम्हारा क्या बिगड़ जाता? तुमसे तो एक काम भी नहीं सिद्ध हो पाता।"

यह उक्ति आशा के लिए वज्राघात सी मालूम हुई। इस तरह की भर्त्सना उसकी कभी नहीं हुई। उसके मुँहसे या मन में यह जवाब नहीं आया कि तुम्हीं ने तो मेरे काम सीखने में

बाधा पहुँचायी। उसे यह धारणा बिल्कुलही नहीं थी कि गृहस्थी का कामकाज सीखने में भी लगातार अभ्यास करने से ही जानकारी प्राप्त होती है। वह समझती थी कि "मेरी स्वाभाविक असमर्थता और बेवकूफी का ही फल है कि मैं कोई काम ठीक तरह से नहीं कर पाती। महेन्द्र जब आत्मविस्मृतसा होकर विनोदिनी से उसकी तुलना करके आशा को धिक्कार देता तो वह उसे चुपचाप बिना आपत्ति के ही स्वीकार कर लेती।

आशा बार बार अपनी बीमार सास के कमरे के आसपास घूमती फिरती है। बार बार लज्जित भाव से दरवाजे के पास आकर खड़ी हो जाती है। वह अपने आपको संसार के लिए उपयोगी वस्तु बनाना चाहती है। वह काम दिखाना चाहती है, किन्तु कोई भी उसका काम देखना नहीं चाहता, उसे यह भी मालूम नहीं कि किस तरह काम में प्रवेश किया जाता है किस तरह संसार में अपने लिए जगह तैयार की जाती है वह अपनी अयोग्यता के संकोच में पड़कर बाहर घूमती रहती है। उसके मन में किसी तरह की पीड़ा प्रति दिन बढ़ती चली जा रही है, किन्तु वह अपनी उस अस्पष्ट पीड़ा को, उस अव्यक्त आशंका को—स्पष्ट रूप से समझ नहीं पाती। उसे ऐसा मालूम होता है मानो अपने चारों तरफ के अपने सुख साधनों को नष्ट कर रही है, किन्तु वह किस तरह उसके लिए तैयार हो गया था और वही फिर किस तरह नष्ट होता जा रहा है और किस तरह उसका प्रतिकार होगा, यह उसे मालूम नहीं है। उसे रह-रहकर केवल चिल्ला-चिल्लाकर रोकर कहने की इच्छा होती है कि "मैं एकदम नालायक हूँ, अत्यन्त असमर्थ हूँ, मेरी मूढ़ता की कहीं भी कोई तुलना नहीं हो सकती।"

पहले तो आशा और महेन्द्र बहुत देर तक एक साथ कमरे के अन्दर बैठकर कभी बातचीत करके, कभी चुपचाप बैठकर पूरे

सुख के साथ समय बिताते थे। आजकल विनोदिनी की अनुपस्थिति से, आशा के साथ अकेले बैठने पर महेन्द्र के मुँह से कोई बात ही नहीं निकलती, साथ ही कुछ न कहकर चुपचाप बैठे रहना भी अच्छा नहीं मालूम होता।

महेन्द्र ने कहार से पूछा, "यह चिट्ठी किसकी है?"

उसने कहा, "बिहारी बाबू की।"

महेन्द्र—यह चिट्ठी किसने दी है?

कहार—बहूजी ने। (विनोदिनी)

'देखूँ' कहकर महेन्द्र ने चिट्ठी ले ली। इच्छा हुई, फाड़कर पढ़ ले। दो चार बार उलट पलटकर हिला डुलाकर कहार के हाथ में उसने फेंक दी। यदि वह खोल लेता तो देखता कि उसमें लिखा है, "बूआजी किसी तरह भी साबूदाना खाना नहीं चाहती, आज क्या उनको दालका जूस दिया जाय?" दवा और पथ्य के बारे में विनोदिनी महेन्द्र से कभी कोई बात नहीं पूछती थी।—इस सम्बन्धमें वह बिहारीकी राय परही निर्भर करती थी।

महेन्द्र बरामदे में कुछ समय तक टहलता रहा और फिर अपने कमरे में प्रवेश करके उसने देखा कि दीवाल पर टँगी एक तसवीर की रस्सी प्रायः टूट गयी है जिससे वह कुछ टेढ़ी हो गयी है। आशा को जोर से धमकाकर उसने कहा, "तुम्हें कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, इसी तरह तो चीजें नष्ट होती रहती हैं।" दमदम के बगीचे से फूल चुनकर विनोदिनी ने पीतल की फूलदानी में गुलदस्ता सजा रखा था, वह सूख जाने पर भी ज्यों का त्यों पड़ा हुआ है,— और किसी दिन महेन्द्र ने इन बातों पर कभी ध्यान ही नहीं दिया, आज उसकी नजर उस पर पड़ी। उसने कहा, "विनोदिनी जबतक स्वयं आकर इसे न फेंक देगी यह फेंका ही न जायगा।" यह कहकर फूल समेत उस फूलदानी को उसने बाहर फेंक दिया, वह सीढ़ियों से ठनठनाती

हुई नीचे की तरफ लुढ़क गयी। 'किस कारण आशा मेरे मन के अनुकूल नहीं हो रही है, क्यों वह मेरी रुचि के अनुसार काम नहीं कर रही है, क्यों वह अपनी स्वाभाविक शिथिलता और दुर्बलताके कारण मुझे दाम्पत्यके मार्गमें दृढ़ रूपसे पकड़कर नहीं रख रही हैं, बराबर मुझे परेशान किये रहती है',—यही बात मन में आन्दोलन करते-करते उसने हठात् देखा, आशाका चेहरा पीला पड़ गया है, वह पलंग का पाया पकड़े खड़ी है, उसके दोनों ओठ काँप रहे हैं—काँपने-काँपते वह अचानक तेजी से पास वाले कमरे में चली गयी।

महेन्द्र तब धीरे-धीरे जाकर फूलदानी उठा लाया और फिर रख दिया। कमरे के कोने में उसकी पढ़नेकी मेज थी, चौकी पर बैठकर उसी मेज पर हाथों पर सिर रखे वह बहुत देर पड़ा रहा।

सन्ध्या हो चली, नौकर बत्ती जलाकर चला गया, किन्तु आशा नहीं आयी। महेन्द्र तेजी से छतपर पहुँचकर इधर उधर टहलने लगा। रात के नौ बज गये, महेन्द्रके जनविहीन घर में आधी रात की भाँति सन्नाटा छा गया, तो भी आशा संकोच के साथ आकर दरवाजे पर खड़ी हो गयी। महेन्द्रने पास आकर उसे छाती से लगा लिया—क्षणभर में पति की छाती से सट जाने पर, आशा की रुलाई उमड़ पड़ी। वह उसे रोक न सकी, उसके आँसू रोके न जा सके। रुलाईकी आवाज गलेसे बाहर निकलने लगी, उसे रोक रखना कठिन हो गया। महेन्द्र ने उसे छाती में दबाकर उसके केश की वेणी को चूम लिया—चुपचाप आकाश के तारे उसकी तरफ देखते रह गये।

रात को बिछौने पर बैठकर महेन्द्र ने कहा—"कालेज में आजकल 'नाइट ड्यूटी' अधिक पड़ी है। इसलिए अब मुझे कुछ दिनों तक कालेज के पास ही डेरा डालकर रहना पड़ेगा।"

आशा ने सोचा, "क्या अभीतक क्रोध बना हुआ है? क्या

मुझसे नाराज होकर चले जा रहे हैं ? अपने अनाड़ीपन से ही मैंने पति को घर से विदा कर दिया। मेरे लिए तो मर जाना ही अच्छा होता।"

किन्तु महेन्द्रके व्यवहारमें क्रोधका कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ा। वह बहुत देर तक चुपचाप आशा का मुँह अपनी छाती में दबाये रहा और अंगुलियोंसे बार बार उसके बाल बिखेरते हुए उसनेउसका जूराढीला करदिया, पहले आदरके समय प्यार दिखाते हुए महेन्द्र आशा का जूरा खोल दिया करता करता–आशा आपत्ति करती थी। किन्तु आज उसपर कुछ भी आपत्ति न करके आशा पुलकित और विह्वल होकर चुप रह गयी। एकाएक महेन्द्र के मस्तक पर गर्म आँसू की बूँद गिर पड़ी और महेन्द्र ने उसका मुँह ऊपर उठाकर स्नेह से रुँधे हुए स्वर में पुकारा—'चुन्नी।' आशा ने उसका कुछ उत्तर न देकर दोनों कोमल हाथों से महेन्द्र को लिपटा लिया। महेन्द्र ने कहा–'मैंने अपराध किया, क्षमा करो।'

आशा ने अपने कुसुम-सुकुमार करकमलों से महेन्द्र का मुँह बन्द करके कहा—"नहीं, नहीं ऐसी बात मत कहो। तुमने कोई अपराध नहीं किया सभी दोष मेरा है। मुझे अपनी दासी समझकर उसके ही अनुसार दण्ड दो। मुझे अपने चरणों में आश्रय पाने के योग्य बना लो।"

जाने के दिन सवेरे शय्या त्याग करते समय महेन्द्र ने कहा—"चुन्नी, तुम मेरी मणि हो, मैं अपने हृदयमें सबसे ऊपर धारण कर रखूँगा, वहाँ से तुम्हें कोई हटा न सकेगा।"

तब आशा ने दृढ़ चित्त से सब तरह का त्याग स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत होकर पति से एक छोटी सी प्रार्थना की। कहा—"तुम मुझे एक चिट्ठी लिखोगे ?'

महेन्द्र ने कहा—"तुम भी लिखोगी ?"

आशा ने कहा—"क्या मैं लिखना जानती हूँ ?"

महेन्द्र ने उसके कान के पास वेणी खींचकर कहा—"तुम अक्षयकुमारदत्त से अच्छा लिख सकती हो—जिसे चारुपाठ कहते हैं।"

आशा ने कहा—"जाओ, मुझसे और ठट्ठा मत किया करो।"

महेन्द्र के जाने के पहले आशा स्वयं अपने हाथ से जहाँ तक हो सका महेन्द्र की सन्दूक में कपड़े लत्ते सजाने लगी। महेन्द्र के मोटे मोटे जाड़े के कपड़ों को ठीक तौर से तह करके रखना कठिन था। दोनों ने मिलकर किसी तरह दवा कर ठूंस ठासकर, एक बाक्स में रखे जाने योग्य सामान दो बाक्सों में रखा। इतने पर भी भूल से जो कुछ बाकी रह गया उससे और कई छोटी छोटी गठरियाँ बनायीं। इससे आशा को यद्यपि बार-बार लज्जा मालूम हुई, तो भी छीना-झपटी, कौतुक और एक दूसरे पर दोषारोपण करने में उसे पहले के आनन्द के दिन याद पड़ने लगे। थोड़ी देर के लिए आशा यह बिलकुल ही भूल गयी कि पति की विदाई की तैयारी हो रही है। साईस ने दस बार आकर गाडी तैयार रहने की बात महेन्द्र को याद दिलायी, किन्तु महेन्द्र का उस पर ध्यान ही नहीं गया। अन्त में उसने रंज होकर कहा—"घोड़ा हाँक दो।"

सवेरे से धीरे-धीरे तीसरा पहर हो गया, तीसरे पहर से शाम हो गयी। तब स्वास्थ्यपालन के सम्बन्ध में दोनों ने एक दूसरे को सावधान किया और नियमित रूपसे चिट्ठी लिखने के लिए वचनबद्ध होकर भाराक्रान्त हृदय लिये दोनों एक दूसरे से अलग हो गये।

आज दो दिनों से राजलक्ष्मी उठ बैठी हैं। संध्या के समय एक मोटी चादर ओढ़कर विनोदिनी के साथ ताश खेल रही हैं। आज उनके शरीर में किसी तरह की ग्लानि नहीं है। महेन्द्र उनके कमरे में गया किन्तु विनोदिनी की तरफ बिलकुल ही न देखकर उसने माँ से कहा, "माँ, आजकल कालेज में रातका काम आ पड़ा

है, यहाँ रहने से उस काम को पूरा करने में कोई सुविधा न होगी। कालेज के पास ही ठहरने की बन्दोबस्त हुआ है। आज से वहीं रहूँगा।"

राजलक्ष्मी ने मन ही मन असन्तुष्ट होकर कहा, "तो तुम चले जाओ, पढ़ाई में हर्ज होता है तो यहाँ कैसे रहोगे।"

यद्यपि उनकी बीमारी अच्छी हो गयी है, तो भी महेन्द्र के जाने की बात सुनकर उन्हें ऐसा मालूम होने लगा मानो बहुत दिनों की बीमार हैं और बहुत कमजोर हो गयी हैं उन्होंने विनोदिनी से कहा, "दो तो बेटी तकिया, तकिया जरा इधर खिसका दो तो।' यह कहकर तकिये पर लेटकर वे लेट रहीं। विनोदिनी धीरे-धीरे उनके शरीर पर हाथ फेरने लगी।

महेन्द्र ने माता के कपाल पर हाथ रखा और फिर नाड़ी की परीक्षा लेने लगा। राजलक्ष्मी ने हाथ छुड़ाकर कहा—"नाड़ी देखकर तो तुम खूब समझ जाओगे। तुमको मेरी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है, मैं अच्छी तरह हूँ।" यह कहकर करवट बदलकर सो गयीं।

महेन्द्र विनोदिनी से किसी तरह की भी बातचीत न करके माता को प्रणाम करके चला गया।

१९

विनोदिनी अपने मन में सोचने लगी—"मामला क्या है, क्रोध है या भय है? मुझे दिखाना चाहते हैं, मानो मेरी कुछ भी परवा नहीं करते? दूसरी जगह डेरा लेकर रहेंगे, देखती हूँ कितने दिन वहाँ रह सकते हैं?"

किन्तु विनोदिनी को भी मन में एक तरह की बेचैनी मालूम होने लगी।

महेन्द्र को वह प्रतिदिन तरह तरह के जालों में जकड़ती और विविध वाक्य वाणों से वेधती रहती थी। यह काम अब उसके हाथ से निकल गया और वह इधर-उधर छटपटाने लगी। मकान से उसका सब नशा उतर गया। महेन्द्र-विहीन आशा उसके लिए बहुत ही स्वादहीन मालूम होने लगी। आशा के प्रति महेन्द्र का प्यार और सोहागरत्न देख-देखकर विनोदिनी का प्रणय वञ्चित चित्त सदा आन्दोलित होता रहता था। विनोदिनी की जो विरहिणी कल्पना जिस पीड़ा से सदा सजग बनी रहती थी, उसमें एक तरह की उग्र उत्तेजना थी। जिस महेन्द्र ने उसे समूचे जीवन की सार्थकता से भ्रष्ट कर दिया है, जिस महेन्द्र ने उस जैसी स्त्रीरत्न की उपेक्षा करके आशा जैसी मन्दबुद्धि सीधी-सादी भोली भाली बालिका को अपना लिया है, उस महेन्द्र को विनोदिनी प्यार करती है या द्वेष करती है, उसको हृदय अर्पण करेगी या उसे कठिन सजा देगी, यह बात विनोदिनी स्वयं भी नहीं समझ सकती थी। महेन्द्र ने उसके हृदय में एक आग लगा दी है, वह आग प्रेम की है, या डाह की है या दोनों का मिश्रण हैं, यह बात विनोदिनी समझ नहीं सकती। वह मन ही मन तीव्र हँसी हँसकर कहती है, "किसी भी स्त्री की क्या मेरी तरह दुर्दशा हुई है, मैं मरना चाहती हूँ या मारना चाहती हूँ यह बात मैं स्वयं ही न समझ सकी।" किन्तु जिस कारण ही क्यों न हो, जलने के लिए हो या जलाने के लिए हो महेन्द्र की उसे बड़ी जरूरत है। वह अपने जहरीले अग्निवाणों को संसार में कहाँ चलावेगी। जोरों से साँस खींचकर विनोदिनी ने कहा—"वह जायगा कहाँ, वह लौटेगा ही। वह मेरा है।"

जाने के बाद दो चार दिनों में ही महेन्द्र के पास एक चिट्ठी पहुँची। चिट्ठी पर परिचित अक्षरों में पता लिखा हुआ था। दिन में हड़बड़ी के कारण उसने उसे नहीं खोला, छाती के पासवाली

जेब में उसे रख दिया। कलेज में लेक्चर सुनते समय, अस्पताल में घूमते समय, महेन्द्र को हठात् मालूम होने लगा मानो प्रेम की एक चिड़िया उसकी छाती पर घोंसला बनाये सो रही है, उसे जागते ही उसकी सभी कोमल बोली कानों में गूँजने लगेगी।

सन्ध्या के समय महेन्द्र निर्जन कमरेमें बत्ती जलाकर चौकी पर आराम से बैठ गया और शरीर की गर्मी से तपी हुई चिट्ठी जेब से निकालकर बड़ी देर तक उसे न खोलकर लिफाफे पर लिखा अपना नाम और पता देखने लगा। महेन्द्र जानता था कि चिट्ठी में अधिक बात नहीं लिखी हुई है। ऐसी सम्भावना नहीं थी कि आशा अपना भाव पत्र में अच्छी तरह व्यक्त कर सकेगी। वह यही समझ रहा था कि उसके कच्चे अक्षरों में लिखी टेढ़ी टूटी-फूटी पंक्तियों में उसके मन की कोमल बातों की कल्पना कर लेनी पड़ेगी। आशा के कच्चे हाथों से बहुत यत्न के साथ लिखे हुए अपने नाम को पढ़कर अपने नाम के साथ मानों महेन्द्र को एक रागिनी सुनाई पड़ी;—वह सती साध्वी नारी हृदय के वैकुण्ठ लोक से निकले हुए एक निर्मल प्रेम-संगीत की ही रागिनी थी।

दो चार दिनों के वियोग से महेन्द्र के मन से बहुत दिनों के मिलन की थकावट दूर हो चली और सरल पत्नी के नवप्रेम से चमकनेवाली सुख स्मृति फिर उज्ज्वल हो उठी है। घर गृहस्थी के कामों में होनेवाली प्रतिदिन की गड़बड़िया से उसका मन घबराने लगा था, उन सबके दूर हो जाने से केवल कर्महीन, कारण-हीन एक विशुद्ध प्रेमानन्द के प्रकाश में आशा की मानसी मूर्ति सजीव हो उठी है।

महेन्द्र ने बहुत ही धीरे धीरे लिफाफा फाड़कर चिट्ठी निकाल ली और उसे अपने ललाट और कपाल पर सटा लिया। एक दिन महेन्द्र ने जो एसेन्स आशा को उपहार में दिया था, उस एसेन्स

की सुगन्ध चिट्ठी के भीतर से हलकी साँस की तरह महेन्द्र के हृदय में प्रवेश कर गयी।

पत्र खोलकर महेन्द्र पढ़ने लगा। जैसी टेढ़ी बिखरी हुई लाइनें हैं, भाषा तो वैसी सीधी सादी नहीं है। कच्चे अक्षरों की लिखावट तो है किन्तु बातें तो उसके साथ नहीं मिलतीं। लिखा है—'प्रियतम, जिसको भूलने के लिए चले गये हो, इस चिट्ठी में कैसे उसको याद दिलाऊँ। जिस लता को तोड़कर तुमने मिट्टी पर फेंक दिया, वह फिर किस लज्जा से जकड़कर ऊपर उठने की चेष्टा करेगी। वह मिट्टी के साथ मिट्टी बनकर क्यों न मिल गयी।

"किन्तु प्राणनाथ, इतनेमें तुम्हारी क्या हानि होगी? न हो, क्षणभर के लिए याद आ ही गयी। उससे मन में कितनी चोट लगेगी। और तुम्हारी अवहेलना तो काँटे की तरह मेरी हड्डियों के अन्दर धँसी हुई है। वह काँटा सारा दिन, सारी रात, सभी कामों में, सब चिन्ताओं में जिधर ही घूमती हूँ उधर ही मुझे बेधता रहता है। तुम जिस तरह भूल गये हो, उसी तरह भूल जाने का मुझे भी उपाय बता दो।"

"नाथ तुम मुझे प्यार करने लग गये थे तो क्या उसमें मेरा ही अपराध है। मैंने क्या स्वप्न में भी इतना सौभाग्य पाने की आशा की थी। मैं कहाँ से आयी, मुझे जानता ही कौन था। यदि तुम मुझे प्रेम की दृष्टि से न देखते, यदि तुम्हारे घर में बिना वेतन की दासी की तरह मुझे रहना पड़ता, तो क्या मैं इसके लिए तुमको दोष दे सकती थी। प्रियतम, तुम आप ही मेरे किस गुण पर मोहित हुए, क्या देखकर मेरा इतना आदर बढ़ाया, और आज बिना बादल के वज्रपात ही हो गया, तो उसने केवल जलाकर ही क्यों छोड़ दिया। एकदम शरीर और मन दोनों को ही जलाकर राख क्यों न बना दिया।

इन दो दिनों में मैंने बहुत सहा, बहुत सोचा किन्तु एक बात

मैं बिलकुल ही न समझ सकी, क्या घरपर रहकर भी तुम मुझे ढंक नहीं सकते थे। मेरे लिए भी क्या तुम्हें घर छोड़कर चले जाने की कोई भी जरूरत थी। मैं क्या तुम्हें इतना घेरकर रखती हूँ। अपने घरके एक कोनेमें मुझे जगह दे देते, या घर के बाहर ही आस-पास मुझे रहने देते तो क्या मैं तुम्हारी आँखों के सामने पड़ती, ऐसे ही हो तो तुम क्यों चले गये। क्या मुझे कहीं जानेकी जगह नहीं थी। जैसे घूमती हुई आयी थी, वैसे चली जाती।"

यह कैसी चिट्ठी है। यह भाषा किसकी है, सो महेन्द्र से छिपा नहीं रहा। अकस्मात् मूर्च्छित की भाँति उस चिट्ठी को लेकर महेन्द्र स्तम्भित हो गया। उसका मन जिस लाइन से रेलगाड़ी की तरह पूरे वेग से दौड़ गया था उसी लाइन में विपरीत दिशा से एक धक्का खाकर उलटकर एक तरफ ढेर बनकर निकम्मा सा हो गया।

बहुत देरतक सोचने के बाद उसने फिर उस पत्र को दो तीन बार पढ़ा। कुछ समय तक जो बात सुदूरके आभासकी तरह थी, वह मानो वर्तमान की तरह स्पष्ट होने लगी। उसके जीवनाकाश के जिस कोने में धूम्रकेतु छाया की तरह दिखाई देता था, आज उसकी उगी हुई पूँछ अग्निरेखा सी चमकती हुई दिखाई पड़ी।

यह चिट्ठी विनोदिनी की ही है, सीधी सादी आशा ने उसे अपनी समझकर लिखा है। पहले जिस बातको उसने कभी नहीं सोचा, विनोदिनी की वाक्यरचना के अनुसार वे ही बातें उसके मन में जग उठने लगीं। नकल की हुई बातें बाहर से बद्धमूल होकर उसकी आन्तरिक हो गयीं; उसके मनमें वियोगकी जो नयी वेदना उत्पन्न हुई थी, उसे इतनी सुन्दरता से आशा कभी प्रकट न कर पाती। वह सोचने लगा, "सखी मेरे मनकी बातें इस तरह ठीक ठीक कैसे समझ गयी। उसने कैसे इस तरह ठीक ढङ्ग से इसे व्यक्त किया।" अन्तरङ्ग सखीको आशाने मानो और अधिक

आग्रह से पकड़ रखा, क्योंकि जो पीड़ा उसके मन में थी उसे व्यक्त करने की भाषा उसकी सखी के पास थी—वह इतनी निरुपाय हालत में थी !

महेन्द्र ने कुर्सीसे उठकर भौंहें टेढ़ी करके विनोदिनी के ऊपर क्रोध करने की बड़ी चेष्टा की, पर बीच ही में क्रोध हो आया आशा पर।

भला देखो तो, आशा की यह कैसी मूढ़ता है, अपने स्वामी पर यह उसका कैसा अत्याचार है ! यह कहकर उसके प्रमाण में फिर उस चिट्ठी को पढ़ना शुरू किया। पढ़ने पर भीतर ही भीतर उसके मनमें एक प्रकार का हर्षसंचार होने लगा। उस चिट्ठी को आशा की ही चिट्ठी मानकर उसने पढ़ने की बड़ी कोशिश की। किन्तु उसकी भाषा किसी तरह भी सरला आशा की याद नहीं दिलाती। दो-चार लाइनें पढ़ने के साथ ही एक तरह का सुखो-न्माद बढ़ानेवाली सन्देह-फेन से भरी मदिरा की भाँति उसके मन को चारों तरफ से छाप लेता है। छिपा रहने पर भी व्यक्त, निषिद्ध होते हुए भी निकटस्थ, जहर से भरा रहने पर भी मधुर एक ही साथ उपहार में दिये जाकर लौटा लिये गये प्रेम के आभास ने महेन्द्र को मतवाला बना डाला। उसे यह इच्छा होने लगी कि अपने हाथ और पैर में कहीं पर छुरा भोंककर या और किसी उपाय से इस नशे को छुड़ा दूँ और मन को किसी दूसरी तरफ फेंक दूँ। पूरे जोर से मुट्ठी दबाकर कुर्सी से उछल कर वह खड़ा हो गया और 'हटाओ, चिट्ठी जला डालूँ' कहता हुआ उसे बत्ती के पास ले गया। पर उसे जलाया नहीं, एकबार फिर पढ़ गया। दूसरे दिन सवेरे नौकर ने मेज से जले कागज की बहुत सी राख झाड़कर फेंक दी। किन्तु वह आशा की चिट्ठी की राख नहीं थी। पत्र का उत्तर लिखने में अपनी असफल चेष्टा को महेन्द्र ने जला डाला था।

२०

इसी बीच दूसरी चिट्ठी भी आ गयी—

"तुमने मेरी चिट्ठी का उत्तर नहीं दिया, अच्छा ही किया। ठीक बात तो लिखी नहीं जाती, तुम्हारा जवाब मैं मन ही मन समझ गयी हूँ। भक्त जब अपने इष्टदेव को पुकारता है तो क्या वे मुँह की बातों से उसका कुछ उत्तर देते हैं? मालूम होता है कि दुःखिनी के बिल्वपत्रों को चरणों के नीचे स्थान मिला है।"

"किन्तु भक्त की पूजा लेने में यदि शिव का तप भङ्ग हो जाय तो उससे रूठ मत जाना हृदयदेव! तुम मुझे वरदान दो या न दो, आँखें उठाकर देखो या न देखो, जान सको या न सको, पूजा चढ़ाये बिना भक्त की और गति नहीं है। इसीसे आज भी दो अक्षर लिख रही हूँ. हे मेरे पत्थर के देव, तुम विचलित न होना।"

महेन्द्र फिर चिट्ठी लिखने के लिए तैयार हुआ! किन्तु आशा को लिखने में विनोदिनी की बातों का उत्तर आपसे आप कलम पर आ जाता है। ढँककर छिपाकर युक्ति से लिख नहीं सकता। बहुत-सी लिखी चिट्ठियों को फाड़कर बड़ी रात बिताकर एक पूरी चिट्ठी भी लिख डाली तो उसे लिफाफे में रखकर ऊपर आशा का नाम लिखते समय मानो उसकी पीठ पर पीछे से किसी ने चाबुक मारा। किसी ने मानो उससे कहा 'पाखण्डी, विश्वास" करनेवाली बालिका के साथ ऐसी धोखाधड़ी।"

महेन्द्र ने चिट्ठी के टुकड़े-टुकड़े कर डाले और रात भर मेज पर दोनों हाथों के बीच मुँह, डालकर मानो वह अपने को अपनी ही दृष्टि से छिपाने की कोशिश करने लगा।

तीसरा पत्र भी आ गया। उसमें ये बातें लिखी थीं।

"जो बिलकुल ही मान करना नहीं जानता, वह क्या प्यार

करता है? अपने प्यार को यदि अनादर अपमान से बचा न रख सकी तो उस प्यार को तुम्हें किस तरह दे सकूँगी?

"शायद मैं तुम्हारे मान को अच्छी तरह न पहिचान सकी, इसीसे मैंने इतना साहस किया है, इसलिए ही जब तुम छोड़कर चले गये तो स्वयं आगे बढ़कर मैंने चिट्ठी लिख दी है, जब तुम चुप रह गये तो उस समय भी मैंने अपने मन की बात खुलकर कह दी। किन्तु यदि तुम्हारे प्रति मैंने भूल की तो क्या उसमें मेरा ही दोष है? एक बार आदि से अन्त तक सब बातों पर विचार करके देखो तो मैं जैसा समझ गयी उसे क्या तुमने नहीं समझाया।

"वह जो हो, भूल हो या सच हो, मैंने जो कुछ लिखा है वह अब मिटाया नहीं जा सकता, जो कुछ दिया वह अब लौटाया नहीं जा सकता, इसी का अफसोस है। छि, छि, ऐसी लज्जा भी क्या किसी स्त्री के भाग्य में प्राप्त होती है। किन्तु इसीलिए यह न समझ लेना, जो प्यार करता है, वह अपने प्यार का बराबर ठुकराया जाना देख सकता है। यदि मेरी चिट्ठी नहीं चाहते हो तो रहने दो—यदि उत्तर न दोगे तो यहीं तक।"

इसके बाद महेन्द्र से और रहा नहीं गया। उसने सोचा कि मैं बहुत ही रञ्ज होकर घर लौटा जा रहा हूँ। विनोदिनी समझती है कि उसे भूल जाने के लिए ही मैं घर छोड़कर चला आया हूँ। विनोदिनी की इस स्पर्धा को हाथों हाथ झूठा साबित करने के लिए उसने घर लौट जाने का संकल्प कर लिया।

ऐसे ही समय में बिहारी कमरे में आ पहुँचा। बिहारी को देखते ही महेन्द्र के अन्दर का आनन्द मानो दुगुना बढ़ गया। इसके पहले तरह-तरह के सन्देह उत्पन्न होने के कारण उसके हृदय में बिहारी के प्रति डाह पैदा होता चला जा रहा था, दोनों की मित्रता क्लिष्ट होती जा रही थी। पत्र पढ़ चुकने के बाद आज

उसने सब द्वेषभाव दूर करके बिहारी को बड़े जोश के साथ अपने पास बुला लिया। कुर्सी से उठकर बिहारी की पीठ पर थप्पड़ लगाकर उसका हाथ पकड़कर कुर्सी पर बिठा लिया।

किन्तु बिहारी का मन आज उदास था। महेन्द्र ने।। हो इस बीच अवश्य ही यह विनोदिनी से मुलाकात करने गए और वहाँ से धक्का खाकर यहाँ आया है। महेन्द्र ने पूछा- 'बिहारी क्या इन दिनों तुम हमारे घर गये थे?'

बिहारी ने गम्भीर मुँह बनाये कहा, "अभी वहीं से आ रहा हूँ।"

बिहारी की वेदना की कल्पना करके महेन्द्र को एक तरह का कौतुक हुआ। उसने मन ही मन कहा—'अभागा बिहारी! बेचारा स्त्रियों के प्यार से एक दम वञ्चित है।' यह कहकर उसने अपने कोट की छाती पर की ऊपरी जेब पर हाथ से दबाया तो उसके अन्दर से तीन चिट्ठियों की खड़खड़ाहट मालूम हुई।

महेन्द्र ने पूछा—"घर के सब लोग अच्छे हैं?"

बिहारी ने इसका कुछ उत्तर न देकर कहा—'घर छोड़कर तुम यहाँ कैसे?'

महेन्द्र ने कहा— 'आजकल प्रायः रात को काम करना पड़ता है, घर पर रहने से असुविधा होती है।'

बिहारी ने कहा—'इसके पहले भी तो रात को ड्यूटी पड़ती थी, किन्तु कभी तो तुमको घर छोड़ते नहीं देखा।'

महेन्द्र ने हँसकर कहा—"तुम्हारे मन में कोई सन्देह हुआ है क्या?"

बिहारी ने कहा—"नहीं, दिल्लगी की जरूरत नहीं अब तुरन्त घर चलो।"

महेन्द्र घर जाने के लिए तैयार हो चुका था, बिहारी का अनुरोध सुनकर उसने अपना रुख बदल दिया मानो घर जाने

का बिलकुल ही आग्रह नहीं है। कहा, यह कैसे होगा बिहारी, ऐसा होने पर तो मेरा एक साल चौपट हो जायगा।'

बिहारी ने कहा—"देखो महीन भैया, मैं बहुत ही थोड़ी उम्र चले गए तुम्हें जानता हूँ, मुझे भुलावा देने की कोशिश मत करो। चुप अन्याय कर रहे हो।"

महेन्द्र—किस पर अन्याय करता हूँ जज साहब?

बिहारी ने रंज होकर कहा—"तुम बराबर अपने हृदय की बड़ाई करते हो, तुम्हारा वह हृदय अब कहाँ चला गया महीन भैया?"

महेन्द्र—'इन दिनों कालेज के अस्पताल में।

बिहारी—रुको महीन भैया, रुक जाओ। यहाँ तो तुम मेरे साथ हँस हँस कर दिल्लगी कर रहे हो और वहाँ आशा कमरे के बाहर और भीतर रोती फिरती है।

आशा के मन की बात सुनकर हठात् महेन्द्र के मन में एक तरह की चोट लगी। संसार में और किसी को भी सुख-दुख है, यह बात वह अपने नए नशे में भूल सा गया था। हठात् वह चौंक उठा, पूछा "आशा रोती क्यों है?"

बिहारी ने चिढ़कर कहा—"तुमको क्या वह बात मालूम नहीं है, मैं ही जानता हू?"

महेन्द्र—"तुम्हारा महीन भैया सर्वज्ञ नहीं है, इसके लिए क्रोध करना हो तो महीन भाई के बनानेवाले पर करो।

बिहारी का यह प्रबल आवेग देखकर महेन्द्र को आश्चर्य हुआ। महेन्द्र जानता था, बिहारी के हृदय में रस का भाव नहीं है—यह उपसर्ग उसे कब से हुआ। जिस दिन कुमारी आशा को देखने गया था, उसी दिन से तो नहीं। बेचारा बिहारी! महेन्द्र ने अपने मन में उसे बेचारा तो कह डाला, किन्तु कुछ भी दुख अनुभव न करके वह कुछ आनन्द का ही मजा पाने लगा। आशा का मन

अनन्य भाव से किस तरफ है, यह बात महेन्द्र जानता था। दूसरोंके लिए जो केवल चाहनेकी वस्तु है, किन्तु मिलने की चीज नहीं है, वह सदा के लिए मेरे पास स्वयं रहती है, यह सोचकर महेन्द्र की छाती गर्व से फूल उठी।

महेन्द्र ने बिहारी से कहा—"अच्छा चलो, रवाना हो जायँ। एक गाड़ी ठीक करो।"

२१

महेन्द्र के घर लौटने के साथ ही उसका मुँह देखकर आशा के मन का सारा सन्देह प्रातःकालके कुहासे की तरह उसी क्षण मिट गया। अपनी लिखी चिट्ठियों की बात याद करके मानो वह महेन्द्र के सामने अपना मुँह ही न उठा सकी। महेन्द्र ने उसके ऊपर भर्त्सना लादते हुए कहा—"इस तरह का कलंक लगाकर तुमने चिट्ठियाँ कैसे लिखीं?"

यह कहकर उसने कई बार की पढ़ी हुई उन तीनों चिट्ठियों को जेब से बाहर निकाल दिया। आशा ने व्याकुल होकर कहा—"तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, उन चिट्ठियों को फाड़ डालो।" यह कहकर वह महेन्द्र के हाथ से चिट्ठियों को लेने के लिए व्यस्त हो उठी। महेन्द्र ने उसे रोककर उन्हें फिर जेब में रख दिया और कहा—"मैं कर्तव्य समझकर गया, पर तुम मेरे जाने का मतलब न समझ सकी। मेरे ऊपर तुम सन्देह करने लगी।"

आशा ने डबडबायी हुई आँखों से कहा,—"इस बार मुझे माफ करो, फिर कभी ऐसा न होगा।"

महेन्द्र ने कहा—"कभी नहीं।"

आशा ने कहा—"कभी नहीं।"

तब महेन्द्र ने अपने पास उसे खींचकर उसका मुँह चुम लिया। आशा ने कहा—"चिट्ठियाँ दे दो, फाड़कर फेंक दूँ।"

महेन्द्र ने कहा—"नहीं, उन्हें रहने दो।"

आशा ने विनय के साथ यही समझ लिया कि, "मेरी सजा के चिह्नरूप में इन्होंने मेरी चिट्ठियाँ अपने पास रख लीं।"

इस चिट्ठी के मामले में आशा का मन विनोदिनी की ओर से मानो कुछ विमुखसा हो गया। पति के आने की खबर लेकर वह सखी के पास खुशी मनाने नहीं गयी, बल्कि विनोदिनी से मुलाकात होने पर भी वह अनमनी सी दूसरी तरफ मुड़ गयी। विनोदिनी इस मनोभाव को समझ गयी और काम में व्यस्त रहने का बहाना करके दूर ही रहने लगी।

महेन्द्र ने सोचा—"यह तो बड़ी ही अद्भुत बात है, मेरा तो खयाल था कि इस बार विनोदिनी अच्छी तरह बराबर दिखाई पड़ेगी, किन्तु यह तो उलटा ही हो रहा है। तो उन चिट्ठियों का मतलब ही क्या है।"

महेन्द्र ने इस बात का पक्का निश्चय कर लिया था कि स्त्री-हृदय का रहस्य जनाने की कोई कोशिश अब न करूँगा—उसने यहाँ तक सोच लिया था कि, "यदि विनोदिनी मेरे पास आने की चेष्टा करेगी तो उस हालत में भी मैं उससे दूर ही रहा करूँगा।" आज उसने अपने मन में कहा—'नहीं' यह तो ठीक काम नहीं हो रहा है। हम लोगों के मन में मानो सचमुच ही एक प्रकार का विकार हो गया है। विनोदिनी से सहज और स्वाभाविक रूप से बातचीत करके और हँसी दिल्लगी करके इन संशयपूर्ण विकार के भाव को दूर कर देना ही उचित होगा।"

आशा से महेन्द्र ने कहा—"देख रही हूँ कि मैं ही तुम्हारी सखी के लिए अब आँख की किरकिरी बन गया हूँ। इन दिनों तो वह दिखाई ही नहीं पड़ती।"

आशा ने उदास होकर उत्तर दिया, 'कौन जाने, उसको क्या हो गया है।'

तब तक राजलक्ष्मी ने रुलाई से डबडबाई हुई आँखोंके साथ वहाँ आकर कहा—"विपिन की बहू को तो अब यहाँ रखना कठिन हो गया है, वह जाने के लिए जिद कर रही है।"

महेन्द्र ने चौंककर कहा—"क्यों माँ ?"

राजलक्ष्मी ने कहा— 'क्या जाने बेटा, इस बार तो वह किसी तरह मानती ही नहीं, घर चले जाने के लिए एकदम ही जिद कर रही है, तुम तो किसी का आदर करना जानते ही नहीं। भले आदमी की लड़की पराये घर में पड़ी हुई है, यदि अपने घर के आदमीकी तरह उसका आदर न होगा तो वह यहाँ कैसे रहेगी ?'

विनोदिनी सोने के कमरे में बैठी हुई बिछौने की चादर सी रही थी। महेन्द्र ने उसमें प्रवेश करके पुकारा— "किरकिरी।" विनोदिनी सम्हलकर बैठ गयी। बोली—'क्या, महेन्द्र बाबू ?'

महेन्द्र ने कहा—"क्या गजब कर रही हो! महेन्द्र बाबू कब से बनाये गये ?"

विनोदिनी फिर चादर की सिलाई में मन लगाकर उसी तरफ आँखें किये बोली—"तो क्या कहकर पुकारूँ ?"

महेन्द्र—अपनी सखी को जिस नाम से पुकारती हो, आँख की किरकिरी।

विनोदिनी ने पहले की तरह हँसकर कुछ उत्तर नहीं दिया, वह सिलाई करने में लगी रही।

महेन्द्र ने कहा—"शायद हम दोनों का सचमुच वही नाता हो गया।"

विनोदिनी ने जरा रुककर दाँत से सिलाई से बचे हुए डोरे के सिरे को काटकर कहा—"क्या जानूँ, यह तो आप ही जानते होंगे।"

यह कहकर अपने मन में आये हुए सब तरह के उत्तर

दबाकर गम्भीर मुँह किये उसने कहा—"कालेज से अचानक लौट कैसे आये !"

महेन्द्र ने कहा—'केवल मुर्दों को काटकर कितने दिन तक रह सकता हूँ ।'

विनोदिनी ने फिर दाँत से डोरा काटकर मुँह नीचे झुकाये हुए ही कहा—"अब शायद जीवित प्राणियों की जरूरत है ।'

महेन्द्र ने निश्चय किया था कि आज विनोदिनी के साथ अत्यन्त सहज स्वाभाविक ढंगसे बातचीत और हँसी दिल्लगी करके मेलजोल बढ़ा लूँगा । किन्तु उसके मुँह पर इस तरह की गम्भीरताका भाव छा गया कि बड़ी कोशिश करने पर भी छोटा सा जवाब उसके मुँह पर नहीं आया । विनोदिनी आज एक तरह दूर भागने की चेष्टा कर रही है, यह देखकर महेन्द्र का मन बड़े वेग से उसकी तरफ बढ़ने लगा—बीच की इस दूरी को किसी तरह हिला डुलाकर जमीन पर गिरा देने की उसे इच्छा हुई । विनोदनी की अन्तिम बात की चोट का जवाब न देकर वह उसके पास जाकर बैठ गया और बोल उठा—'तुम हम लोगों को छोड़कर चली क्यों जा रही हो ? क्या मैंने कोई अपराध किया है ?"

तब विनोदिनी ने कुछ अलग हटकर, सिलाईसे मुँह उठाकर दोनों बड़ी-बड़ी आँखें महेन्द्रके मुँहके ऊपर स्थिर भावसे रखकर कहा—कर्त्तव्य का बोझ तो सबके ऊपर रहता है । आप भी तो सबको छोड़कर कालेज के डेरे पर चले गये थे तो क्या किसी के अपराध से ऊबकर चले गये थे । उसी तरह क्या मुझे कहीं जाने की जरूरत नहीं है ?'

महेन्द्र को बहुत सोचने पर भी विनोदिनी की इस उक्ति का कोई अच्छा उत्तर नहीं मिला । कुछ देर तक ठहरकर उसने पूछा—"तुम्हारे ऊपर कौन ऐसा कर्तव्यभार आ पड़ा है जो बिना गये नहीं बनता ?"

विनोदिनी ने बहुत ही ध्यान के साथ सुई में डोरा डालते हुए कहा—"कर्तव्य का बोझ आ पड़ा है या नहीं, यह तो मेरा मन ही जानता है। आपसे मैं इसका क्या विवरण बताऊँ ?"

महेन्द्र गम्भीर और चिन्तायुक्त मुँह किये खिड़की के बाहर दूर के एक नारियल वृक्ष की चोटी की तरफ देखता हुआ बड़ी देर तक चुपचाप बैठा रह गया। विनोदिनी चुपचाप सिलाई करने में लगी रही। कमरे में सुई गिरने का भी शब्द सुनाई पड़े, इस तरह का सन्नाटा छा गया। बहुत देर के बाद महेन्द्र कुछ बोल उठा। अचानक स्तब्धता भंग हो जाने से विनोदिनी चौंक उठी, उसके हाथ में सुई चुभ गयी।

महेन्द्रने कहा—क्या किसी तरह के भी अनुनय विन से तुम न रहोगी ?

विनोदिनी ने अपनी घायल अंगुली से खून निकाल कर कहा—"इतने अनुनय विनय की क्या जरूरत है ? मैं रहूँगी तो क्या और न रहूँगी तो क्या। आपका उससे क्या बनता बिगड़ता है ?"

यह कहते कहते विनोदिनी का गला मानो भर आया, वह बहुत ही सिर झुकाकर सिलाई में अत्यन्त निमग्न हो गयी, ऐसा ऐसा मालूम हुआ मानो उसकी आँखों की पलकों के कोने में कुछ आँसू भर आये हैं। माघ का अपराह्न उस समय सन्ध्या के अन्धकार में मिल जाने को तैयार हो चला था।

महेन्द्र ने झटपट विनोदिनी का हाथ दबाकर पकड़ लिया और रुद्ध आवाज में कहा—"यदि इससे मेरा कुछ बनता बिगड़ता हो तो क्या तुम रहोगी ?"

विनोदिनी झटपट अपना हाथ छुड़ाकर अलग हट गयी ? महेन्द्र की चौंक टूट गयी। अपनी अन्तिम बात भयानक व्यंग की तरह उसके ही कानों में बार-बार प्रतिध्वनित होने लगी। अपनी

अपराध करनेवाली जीभ को दाँतों से दबाकर रह गया, इसके बाद उसकी जीभ एकदम निर्वाक् हो गया।

इसी समय उस सन्नाटे कमरेमें आशा ने प्रवेश किया। विनोदिनी ने उसी क्षण मानो पहलेकी बातचीत के ही सिलसिलेमें हँसकर कहा—"जब आप लोग मेरा इतना आदर बढ़ा रहे हैं तब मेरा भी यह कर्तव्य है कि आपलोगोंकी एक बात रखूँ, जब तक आप लोग विदा न करेंगे, तब तक मैं यहाँ ही रहूँगी।"

आशा अपने स्वामी की सफलता से प्रसन्न होकर विनोदिनीसे लिपट गयी और बोली—"अब यही बात पक्की रही। तुम अब तीन-तीन बार यह कहकर प्रतिज्ञा करो कि जबतक विदाई न होगी रहूँगी, रहूँगी, रहूँगी।"

विनोदिनी ने तीन बार स्वीकार किया। तब आशा ने कहा, "बहिन आँख की किरकिरी, यदि तुम्हें रहना ही था तो इतनी परेशानी में हम लोगों को क्यों डाला? अन्त में मेरे पति से हार माननी ही पड़ी।"

विनोदिनी ने हँसकर कहा—"बाबू साहब, मेरी हार हुई है या आपको हार माननी पड़ी?"

महेन्द्र अब तक स्तम्भित होकर खड़ा था, उसे जान पड़ता था कि उसके अपराध मानो सारे कमरे में भर उठे हैं, मानो लांछना उसके समूचे शरीर को लपेटे हुए है। आशा साथ के किस तरह वह प्रसन्नता पूर्वक अपने स्वाभाविक रूप से बातचीत करेगा! क्षणभर में वह किस तरह अपने इस वीभत्स असंयम को हँसी और स्वाभाविक बातचीत में परिणत करेगा। यह पैशाचिक इन्द्र जाल शक्ति के बाहर था। उसने गम्भीर मुँहसे कहा—"मेरी ही हार हुई है।' यह कहकर वह कमरे से बाहर चला गया।

थोड़ी ही देर के बाद फिर महेन्द्र ने कमरे में आकर कहा—"मुझे माफ करो।"

विनोदिनी ने कहा—"तुमने कौनसा अपराध किया है ?"

महेन्द्र ने कहा—"तुमको जबर्दस्ती यहाँ पकड़ रखने का हम लोगों को कोई अधिकार नहीं है ।"

विनोदिनी ने हँसकर कहा—"जबरदस्ती कहाँ की गयी, मुझे तो जबरदस्ती नहीं दिखाई पड़ी । प्यार करके प्रेम भरे मुँह से ही तो ठहरने के लिए कहा । क्या इसे जबरदस्ती कह सकते हैं तुम्हीं तो बताओ बहिन आँख की किरकिरी, जबरदस्ती और प्रेम दोनों ही क्या एक ही चीज है?"

आशा ने उससे पूर्ण सहमत होकर कहा—"कभी नहीं ।"

विनोदिनी ने कहा—"महेन्द्र बाबू, आप चाहते हैं कि मैं रहूँ, मेरे जाने से आपको कष्ट होगा यह तो मेरा सौभाग्य है । क्या कहती हो बहिन आँखकी किरकिर, संसार में ऐसे सुहृद कितने मिलते हैं ? दुःख में दुखी और सुख में सुखी होनेवाला आदमी यदि भाग्य से मिल जाय तो उसे छोड़कर चले जाने के लिए मैं क्यों घबराऊँ ।"

आशा ने अपने स्वामी को झेंपते हुए निरुत्तर रहते देखकर कुछ व्यथित चित्त से कहा—"तुमसे बातचीत करके कौन जीत सकता है बहिन ! मेरे पति तो हार मान ही गये । अब तुम शान्त हो जाओ ।"

महेन्द्र फिर तेजी से कमरेके बाहर निकल गया । उस समय राजलक्ष्मी से बातचीत कर के महेन्द्र को खोजता हुआ विहारी उधर ही आ रहा था । महेन्द्र उसे दरवाजे के सामने देखते ही बोला—"भाई विहारी, मुझसा पाखण्डी संसार में कोई नहीं है।' यह बात उसने इतने जोर से कही कि यह बात कमरे के अन्दर तक चली गयी ।

कमरेके अंदरसे उसी समय आवाज आयी—"विहारी बाबू ।"

विहारी ने कहा—"अभी थोड़ी देर में आ रहा हूँ, भाभी ।"

विनोदिनी ने कहा—"जरा सुनकर ही जाओ न।"

बिहारी ने कमरेमें प्रवेश करते ही तुरत एक बार आशा की तरफ देखा। घूंघट के भीतर से आशा का जितना मुँह दिखाई पड़ा, उसमें विषाद या वेदना का कोई भी चिन्ह नही था। आशा उठकर जानेको तैयार हुई, विनोदिनी ने उसे जबर्दस्ती पकड़ रखा, कहा—"अच्छा बिहारी बाबू मेरी सखी के साथ तुम्हारा क्या सौत का नाता है? तुमको देखते ही ये भाग जाना क्यों चाहती हैं?"

आशा ने बहुत ही लज्जित होकर विनोदिनी को धमकाया।

बिहारी ने हँसकर उत्तर दिया—'विधाता ने मुझे इतना सुन्दर नहीं बनाया, इसीसे।'

विनोदिनी—देखती हो किरकिरी, बिहारी बाबू बचाकर बात करना जानते हैं, तुम्हारी रुचि को दोष देकर विधाता को ही दोषी बताया। लक्ष्मणकी तरह ऐसा सुलक्षण देवर पाकर भी यदि तुमने आदर करना न जाना, तो सचमुच तुम्हारा भाग्य फूट गया है।

बिहारी—भाभी, यदि इससे तुमको मुझपर दया आती हो, तो फिर मुझे दुःख किस बात का।

विनोदिनी—समुद्र तो पड़ा हुआ है, तो भी बादलों की जल-धारा के बिना चातक की प्यास क्यों नहीं मिटती?

आशा रुकी न जा सकी, वह जोर करके विनोदिनीके हाथ से अपना हाथ छुड़ाकर चली गयी। बिहारी भी चले जाने की तैयारी कर रहा था। विनोदिनी ने कहा—"बिहारी बाबू, महेन्द्र बाबू को क्या हुआ है क्या बतला सकते हो?"

सुनते ही बिहारी रुककर खड़ा हो गया। कहा—"यह तो मैं नहीं जानता, कुछ हो गया है क्या?"

विनोदिनी—क्या जाने बिहारी बाबू, मुझे तो अच्छे लक्षण नहीं मालूम होते।

बिहारी घबराकर बैठ गया। खुला ब्यौरा सुनने के लिए

विनोदिनी के मुँह की तरफ देखने लगा। विनोदिनी कुछ न कहकर चुपचाप ध्यानपूर्वक चादर सिलाई करने लगी।

कुछ देर तक प्रतीक्षा करनेके बाद विहारी ने कहा—"महीन भैया के सम्बन्ध में तुमने कोई विशेष बात देखी है क्या ?"

विनोदिनी ने साधारण भाव से कहा—"क्या जाने विहारी बाबू, मुझे तो उनका अच्छा रंग-ढंग नहीं मालूम होता। मुझे तो केवल अपनी सखी के लिए चिन्ता हो रही है।" यह कहकर लम्बी साँस खींचकर वह सिलाईवाली चादर रखकर चली जाने के लिए उठकर खड़ी हो गयी।

विहारी ने घबराकर कहा—'भाभी, जरा बैठ जाओ।" वह यह कहकर चौकी पर बैठ गया।

विनोदिनी ने कमरे के सभी दरवाजे और खिड़कियाँ खोल दीं, दीया की रोशनी कुछ और उसकाकर तेज कर दी और सिलाईवाली चादर खींचकर बिस्तर के दूसरे छोर पर जाकर बैठ गयी। कहा—"विहारी बाबू, मैं तो बराबर यहाँ रहूँगी नहीं, किन्तु मेरे चले जाने पर तुम मेरी "आँख की किरकिरी" का ख्याल रखना, उसे किसी तरहका कष्ट न हो। यह कहकर अपने हृदय के उच्छ्वास को सम्हाल रखनेके लिए मानो विनोदिनी ने अपना मुँह दूसरी तरफ फेर लिया।

विहारी बोल उठा—"भाभी तुमको रहना ही पड़ेगा। तुम्हारा अपना कहलानेवाला कोई नहीं है-तुम इस सरल स्वभाव लड़की के सुख दुख की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लो, तुम उसे छोड़कर चली जाओगी तो मुझे और कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता।"

विनोदिनी—विहारी बाबू, तुम तो संसार की हालत समझते हो। यहाँ मैं बराबर कैसे रह सकती हूँ। लोग क्या कहेंगे ?

विहारी—"लोग जो चाहें कहें, तुम उस पर ध्यान न देना। तुम देवी हो। असहाय बालिका को संसार के निष्ठुर आघात से

रक्षा करना तुम्हारे लिए उपयुक्त काम है। भाभी, पहले मैं तुमको न पहचान सका, इसके लिए मुझे क्षमा करो। मैंने भी संकीर्ण विचारवाले साधारण लोगों की तरह तुम्हारे ऊपर सन्देह किया था। एक बार ऐसा भी खयाल हुआ था कि तुम आशा के सुख से डाह करती हो – मानो—किन्तु उन बातों को मुँह से निकालना भी पाप है। बाद को तुम्हारे देवीहृदय का मुझे परिचय मिला है। तुम्हारे प्रति मेरे मनमेंगहरी भक्ति उत्पन्न हुई है,इस कारण तुम्हारे सामने अपना सब अपराध स्वीकार किये बिना मैं रह न सका।"

विनोदिनी का सारा शरीर पुलकित हो उठा। यद्यपि वह बिहारी से कुछ छल कर रही थी, फिर भी बिहारी के इस भक्ति-उपहार को अपने मन में भी झूठ समझकर लौटा न सकी। ऐसी चीज उसे कभी किसीसे नहीं मिली थी। क्षणभर के लिए उसे ऐसा मालूम हुआ मानों वह यथार्थ में ही उन्नत और पवित्र है, आशा पर उसके मन में दया का भाव उमड़ पड़ा और इस आवेश में आँसू भर आये। उन आँसुओं को उसने बिहारी से नहीं छिपाया और उनसे उसके मन में स्वयं अपने को पूजनीय समझने का मोह उत्पन्न हुआ।

विनोदिनी को आँसू गिराते देखकर बिहारी अपने आँसू का वेग रोककर महेन्द्र के कमरे में चला गया। बिहारी को इसका कुछ भी मतलब समझ में नहीं आया कि महेन्द्र ने हठात् क्यों अपने को पाखण्डी कहकर तिरस्कार किया था। कमरे में जाकर देखा कि महेन्द्र वहाँ नहीं है। खबर मिली कि महेन्द्र कहीं बाहर घूमने चला गया है। पहले कभी महेन्द्र जरूरत के बिना घर छोड़कर बाहर नहीं जाता था। सुपरिचित आदमियों और सुपरिचित घर छोड़कर बाहर कहीं जाने में महेन्द्र को बड़ी ही थकावट और तकलीफ मालूम होती थी। बिहारी सोचता हुआ धीरे-धीरे अपने घर चला गया।

विनोदिनी ने आशा को अपने कमरे में बुलाकर, छाती से सटा दोनों आँखों में आँसू भरकर कहा, "बहिन आँख की किरकिरी, मैं बड़ी अभागिनी हूँ, बड़ी ही कुलक्षणी हूँ।"

आशा ने व्यथित होकर उसे अपनी भुजाओं में लपेट लिया और स्नेहयुक्त स्वर में कहा, "क्यों बहिन, ऐसी बात क्यों कह रही हो?"

विनोदिनी ने रोने के लिए फूले हुए बच्चे की भाँति आशा की गोद में सिर रखकर कहा—"मैं जहाँ रहूंगी वहाँ केवल बुराई ही होगी। कोई अच्छी बात न होगी। बहिन, मुझे छोड़ दो, मैं अपने जंगल में जाकर रहूँ।"

आशा ने ठोड़ी पर हाथ रखकर विनोदिनी का मुँह ऊपर उठाकर कहा, "मेरी प्यारी बहिन, ऐसी बात मत कहो, तुमको छोड़कर मैं रह न सकूँगी। मुझे छोड़कर जाने का विचार आज तुम्हारे मनमें कैसे आया?"

महेन्द्र को कहीं न देखने पर बिहारी किसी बहाने फिर विनोदिनी के कमरे में, महेन्द्र और आशा के बीच की आशंका की बात समझने और सुनने के लिए आ धमका। उसने यह बहाना सोच लिया कि विनोदिनी से कह दूँगा कि कल सबेरे मेरे यहाँ भोजन करनेके लिए महेन्द्र को न्योता है। किन्तु दरवाजे पर पहुँचते ही 'भाभी' कहकर पुकारते ही उसने दीपक के उज्वल प्रकाश में देखा कि दोनों सखियाँ एक दूसरे से लिपटी हुई खड़ी हैं और दोनों की ही आँखें आँसू से भरी हैं। यह देखकर वह तुरत रुक गया। एकाएक आशा के मन में यह खयाल पैदा हुआ कि अवश्य ही बिहारी ने मेरी सखी से कुछ अनुचित निन्दा की बात कही है, इस कारण ही इनसे आज इस तरह जाने की बात उठायी है। बिहारी बाबू का यह भारी अन्याय है। उनका मन

साफ नहीं है। रुष्ट होकर आशा कमरे से चली गयी। बिहारी भी विनोदिनी के प्रति अपने मन में भक्ति की मात्रा बढ़ाकर गद्‌गद्‌ भाव से अपने घर चला गया।

उस दिन रात को महेन्द्र ने आशा से कहा, "चुन्नी, मैं कल सवेरे की पसिंजर गाड़ी से काशी जाऊँगा।"

आशा की छाती धक्‌धक्‌ करने लगी—कहा,—"क्यों?"

महेन्द्र ने कहा,—"बहुत दिनों से चाची को नहीं देखा।"

सुनकर आशा को बड़ी लज्जा मालूम हुई। यह बात तो उसे पहले ही याद आनी चाहिये थी। अपने सुख दुख के आकर्षण में वह अपनी स्नेहमयी मौसी को भूल गयी है, किन्तु उस प्रवासिनी तपस्विनी को महेन्द्र नहीं भूला है, यह सोचकर अपने को कठोर-हृदया समझकर उसके मन में बड़ी ही धिक्कार पैदा हुई।

महेन्द्र ने कहा—"वे मेरे ही हाथ में अपने एकमात्र सांसारिक धन को सौंपकर चली गयी हैं—उनको एक बार देखे बिना मुझे किसी तरह भी चैन नहीं मिल रहा है।"

यह कहते कहते महेन्द्र का गला भर आया, स्नेहपूर्ण नीरव आशीर्वाद और अव्यक्त मंगलकामनाके साथ वह बारबार आशा के ललाट और मस्तक पर अपना दाहिना हाथ फेरने लगा। इस अकस्मात्‌ बढ़े हुए स्नेह का मर्म आशा न समझ सकी, केवल उसका हृदय पसीजकर आँखों से आंसू गिरने लगे। आज ही शाम को विनोदिनी ने अकारण अधिक स्नेह दिखाकर उससे जो बातें कहीं थीं, वे सब उसे याद पड़ गयीं। दोनों के बीच कहीं किसी तरह का सम्बन्ध है या नहीं, यह कुछ भी आशा न समझ सकी। किन्तु ऐसा जान पड़ा कि यह मानो उसके जीवन में किसी बात की नयी सूचना है। यह भली है या बुरी यह कौन जानता है।

भयव्याकुल चित्त से उसने महेन्द्र को अपनी भुजाओं में लपेट लिया। महेन्द्र उसकी अकस्मात् आशंका बढ़ जाने का अनुभव करने लगा। कहा,—"चुन्नी, तुम्हारे ऊपर तुम्हारी पुण्यात्मा मौसी का आशीर्वाद है, तुम को किसी तरह का डर नहीं है। वे तुम्हारे ही मङ्गल के लिए अपना सब कुछ छोड़कर चली गयी हैं, कभी तुम्हारा किसी तरह का अकल्याण नहीं हो सकता।"

आशा ने तब चित्त दृढ़ करके सब भय दूर कर दिया। स्वामी के इस आशीर्वाद को उसने अक्षय कवच की भाँति ग्रहण कर लिया। वह बारम्बार अपनी मौसी की पवित्र पदधूलि सिर चढ़ाने लगी और एकाग्र चित्त से बोली, 'माँ, तुम्हारा आशीर्वाद सर्वदा मेरे स्वामी की रक्षा करे।

दूसरे दिन महेन्द्र चला गया, उसने जाते समय विनोदिनी से कुछ भी नहीं कहा। विनोदिनी ने मन ही मन कहा, "आप ही अन्याय किया गया और मेरे ऊपर रूठ हो गये! ऐसा साधु तो मैंने कभी नहीं देखा। किन्तु ऐसी साधुता तो अधिक दिन नहीं टिकती।"

—:*:—

२२

संसारत्यागिनी अन्नपूर्णा बहुत दिनों के बाद महेन्द्र को हठात् आते देखकर जिस तरह स्नेह और आनन्द से विभोर हो उठीं, उसी तरह उनके मन में हठात् भय भी उत्पन्न हुआ। उन्होंने सोचा कि कहीं महेन्द्र ने आशा के बारे में अपनी माँ से झगड़ा तो नहीं कर लिया और उसी की नालिश करके मेरे पास सान्त्वना पाने के लिए तो नहीं आ रहा है। महेन्द्र बचपन से ही सब तरह के संकटों और अड़चनों के समय अपनी चाची के पास दौड़ आया

करता था। किसी से जब वह रंज हो उठता था तो अन्नपूर्णा उसके क्रोध को शान्त कर देती थीं और जब वह दुःखी होकर आता था तो वे उसे सह लेने का उपदेश देती थीं। किन्तु विवाह के बाद से महेन्द्र के जीवन में सबसे बढ़कर जो संकट का कारण उपस्थित हुआ है, उसके प्रतिकार की चेष्टा तो दूर रही, उसमें किसी तरह की सान्त्वना तक देने में भी वे असमर्थ हैं। वे जब यह निश्चित रूप से समझ गयीं कि वे जिस तरह जिस भाव से ही उसमें हस्तक्षेप क्यों न करें, उससे महेन्द्र का सांसारिक विप्लव और दुगुना बढ़ जायगा, तब उसी समय उन्होंने संसार त्याग दिया। जब बीमार बच्चा पानी के लिए रोने लगता है और वैद्य पानी देने के लिए मना कर जाता है तब जिस तरह माता व्यथित होकर उस कमरे से हट जाती है, ठीक इसी तरह अन्नपूर्णा घरसे विदा होकर प्रवासिनी हुई हैं। इतनी दूरी पर तीर्थ में आकर धर्म कर्म के नियमित अनुष्ठान से इधर कुछ दिनों से वे सांसारिक झमेले की बातें बहुत कुछ भूल गयी थीं, किन्तु फिर महेन्द्र को देखकर उन्होंने सोचा—"क्या महेन्द्र फिर उन्हीं झगड़ों में मुझे डालकर मेरे भरे हुए घाव में चोट पहुँचाने आया है।"

किन्तु आशा का पक्ष लेकर महेन्द्र ने अपनी माँ के सम्बन्ध में किसी तरह की नालिश नहीं की। तब अन्नपूर्णा की आशंका दूसरी तरफ चली गयी। जो महेन्द्र आशा को छोड़कर कालेज नहीं जा सकता था, वह आज चाची की खोज में काशी क्यों आया। तो अब क्या आशा के प्रति महेन्द्र का खिंचाव क्रमशः ढीला पड़ गया है। मन में कुछ आशंका लिये उन्होंने महेन्द्र से पूछा—"हाँ रे महीन, मेरे सिर की कसम, ठीक-ठीक बताओ, चुन्नी कैसी है?"

महेन्द्र ने कहा—"वह बहुत ही अच्छी तरह है चाची।"

"आजकल वह क्या करती है महीन ? तुम लोग क्या अब भी पहले की तरह लड़कपन ही करते हो या काम धन्धे पर भी मन लगाया है ?"

महेन्द्र ने कहा—"लड़कपन एकदम बन्द हो गया है। सब झंझटों की जड़ वह 'चारुपाठ' नामक पुस्तक कहाँ गायब हो गयी उसका पता पाने का कोई उपाय नहीं है। तुम रहती तो देखकर प्रसन्न होती, कि लिखना पढ़ना सीखने में लापरवाही करना जिस हद तक स्त्रियों का कर्तव्य हो सकता है, चुन्नी उसके पालन में जरा भी कसर नहीं रखती।"

"महीन, बिहारी आजकल क्या करता है ?"

महेन्द्र ने कहा,—"अपना काम छोड़कर सब काम करता है, नायब और गुमास्ते उसकी जमींदारी सम्हालते हैं, लेकिन किस तरह क्या करते हैं यह मैं ठीक नहीं कह सकता। बिहारी का सदा से यही हाल है। उसका अपना काम दूसरे देखते हैं और वह खुद दूसरों का काम देखता है।"

अन्नपूर्णा ने कहा—"क्या वह विवाह नहीं करेगा महीन ?"

महेन्द्र ने कुछ मुसकुराकर कहा,—"कहाँ, कुछ उद्योग तो नहीं दिखाई पड़ता।"

यह सुनकर अन्नपूर्णा के हृदय के गुप्त स्थान में एक तरह की चोट लगी। उन्हें यह बात अच्छी तरह समझ में आ गयी कि उनकी बहिन की लड़की को देखकर एक बार बिहारी आग्रह के साथ विवाह करने को तैयार हो गया था, किन्तु उसके उस आग्रह को अन्याय-पूर्वक तोड़ दिया गया। बिहारी ने उस समय कहा था, 'चाची, अब कभी आप मुझसे विवाह करने के लिए अनुरोध न कीजियेगा' वही अभिमानभरी बात अन्नपूर्णा के कानों में खटक रही थी। अपने परम अनुगत स्नेहपात्र उस

बिहारी को वे उसी भग्न हृदय की हालत में छोड़ आयी थीं, उसे किसी तरह की सान्त्वना न दे सकीं। अन्नपूर्णा बहुत ही उदास होकर डरकर सोचने लगीं, "क्या अब भी आशा के प्रति बिहारी का प्रेम लगा हुआ है ?"

महेन्द्र ने कभी दिल्लगी के बहाने, कभी गम्भीर होकर अपने घर और गृहस्थी की वर्तमान अवस्था बता दी, केवल विनोदिनी की कुछ भी चर्चा नहीं की।

आजकल कालेज खुला हुआ है, काशी में अधिक दिन तक ठहरने की बात नहीं थी। किन्तु कठिन रोग से छुटकारा मिलने के बाद स्वास्थ्यकर जलवायुवाले स्थान में जाकर आरोग्य लाभ करने में जो सुख होता है, वही सुख महेन्द्र को काशी में चाची के पास रहकर मिल रहा था। इस कारण एक-एक दिन बीतता जा रहा था। अपने ही साथ उसके मन में जो एक प्रकार का विरोध उत्पन्न होने की नौबत आ रही थी, वह देखते-देखते दूर हो गयी। लगातार कई दिनों तक बराबर धर्मपरायण अन्नपूर्णा की स्नेहपूर्ण मूर्ति के सामने रहकर संसार का कर्तव्यपालन उसे इस प्रकार सुखदायक और सहज मालूम होने लगा कि, उसे अपने पहले के आतंक की बात सोचकर हँसी आने लगी। मालूम होने लगा कि विनोदिनी कुछ भी नहीं है। यहाँ तक कि उसके मुख की आकृति तक भी महेन्द्र के मन में साफ तौर पर नहीं आ सकती। अन्त में महेन्द्र ने जोर देकर मन में कहा, "मेरे हृदय से आशा को बालभर भी हटा देनेवाला कोई भी आदमी कहीं भी मुझे दिखाई नहीं पड़ता।"

महेन्द्र ने अन्नपूर्णा से कहा—"चाची, कालेज में गैरहाजिरी बढ़ रही है, अब मैं जाना चाहता हूँ। यद्यपि तुम मायामोह छोड़कर यहाँ एकान्त में चल आयी हो तो भी अनुमति दो कि

बीच में आकर तुम्हारी चरणधूलि में जाया करूँ।"

घर लौटने पर जब महेन्द्र ने आशा को अपनी मौसी का स्नेहोपहार—एक सिंदुर का डब्बा और सफेद पत्थर का लोटा दिया तब उसकी आँखों से झरझर करके आँसू गिरने लगे। मौसी के परम स्नेहपूर्ण धैर्य और मौसी पर अपने और अपनी सास के कारण होनेवाले उपद्रव को याद कर उसका हृदय व्याकुल हो उठा। उसने अपने स्वामी से कहा, "मेरी बड़ी इच्छा हो रही है कि एक बार मौसी के पास जाकर उनसे क्षमा मांगूँ और पदधूलि ले आऊँ। क्या यह किसी तरह नहीं हो सकता?"

महेन्द्र आशा की वेदना का मर्म समझ गया, और इस बात पर सहमत भी हो गया कि कुछ दिनों के लिए वह अपनी मौसी के पास जाय। किन्तु फिर कालेज की गैरहाजिरी बढ़ाकर आशा को काशी पहुँचाने में हिचकने लगा।

आशा ने कहा, "बड़े चाचा तो हाल ही में काशी जाने वाले हैं, उनके साथ जाने से क्या न बनेगा?"

महेन्द्र ने राजलक्ष्मी से जाकर कहा—"मां, बहू एक बार चाची को देखने के लिए काशी जाना चाहती है।"

राजलक्ष्मी ने व्यंग्य के साथ कहा, "जाना चाहती हैं तो अवश्य ही जायँगी, जाओ, उनको पहुँचा आओ।"

महेन्द्र फिर अन्नपूर्णा के पास जाने लगा, यह बात राजलक्ष्मी को अच्छी नहीं लगी। आशा के जाने के प्रस्ताव से वे मन ही मन और भी नाराज हो गयीं।

महेन्द्र ने कहा—"मुझे कालेज जाना है, मैं पहुंचाने न जा सकूँगा। अपने बड़े चाचा के साथ वह चली जायगी।"

राजलक्ष्मी ने कहा—"यह तो अच्छी बात है। वे लोग तो बड़े आदमी हैं; कभी हमलोगों की तरह गरीब आदमियों की

परछाहीं तक भी नहीं छूते, उनके साथ जाने से तो गौरव ही बढ़ेगा।"

माता की लगातार व्यंग्यभरी बातों से महेन्द्र का मन एकदम कठोर होकर विमुख हो गया। कुछ भी उत्तर न देकर उसने आशा को काशी भेजने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

जब बिहारी राजलक्ष्मी से मिलने आया तब उन्होंने उससे कहा—"अरे बिहारी, क्या तूने सुना है, हमारी बहू तो काशी जाना चाहती हैं।"

बिहारी ने कहा—"यह क्या कहती हो मां, क्या महीन भैया कालेज में गैरहाजिर रहकर फिर काशी जायँगे ?"

राजलक्ष्मी ने कहा—"नहीं नहीं, महीन क्यों जायगा ?'ऐसा होगा तो बीबीयाना ठाटबाट कैसे बनेगा। महीन यहीं रहेंगे, बहू बड़े चाचा के साथ काशी जायँगी। आजकल सभी लोग साहब बीबी बन रहे हैं ?"

बिहारी मन ही मन घबरा उठा, आजकल के साहबीयाना और बीबीयाना याद करके नहीं। बिहारी सोचने लगा, 'मामला क्या है ? जब महेन्द्र काशी गया तो आशा यहीं रही और जब महेन्द्र लौट आया तो आशा काशी जाना चाहती है। दोनों के बीच कोई भारी बात हो गयी है। इसी तरीके से कब तक चलेगा। मित्र होकर भी क्या हम लोग इसका कुछ प्रतिकार न कर सकेंगे, दूर खड़े देखते रहेंगे ?'

माता के बर्ताव से अत्यन्त क्षुब्ध होकर महेन्द्र अपने सोने के कमरे में आकर बैठा था। इधर कुछ समय तक विनोदिनी महेन्द्र से नहीं मिली, इसलिए आशा उसे पास के कमरे से महेन्द्र के पास ले जाने का अनुरोध कर रही थी।

इसी समय बिहारी ने आकर महेन्द्र से पूछा—"क्या आशा

भाभी का काशी जाना स्थिर हो गया ?'

महेन्द्र ने कहा—"क्यों न होगा ? इसमें बाधा ही क्या है ?"

बिहारी ने कहा—"बाधा की बात कौन कह रहा है ? किन्तु अचानक यह विचार तुम लोगों के दिमाग में कैसे आ गया ?"

महेन्द्र ने कहा—"मौसी को देखने की इच्छा, प्रवासी आत्मीय से मिलने के लिए व्याकुल होना, मानवचरित्र में ऐसी बातें कभी-कभी होती रहती हैं।"

बिहारी ने पूछा, "तुम साथ जा रहे हो ?"

प्रश्न सुनकर ही महेन्द्र समझ गया कि बिहारी इसी बातपर आलोचना करने आया है कि बड़े चाचा के साथ आशा को काशी भेजना उचित नहीं है। बहुत बातें करने से कहीं क्रोध न बढ़ जाय इस आशंका से उसने संक्षेप में कहा नहीं।"

बिहारी महेन्द्र को अच्छी तरह जानता था। वह क्रोधित हो उठा है यह बात बिहारी से छिपी नहीं रही। यह भी वह जानता था कि किसी बात की जिद पकड़ने पर फिर उसे उससे हटाया नहीं जा सकता। इस कारण महेन्द्र के जाने की फिर चर्चा उसने नहीं की। मन में उसने सोचा यदि बेचारी आशा किसी तरह की वेदना लिये काशी जा रही हो तो साथ में विनोदिनी के रहने से उसे बहुत सान्त्वना मिलेगी। इसी से उसने धीरे-धीरे कहा, यदि विनोदिनी भी साथ चली जायँ तो क्या ठीक न होगा ?"

यह सुनते ही महेन्द्र ने गरजकर कहा—"बिहारी तुम्हारे मन में जो बात हो वह साफ साफ कह दो। मेरे साथ कपट व्यवहार करने की क्या जरूरत है ? मैं जानता हूँ कि तुम इस बात का सन्देह करने लगे हो कि मैं विनोदिनी को प्यार करने लगा हूँ। यह बात झूठी है। मैं उसे प्यार नहीं करता। मेरी

यह बात झूठी है। मैं उसे प्यार नहीं करता। मेरी रक्षा के लिए तुम्हें पहरा देने की जरूरत नहीं है। तुम अब अपनी ही रक्षा करो। यदि तुम्हारे मन में सरल मित्रता का भाव होता तो बहुत दिन पहले तुम अपने मन की बात मुझसे कह देते और अपने को मित्र के अन्तःपुर से बहुत दूर ले जाते। मैं तुम्हारे मुँह पर ही साफ-साफ कह देता हूँ कि तुम आशा को प्यार करते हो।"

बहुत ही दर्द से भरे अंग पर किसी के दोनों पैर पड़ जाने से चोट खाया हुआ आदमी क्षण भर में जैसे बिना विचार किये ही चोट पहुँचानेवाले को धक्का देकर गिरा देने की कोशिश करता है, वैसे ही बिहारी भरे गले में पीला चेहरा लिये कुर्सी से उठकर महेन्द्र की तरफ दौड़ पड़ा, किन्तु फिर हठात् सम्हल कर बड़े कष्ट से आवाज निकालते हुए कहा—"ईश्वर तुमको क्षमा करें, मैं अब जा रहा हूँ।" यह कहकर हिलते-हिलते वह कमरे से बाहर निकल गया।

पास के ही कमरे से दौड़ती हुई आकर विनोदिनी ने पुकारा—"बिहारी बाबू!"

बिहारी ने दीवाल पर टेककर कुछ हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"क्या कह रही हो भाभी?"

विनोदिनी ने कहा—"बिहारी बाबू आँख की किरकिरी के साथ मैं भी काशी जा रही हूँ।"

बिहारी ने कहा—"नहीं, नहीं, भाभी, यह नहीं होगा, किसी तरह भी ऐसा न होगा। मेरी बात सुनकर तुम कुछ भी न करना। मैं यहाँ का कोई नहीं हूँ। मैं यहाँ की किसी बात पर हस्तक्षेप करना नहीं चाहता, क्योंकि ऐसा करने का अच्छा परिणाम न होगा। तुम देवी हो, जो अच्छा समझो, वही करो। मैं जाता हूँ।"

इतनी बातें कहकर विनोदिनी को नम्रता से नमस्कार करके वह जाने लगा। विनोदिनी ने कहा, सुनो बिहारी बाबू, मैं देवी नहीं हूँ। तुम्हारे चले जाने से किसी की भी भलाई न होगी। फिर मुझे दोष न देना।''

बिहारी चला गया। महेन्द्र चकित होकर बैठा था। विनोदिनी उसके ऊपर जलते हुए वज्र की भाँति एक कठोर कटाक्ष फेंककर अपने कमरे में चली गयी। उस कमरे में आशा अत्यन्त लज्जा और संकोच में मरी जा रही थी। बिहारी उसे चाहता है यह बात महेन्द्र के मुँह से सुनकर मुँह ऊपर उठाना उसके लिए कठिन हो गया था। किन्तु उस पर विनोदिनी के मन में इस बार दया नहीं हुई। यदि उसी समय आशा उसकी तरफ आँख उठाकर देखती तो डर जाती। मानों सारे संसार पर रुष्ट होने से विनोदिनी पर खून सवार हो गया है। झूठी बात है। विनोदिनी को कोई भी प्यार नहीं करता, सभी इस लजीली पुतली को ही प्यार करते हैं।

महेन्द्र ने उस दिन जोश में आकर बिहारी से कहा था, "मैं पाखण्डी हूँ" किन्तु फिर वह जोश ठण्डा पड़ जाने पर वही हठात् हृदय की बात खुल जाने की आशंका से कुण्ठित हो गया था। उसे ऐसा मालूम हो रहा था मानो उसकी सभी बातें ही प्रकट हो गयी हैं। वह विनोदिनी को चाहता नहीं है, किन्तु बिहारी समझता है कि वह उसे प्यार करता है, इससे बिहारी के ऊपर उसके मन में बड़ा ही क्रोध पैदा हो गया था, विशेषकर, उसके बाद से जब जब बिहारी उसके सामने से गुजरता था, उसे मालूम होता था मानों बिहारी कुतूहल के साथ उसके हृदय के भीतर की बात का पता लगा रहा है। वही भीतरी खटका

धीरे-धीरे बढ़ रहा था और जरा सा आघात पाते ही आज वह बाहर निकल पड़ा।

किन्तु विनोदिनी पास के कमरे से जिस तरह व्याकुल होकर दौड़ आयीं, जिस तरह दुखभरी आवाज में बिहारी को रोक रखने की चेष्टा उसने की और विहारी का कहना मान लेने के लिए आशा के साथ काशी जाने को वह तैयार हो गयी, इस बात की कल्पना भी कभी उसके मन में नहीं हुई थी। इस दृश्य ने महेन्द्र को प्रबल आघात से अभिभूत कर दिया। उसने कह दिया था कि मैं विनोदिनी को नहीं चाहता, किन्तु इस समय उसने जो कुछ देखा और सुना, उससे वह स्थिरचित्त न रह सका। साथ ही निष्फल परिताप के साथ उसे ऐसा भी खयाल होने लगा कि, "विनोदिनी ने मेरे मुँह से यह भी सुन लिया कि मैं उसे प्यार नहीं करता।"

२३

महेन्द्र सोचने लगा—"मैंने कहा है कि "झूठी बात है, मैं विनोदिनी को प्यार नहीं करता।" यह बात बड़ी ही कड़ी है। यदि मान भी लिया जाय कि मैं उसे प्यार नहीं करता, तो भी 'मैं प्यार नहीं करता' यह बात बड़ी ही कठोर है। ऐसी स्त्री कौन है, जिसके मन में चोट न लगेगी। इसका प्रतिवाद करने का मौका कब कहाँ पाऊँगा। यह तो ठीक नहीं कहा जा सकता कि मैं प्यार करता हूँ; किन्तु 'प्यार नहीं करता' इस बात को कुछ नम्र बनाकर, जिससे उसे बुरा न लगे, कहना ही उचित था। विनोदिनी के मन में इस तरह का निष्ठुर और गलत खयाल रहने देना उचित नहीं है।"

मन में यह कहकर महेन्द्र ने अपने बाक्स से अपनी तीनों चिट्ठियों को निकालकर एक बार फिर पढ़ डाला। पढ़कर उसने मन में कहा 'इसमें सन्देह नहीं कि विनोदिनी मुझे प्यार करती है। किन्तु वह कल इस प्रकार बिहारी के पास दौड़ी हुई क्यों आयी? शायद मुझे दिखाकर चिढ़ाने के लिए ही उसने ऐसा किया। जब कि मैंने साफ साफ कह दिया कि मैं प्यार नहीं करता, तो किसी भी मौके पर अपने प्यार को हटा न देगी तो और क्या करेगी? इस तरह मुझसे अपमानित होकर वह बिहारी को प्यार करने लगे तो कुछ भी आश्चर्य बात नहीं।"

महेन्द्र का क्षोभ इतना बढ़ने लगा कि अपनी चञ्चलता देखकर वह स्वयं आश्चर्य में पड़कर भयभीत हो उठा। सोचने लगा—"ऐसा भी हुआ हो कि विनोदिनी ने सुन ही लिया कि मैं उसे प्यार नहीं करता तो इसमें हर्ज ही क्या है। इस बात से यदि नाराज होकर अभिमानिनी विनोदिनी मेरे ऊपर से मन हटा लेने की कोशिश करे तो इसमें हानि ही क्या है। आँधी के समय नाव की जञ्जीर जैसे लंगड़ को खींच कर पकड़ लेती है, महेन्द्र ने उसी तरह व्याकुलता के साथ मानो आशा को बहुत जोर लगा कर पकड़ लिया।

रात को महेन्द्र ने आशा का मुँह अपनी छाती में सटाकर पूछा,—"चुन्नी, ठीक बताओ ,तुम मुझे कितना प्यार करती हो?"

आशा ने सोचा, "यह कैसा प्रश्न है? बिहारी के सम्बन्ध में अत्यन्त लज्जाजनक जो बात उठी है, क्या उसी से यह सन्देह की छाया मेरे ऊपर पड़ी है?" लज्जा से मरती हुई-सी होकर उसने कहा—"छि छि, आज तुमने ऐसा प्रश्न क्यों किया? मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, खोलकर सब बातें बता दो। कब तुम्हें मेरे प्रेम में कहाँ किस तरह की कमी मिली है?"

महेन्द्र ने आशा को परेशानी में डालकर उसका माधुर्य बाहर प्रकट करने के लिए कहा—"तो तुम काशी जाना क्यों चाहती हो ?"

आशा ने कहा—"मैं काशी जाना नहीं चाहती, मैं कहीं न जाऊँगी ।"

महेन्द्र ने कहा –"उस समय तो तुमने ऐसी ही इच्छा प्रकट की थी।"

आशा ने बहुत ही व्यथित होकर कहा, "तुम तो जानते हो कि मैं किस कारण जाना चाहती थी ।"

महेन्द्र ने कहा, "मुझे छोड़कर तुम अपनी मौसी के पास शायद बहुत आराम में रह सकोगी ।"

आशा ने कहा, "कभी नहीं, मैंने सुख के लिए कभी जाने की इच्छा प्रकट नहीं की ।"

महेन्द्र ने कहा,"मैं सच कहता हूँ चुन्नी, यदि तुम्हारा विवाह किसी दूसरे से हुआ होता तो तुम अधिक सुखी होती ।"

यह सुनकर चकित होकर आशा ने महेन्द्र की गोदसे अपना मुँह हटाकर तकिये के अन्दर छिपा लिया और काठ की भाँति निर्जीव सी होकर चुप हो रही, क्षणभर में उसके रोने का वेग रुका न रह सका । उसे सान्त्वना देने के लिए महेन्द्र ने गोद में उठा लेने की चेष्टा की, किन्तु वह तकिये से अलग नहीं हुई। पतिव्रता के इस अभिमान से महेन्द्र सुख, गर्व और धिक्कार से क्षुब्ध हो उठा ।

जो सब बातें अबतक भीतर ही भीतर आभासरूप में थीं, वे सभी हठात् बाहर निकल जाने से सबके मन में खलबली मच गयी । विनोदिनी अपने मन में सोचने लगी—'अपने ऊपर किये गये इस तरह के स्पष्ट अभियोग का बिहारी ने प्रतिवाद

क्यों नहीं किया ? यदि वह झूठमूठ भी प्रतिवाद करता तो भी विनोदिनी कुछ खुश होती। अच्छा हुआ। महेन्द्र ने बिहारी को जो चोट पहुँचायी है वह उसके लिए उपयुक्त ही थी। बिहारी की तरह महान् पुरुष क्योंकर आशा को प्यार करेगा ? इस आघात से बिहारी दूर हट गया, यह एक तरह अच्छा ही हुआ—मैं निश्चिन्त हो गयी।'

किन्तु बिहारी की मुर्दे की भाँति सूखे चेहरे की मूर्ति मानो विनोदिनी का उसके सभी कामों के बीच पीछा करने लगी। विनोदिनी के हृदय में जो सेवापरायण नारी-प्रकृति मौजूद थी, वह उस आर्त मुख को देखकर रोने लगी। बीमार बच्चे की माता जिस तरह अपनी छाती में सटाकर घूमती हुई उसका जी बहलाती है, उसी तरह उस आतुर मूर्ति को अपने हृदय में रखकर वह घूमती रहने लगी; उसे स्वस्थ और प्रसन्न कर मुख में फिर रक्त की रेखा, प्राण का प्रभाव, हास्य का विकास देखने के लिए विनोदिनी इतनी उत्सुक हो उठी कि वह अत्यन्त अधीर हो उठी।

दो तीन दिन सब कामों में इस तरह इस प्रकार व्यग्र रहने के बाद विनोदिनी से और न रहा गया। उसने एक सान्त्वना का पत्र लिखा—"बिहारी बाबू, उस दिन तुम्हारा सूखा उतरा चेहरा देखकर बड़ी दुखी हूँ और उसी दिन से यही कामना हृदय से कर रही हूँ कि तुम स्वस्थ हो जाओ, जैसे थे वैसे ही हो जाओ—वह सहज हँसी की रेखा फिर कब देखूँगी, वे उदार बातें फिर कब सुनूँगी ? तुम कैसे हो, मुझे एक लाइन लिखकर बता दो।—तुम्हारी विनोदिनी भाभी।"

विनोदिनी ने दरवान के हाथ से बिहारी के पते पर चिट्ठी भेज दी।

"आशा को बिहारी प्यार करता है" यह बात इस तरह बुरे ढंग से, इस तरह निन्दित तरीके से, महेन्द्र मुँह से निकाल सकेगा, इसकी कल्पना तक बिहारी ने स्वप्न में भी नहीं की थी। क्योंकि स्वयं भी उसने कभी ऐसी बात को अपने मन में स्थान नहीं दिया था। इससे पहले तो उस पर वज्राघात सा हुआ—इसके बाद क्रोध और घृणा से छटपटाकर कहने लगा—अन्याय है, असँगत है, अमूलक है।'

किन्तु जब बात एक बार कह डाली गयी है, तब उसे एकदम मिटाया नहीं जा सकता। उसमें सचाई का जितना बीज था, वह देखते-देखते अंकुरित होने लगा। एक दिन जब वह सूर्यास्त के समय कन्या देखने के लिए गया था और वहाँ बगीचे के ताजे खिले हुए फूलों की गन्ध के प्रवाह से लज्जित बालिका के सुकुमार मुख को एकदम अपना ही समझकर उमड़ते हुए अनुराग की दृष्टि से एक बार देख लिया था, वही मुख उसे बार-बार याद आने लगा। उसकी छाती पर मानो किसी ने भारी बोझ रख दिया और एक अत्यन्त कठिन पीड़ा उसके गले तक समूचे हृदय को आलोडित करने लगी। छत पर बड़ी देर तक पड़े-पड़े और मकान के सामने रास्ते में तेजी से टहलते टहलते बिहारी के मन में वह बात व्यक्त हो उठी जो इतने दिनों तक प्रकट नहीं हुई थी। जो बात सँयत थी वह सामने आ गयी। अपने पास भी जिसका कुछ प्रमाण नहीं था, वह महेन्द्र के कहने से विराट रूप धारण कर बिहारी के भीतर बाहर सर्वत्र व्याप्त हो उठा।

तब उसने अपने को अपराधी समझ लिया। अपने मन में उसने कहा, "क्रोध करना तो मेरे लिए शोभा की बात न होगी। महेन्द्र से तो क्षमा माँगकर बिदा होना चाहिये। उस दिन मैं

इस तरह बिगड़ कर चला आया था मानो महेन्द्र दोषी है और मैं विचारक हूँ--अपनी वह गलती मैं महेन्द्र के सामने स्वीकार कर आऊँगा।"

बिहारी जानता था कि आशा काशी चली गयी। एक दिन वह संध्या के समय धीरे-धीरे महेन्द्र के दरवाजे पर आया। राजलक्ष्मी के दूर के नाते के मामा साधुचरण को देखकर उसने पूछा, "यहाँ का समाचार अच्छा तो है? मैं कई दिन से यहाँ न आ सका।" साधुचरण ने कहा कि सब लोग सकुशल हैं। बिहारी ने पूछा—"भाभी काशी कब गयीं?"

साधुचरण ने कहा—"वे नहीं गयीं। उनका काशी जाना रुक गया।" यह सुनकर कुछ भी रोकटोक न मानकर मकान के अन्दर जाने के लिए बिहारी का मन उद्विग्न हो उठा। पहले जिस तरह सहज भाव से, आनन्द से, आत्मीय की भाँति वह सीढ़ियों से चढ़ता हुआ मकान के अन्दर चला जाता था, सबके साथ खुले दिल से हँसी दिल्लगी करता था, कुछ भी संकोच न होता था, आज वह आचरण अनुचित हो उठा है, दुर्लभ हो गया है यह समझकर ही मानो उसका चित्त उन्मत्त हो उठा। एक बार केवल अन्तिम बार के लिये पहले की ही भाँति अन्दर मकान में जाकर घर के लड़के की तरह राजलक्ष्मी से बातचीत करने, घूँघट काढ़े हुए आशा को भाभी कहकर कुछ दिल्लगी कर लेने की उत्कट अभिलाषा उसके मन में प्रबल रूप से जाग उठी। साधुचरण ने कहा, 'भाई, अँधेरे में क्यों खड़े हो, अन्दर चलो।"

यह सुनकर बिहारी तेजी से भीतर मकान की ओर कई कदम आगे बढ़ा, पर फिर लौटकर उसने साधु से कहा, 'जा रहा

हूँ, एक काम है।" यह कहकर वह जल्दी से चला गया। उसी रात को बिहारी युक्तप्रांत चला गया।

दरवान चिट्ठी लेकर बिहारी के मकान पर गया किन्तु मुलाकात न होने पर लौट आया। उस समय महेन्द्र ड्योढ़ी के सामने छोटे बगीचे में टहल रहा था। उसके हाथ में चिट्ठी देखकर उसने पूछा, "यह किसकी चिट्ठी है ?" दरवान ने सब बातें बता दीं। महेन्द्र ने वह चिट्ठी अपने हाथ में ले ली।

एक बार उसने यह सोचा कि, चिट्ठी ले जाकर विनोदिनी के हाथ में दे दूँ और अपराधिनी विनोदिनी का लज्जित मुख एक बार देख आऊँ, कुछ बातचीत न करूँगा। महेन्द्र के मन में इसमें जरा भी सन्देह नहीं रहा कि इस चिट्ठी में विनोदिनी के लज्जित होने की बात जरूर है। उसको याद आ गया कि पहले भी तो एक दिन बिहारी के नाम ऐसी ही एक चिट्ठी भेजी गयी थी। चिट्ठी में क्या लिखा हुआ है, यह बात जान लेने को वह इतना उत्सुक हो गया कि वह किसी तरह भी स्थिर न रह सका। उसने मन को समझाया कि विनोदिनी मेरी देखभाल में यहाँ रहती है, उसकी भलाई बुराई की जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। अतः इस तरह का एक सन्देह-जनक पत्र खोलकर पढ़ लेना ही मेरा कर्तव्य है। विनोदिनी को किसी तरह भी कुमार्ग में जाने देना उचित न होगा।

महेन्द्र ने उस छोटी चिट्ठी को खोलकर पढ़ लिया। वह चिट्ठी सरल भाषा में लिखी हुई थी, इस कारण उसमें सच्ची घबराहट साफ तौर पर झलक रही थी। चिट्ठी को बार-बार पढ़कर और बहुत सोच विचारकर महेन्द्र यह न समझ सका कि विनोदिनी के मन की गति किस तरफ है। उसके मन में केवल यही आशंका होने लगी कि—'मैं उसे प्यार नहीं करता

यह कहकर मैंने विनोदिनी का जो अपमान किया है उसी से रंज होकर विनोदिनी अपने मन को दूसरी तरफ लगाने की चेष्टा कर रही है। उसने रंज होकर मेरी आशा एकदम छोड़ दी है।'

यह खयाल मन में आते ही महेन्द्र के लिये धैर्य की रक्षा करना एकदम असम्भव हो उठा। जो विनोदिनी मेरे पास आत्मसमर्पण करने आयी थी, वह क्षणभर में मेरे हाथ से एकदम निकल जायगी इस खयाल ने महेन्द्र को स्थिर न रहने दिया। महेन्द्र ने सोचा। यदि विनोदिनी गुप्तरूप से अपने मन में मुझे प्यार करती है तो वह उसके लिए भला ही है—क्योंकि वह एक स्थान पर बँधी रहेगी। मैं अपने मन को जानता हूँ, मैं कभी उसके साथ अन्याय नहीं कर सकता। वह निरापद रूप से मुझे प्यार कर सकती है। आशा को प्यार करता हूँ, इस-लिए मुझसे कोई भय नहीं है। किन्तु वह यदि किसी दूसरी तरफ मन लगावेगी, तो उस हालत में उसका कैसा सर्वनाश होगा, यह कौन जानता है।' महेन्द्र ने निश्चय कर लिया, खुद अपने आप पहचान में न आकर विनोदिनी के मन को किसी तरह अपनी तरफ फिर लौटाना ही होगा।

महेन्द्र ने मकान के अन्दर जाते ही देखा कि विनोदिनी रास्ते में ही मानो किसी की प्रतीक्षा में घबरायी हुई है। इस दृश्य से उसके मन में द्वेष की आग जल उठी। उसने कहा, 'अजी, यहाँ फजूल ही खड़ी हो, मुलाकात न होगी देखो, यह तुम्हारी चिट्ठी लौट आयी है।' यह कहकर उसने चिट्ठी विनो-दिनी के सामने फेंक दी।

विनोदिनी ने कहा, "यह खुली कैसे ?"

महेन्द्र कुछ जवाब न देकर ही चला गया। उसने सोच

कि बिहारी ने चिट्ठी खोलकर पढ़ ली, कुछ भी उत्तर नहीं दिया और लौटा दिया। उसका सारा शरीर क्रोध से जलने लगा। जो दरवान चिट्ठी लेकर गया था, उसे बुला भेजा, वह किसी दूसरे काम में फँसा था, नहीं मिला। जैसे जलते हुए प्रदीप की बत्ती से तेल की बूंद टपकती रहती है, बन्द शयनकक्ष के भीतर विनोदिनी की चमकीली आँखों से हृदय की ज्वाला वैसे ही आँसू के रूप में गलकर झरने लगी। अपनी चिट्ठी को फाड़-फाड़कर उसने टुकड़े-टुकड़े कर डाले, किन्तु किसी तरह भी उसे सान्त्वना नहीं मिली! स्याही की उन दो-चार लाइनों के दाग को अतीत और वर्तमान से मिटा देने का, एकदम गायब कर देने का कोई उपाय नहीं है? क्रोधित मधुमक्खी जिसे ही सामने पाती है, उसे ही काट खाती है, क्षुब्ध विनोदिनी उसी तरह अपने चारों तरफ के सारे संसार को जला डालने के लिये तैयार हो गयी। वह जो चाहती है उसी में बाधा पड़ती है। किसी तरह भी क्या उसे किसी काम में सफलता न मिलेगी? यदि सुख नहीं मिला तो जिन्होंने उसके सब सुखों में बाधा डाली, जिन्होंने उसे कृतार्थ होने से भ्रष्ट कर दिया, सभी सम्भव सम्पत्तियों से वञ्चित कर दिया, उन्हें परास्त करके, धूलि में गिरा देने पर ही उसके व्यर्थ जीवन का कर्तव्य पूरा हो जायगा।

२४

नया फागुन का महीना शुरू होने के साथ ही और प्रथम वसन्त की हवा बहने के साथ ही उस दिन बहुत दिनों के बाद आशा सन्ध्या के आरम्भ में छत पर चटाई बिछाकर बैठी हुई

है। वह एक मासिक पत्रिका लेकर क्रमशः प्रकाशित कहानी का अंश खूब मन लगाकर झिलमिल प्रकाश में पढ़ रही थी। उसने उस कहानी में पढ़ा कि कहानी में वर्णित नायक साल भर के बाद दुर्गापूजा की छुट्टी में अपने घर जा रहा था, पर रास्ते में ही उसपर डाकुओं का दल टूट पड़ा। यह पढ़ने पर आशा का हृदय भय से काँप उठा। उसने यह भी पढ़ा कि इधर अभागिनी नायिका ठीक उसी समय विपत्ति का स्वप्न देखकर रोती हुई जाग पड़ी है यह पढ़ने पर आशा की आँखों से आँसू बहने लगे। आशा कहानी की समालोचना करने में अत्यन्त उदार थी। जो पढ़ती थी वही उसे अच्छी जँचती थी। पढ़ लेनेपर वह विनोदिनी को बुलाकर कहती थी, 'बहिन आँख की किरकिरी, मेरे सिर की कसम, यह कहानी पढ़कर देखो। बड़ी सुन्दर है। पढ़ने पर मैं तो रोने लग गयी।' विनोदिनी गुण दोषों पर विचार करके आशा के उमड़े हुए उत्साह पर बड़ी चोट पहुँचाती थी।

आशा ने निश्चय किया आज की यह कहानी महेन्द्रको पढ़ने के लिए देना चाहिये। यह सोचकर आँसू से भरी आँखों के साथ उसने ज्योंही पत्रिका को रखा त्योंही महेन्द्र वहाँ आ पहुँचा उसे देखते ही आशा उत्कण्ठित हो उठी। महेन्द्र ने बलपूर्वक हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—अकेली छत पर किस भाग्यवान की चिन्ता में पड़ी हो?"

कहानी की नायक-नायिका की बात एकदम ही भूलकर आशा ने कहा, "क्या आज तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है?"

महेन्द्र—"तबीयत बिलकुल ठीक है।"

आशा—"तो तुम मन ही मन क्या सोच रहे हो, मुझे सच सच बताओ।"

महेन्द्र ने आशा के पनडट्टे से एक पान निकालकर मुँह में डाल कर कहा "मैं यही सोच रहा था कि तुम्हारी मौसी बेचारी ने कितने दिनों से तुम्हें नहीं देखा। एक बार यदि तुम एकाएक उनके सामने जाकर हाजिर हो जाओगी तो वे कितनी खुश हो जायँगी।"

कुछ भी उत्तर न देकर आशा महेन्द्र के मुँह की ओर ताकने लगी। आज फिर यह बात हठात् महेन्द्र के मन में क्यों आ गयी, यह बात वह न समझ सकी।

आशा को चुप देखकर महेन्द्र ने कहा, "क्या वहाँ जाने की तुम्हें इच्छा नहीं होती?"

इस बात का उत्तर देना कठिन है। मौसी को देखने के लिए जाने की इच्छा होती है, साथ ही महेन्द्र को छोड़कर जाने की भी इच्छा नहीं होती। आशा ने कहा—"कालेज की छुट्टी मिलने पर जब तुम जा सकोगे तब मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

महेन्द्र—"छुट्टी मिलने पर भी जाने का उपाय नहीं है परीक्षा के लिए तैयारी करनी पड़ेगी।"

आशा—"तो रहने दो, इस समय न जाऊँगी तो क्या होगा।"

महेन्द्र—"रहने क्यों दिया जाय, तुम जाना चाहती थी तो जाती क्यों नहीं है।"

आशा—"नहीं, जाने की मेरी इच्छा नहीं है।"

महेन्द्र—"अभी उस दिन इतनी अधिक इच्छा थी, हठात् वह इच्छा कहाँ चली गयी?"

इन बातों को सुनकर आशा चुपचाप आँखें नीचे करके बैठी रही। विनोदिनी के साथ मेलजोल बढ़ा लेने के लिए बाधाहीन अवसर पाने की इच्छा से महेन्द्र का मन अत्यन्त अधीर हो

उठा था। आशा को चुपचाप बैठी देखकर उसे अकारण क्रोध आ गया। कहा, "मेरे ऊपर तुम्हारे मन में किसी तरह का सन्देह हुआ है। इसीसे तुम बराबर अपनी आँखों के सामने रखकर पहरा देना चाहती हो।"

आशा की स्वाभाविक नम्रता, सरलता और धैर्य महेन्द्र के लिए अचानक असहनीय हो उठा। मन ही मन सोचने लगा, "मौसी के पास जाने की इच्छा है, तब कहती क्यों नहीं कि मैं जाऊँगी ही, जिस तरह हो मुझे भेज दो। ऐसा न करके कभी हाँ, कभी नहीं, कभी चुप यह कैसी बात है?"

हठात् महेन्द्र की ऐसी उग्रता देखकर आशा आश्चर्य में पड़ गयी और डर गयी। बहुत चेष्टा करने पर भी उसे कोई उत्तर नहीं आया। उसे यह बात समझ नहीं आयी कि महेन्द्र कभी इतना आदर क्यों करता है और कभी इतना निष्ठुर क्यों बन जाता है। इस तरह महेन्द्र उसके लिए जितना ही अधिक दुर्बोध्य और गूढ़ होने लगा, उतना ही आशा का कम्पित हृदय भय और प्रेम के वश में उसे मानो अधिकाधिक घेर रखने के लिए घबरा उठा।

मन में महेन्द्र पर सन्देह करके आशा उसपर नजर रखकर पहरा देना चाहती है। यह कठिन उपहास है या निर्दय सन्देह है? यह बात हँसी में उड़ा देना चाहिए या इसकी शपथ करके प्रतिवाद करना चाहिये।

किंकर्तव्यविमूढ़ आशा को फिर उसी तरह चुपचाप बैठी देखकर घबराया हुआ महेन्द्र तेजी से उठकर बाहर चला गया। तब न मालूम कहाँ रह गया मासिक पत्रिका की उस कहानी का नायक और कहाँ रह गयी कहानी की वह नायिका। सूर्यास्त के समय की आभा अन्धकार में विलीन हो गयी। सन्ध्या समय

की क्षण काल की वासन्ती हवा ठण्ढक पहुँचाने लगी। तबतक भी आशा उस चटाई पर लेटी हुई पड़ी रह गयी।

बड़ी रात बीतने पर आशा ने सोने के कमरे में जाकर देखा कि महेन्द्र उसे बिना बुलाये ही सोया हुआ है। उसी समय आशा ने अपने मन में सोचा कि मुझे अपनी स्नेहमयी मौसी के प्रति इतनी उदासीन देखकर ही इनके मन में मेरे ऊपर घृणा हो गयी है। यह सोचकर वह बिछौने पर गयी और महेन्द्र के पैर पर अपना मुँह रखकर लेट गयी। तब महेन्द्र ने दया से विचलित होकर उसे खींचकर छाती में सटा लेने की चेष्टा की। आशा किसी तरह भी न उठी। उसने कहा--"यदि मुझसे कुछ अपराध हुआ हो तो मुझे क्षमा करो।"

महेन्द्र ने दयायुक्त मीठे स्वर में कहा—'तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं है चुन्नी, मैं बड़ा ही पाखण्डी और नीच हूँ, इस कारण तुम्हें व्यर्थ ही मैंने कष्ट पहुँचाया।"

तब महेन्द्र के दोनों पैरों के ऊपर से आशा की आँखों से आँसू बहकर लुढ़कने लगे और उसके पैर भींग गये। महेन्द्र उठकर बैठ गया और उसे अपने दोनों हाथों से उठाकर अपने पास सुला लिया। जब आशा के रोने का वेग रुका तो उसने कहा--"मौसी को देखने जाने के लिए क्या मुझे इच्छा नहीं होती? किन्तु तुमको छोड़कर जाने की इच्छा मुझे नहीं होती। इसी से मैंने जाना रोक दिया, तुम नाराज मत होना।"

महेन्द्र ने धीरे-धीरे आशा के गीले कपोलों को पोंछते हुए कहा—"क्या यह नाराज होने की बात है चुन्नी, मुझे छोड़कर तुम जा नहीं सकती; इसपर क्या मैं नाराज हो जाऊँ? तुमको कहीं न जाना होगा।"

आशा ने कहा--नहीं, मैं काशी जाऊँगी।

महेन्द्र—क्यों ?

आशा—जब तुम्हारे मुँह से एक बार यह बात निकल गयी कि मैं तुम्हारे ऊपर सन्देह करके नहीं जा रही हूँ तो इस हालत में मुझे कुछ दिनों के लिये जाना ही पड़ेगा।

महेन्द्र—पाप तो मैंने किया और उसका प्रायश्चित्त क्या तुम्हें करना पड़ेगा ?

आशा—यह तो मैं नहीं जानती—किन्तु मुझसे किसी तरह का पाप हुआ होगा तभी तो ये सब असम्भव बातें उठायी गयी हैं। जिन बातों को कभी सपने में भी न सोच सकती थी, वे बातें क्यों सुनने की नौबत आ रही है ?

महेन्द्र—इसका कारण यह है कि मैं कितना बुरा आदमी हूँ, यह बात तुम सपने में भी नहीं समझ पाती।

आशा ने घबराकर कहा—"फिर ऐसी बात मत कहो, किन्तु इस बार मैं काशी जरूर जाऊँगी।"

महेन्द्र ने हँसकर कहा—"अच्छा जाओ, किन्तु तुम्हारे न रहने पर यदि मैं बिगड़ जाऊँ तो क्या होगा ?"

आशा ने कहा—"तुम्हें इतना भय दिखाने की जरूरत नहीं है, क्या मैं इसकी चिन्ता में अधीर होती जा रही हूँ ?"

महेन्द्र—किन्तु इसके लिए अधीर होना उचित है। तुम यदि अपने ऐसे पति को असावधानी में बिगड़ जाने दोगी तो फिर इसके बाद किसे दोष दोगी ?

आशा—तुमको दोष न दूँगी, इसके लिए तुम चिन्ता मत करना।

महेन्द्र—तब उस समय क्या तुम अपना दोष स्वीकार करोगी ?

आशा—सौ बार स्वीकार करूँगी।

महेन्द्र—अच्छा, तो अब मैं कल तुम्हारे बड़े चाचा के पास बातचीत ठीक कर आऊँगा ।

यह कहकर महेन्द्र ने कहा कि "अब बहुत रात बीत गयी" और करवट बदल कर सो गया।

कुछ देर बाद हठात् फिर करवट बदलकर उसने कहा, "चुन्नी, कोई जरूरत नहीं तुम न जाओगी तो क्या कुछ हर्ज होगा ?"

आशा ने कातर होकर कहा—"फिर मुझे मना क्यों कर रहे हो ? यदि इस बार न जाऊंगी तो तुम्हारी उस भर्त्सना की चोट मेरे शरीर पर बराबर लगी रहेगी। मुझे दो चार दिन के लिए ही भेज दो।

महेन्द्र ने कहा- "अच्छा।" इसके बाद फिर करवट बदल कर सो गया।

काशी जाने के एक दिन पहले आशा ने विनोदिनी को आलिंगन में आबद्ध करके कहा, बहिन "किरकिरी, मेरा शरीर एक बात मान लेने का मुझे वचन दे दो।"

विनोदिनी ने आशा का गाल दबाकर कहा, "किस बात का वचन बहिन, तुम्हारी बात क्या मैं न मानूँगी ?"

आशा—"कौन जाने बहिन, आजकल न मालूम तुम कैसी हो गयी हो। मानों किसी तरह भी तुम मेरे पति के सामने बाहर निकलना नहीं चाहती।"

विनोदिनी—"क्यों नहीं चाहती, यह बात क्या तुमसे छिपी है बहिन ! उस दिन महेन्द्र बाबू ने बिहारी से जो कुछ कहा, क्या वह तुमने अपने कानों से नहीं सुना ? जब ऐसी बातें उठने लगीं, तब क्या बाहर निकलना मेरे लिए उचित होगा ; तुम्हीं बताओ तो।"

आशा इतना जरूर समझती थी कि उचित है या नहीं। ऐसी बातों से कितनी लज्जा होती है यह भी स्वयं अपने मन में हाल में ही समझ चुकी है। तो भी उसने कहा--ऐसी बातें तो कितनी उठा करती हैं, यदि उन सबको सह न सकोगी तो हम लोगों में प्रेम कहाँ रह जायगा बहिन! उन बातों को भूल जाना होगा।"

विनोदिनी—"अच्छा बहिन, भूल जाऊँगी।"

आशा—मैं तो बहिन, कल काशी जाऊँगी, मेरे पति को मेरी अनुपस्थिति में कोई कष्ट न होने पावे, इस पर तुम्हें अच्छी तरह ध्यान रखना होगा। आजकल की तरह दूर दूर रहने से काम न चलेगा।

विनोदिनी चुप हो रही। आशा ने विनोदिनी का हाथ पकड़ कर दबाकर कहा—"मेरे सिर की कसम बहिन आँख की किर-किरी इसका वचन तुम्हें मेरे लिए देना ही पड़ेगा।"

विनोदिनी ने कहा—"अच्छा"

२५

एक तरफ चन्द्रमा अस्त हो जाता है और एक तरफ सूर्योदय होता है। आशा चली गयी, किन्तु महेन्द्र को अब भी विनोदिनी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। महेन्द्र इधर-उधर घूमता रहता है, बीच बीच में बहाना करके अपनी माँ के कमरे में चला जाता है, विनोदिनी भुलावा देकर भाग जाया करती है, पकड़ में नहीं आती।

राजलक्ष्मी ने महेन्द्र को इस तरह बहुत ही उदास देखकर सोचा 'बहू चली गयी है, इसलिए इस मकानमें महेन्द्र को किसी

तरह भी अच्छा नहीं लग रहा है।' आजकल महेन्द्र के सुख दुःख में माँ बहू की तुलना में अनावश्यक सी हो गयी थी। यह बात सोचकर राजलक्ष्मी के मन में बड़ी चोट लगी, फिर भी महेन्द्र को ऐसा उदास देखकर उन्हें दुःख हुआ। विनोदिनी को बुलाकर उन्होंने कहा, 'मुझे जो इनफ्लुएंजा हुआ था उसी समय से मानो मुझे दमा के रोगी की तरह साँस फूलने की शिकायत हो गयी है। मैं तो आजकल सीढ़ियों से चढ़कर बारबार ऊपर जा सकती। बेटी, अब तुमको ही स्वयं उपस्थित रहकर महेन्द्र को खिलाने पिलाने का काम सम्हालना पड़ेगा। इसकी तो आदत पड़ गयी है कि कोई सेवा करने के लिये पास न रहने से उससे रहा नहीं जाता। देखो, न जबसे बहू चली गयी तबसे दिन पर दिन इसकी कैसी दशा हो गयी है। बहू भी धन्य है कि इसे छोड़ कर न मालूम कैसे चली गयी।''

विनोदिनी जरा मुँह टेढ़ा करके बिछौने की चादर खुटकने लगी। राजलक्ष्मी ने कहा, क्या बहू, क्या सोच रही हो ? इसमें सोचने की कोई बात नहीं है लोग जो चाहें कहते रहें तुम तो हमारे लिये परायी नहीं हो।''

विनोदिनी ने कहा— ऐसा करने की जरूरत नहीं है माँ।''

राजलक्ष्मी ने कहा, ''अच्छा तो रहने दो, जो कुछ हो सकेगा, मैं स्वयं करूँगी।''

यह कहकर वे तुरत महेन्द्र के तिमंजिले पर के कमरे को ठीक करने के लिए जाने को तैयार हुईं। विनोदिनी ने घबड़ाकर कहा, ''तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है, तुम मत जाओ, मैं जा रही हूँ। माफ करो, बूआ, तुम जो आज्ञा दोगी, वही करूँगी।''

राजलक्ष्मी, लोगों की बातों पर ध्यान न देकर उन्हें बिलकुल ही तुच्छ समझती थीं। पति की मृत्यु हो जाने के बाद से संसार

में और समाज में महेन्द्र के सिवा और कुछ भी वे नहीं जानती थीं। महेन्द्र के सम्बन्ध में विनोदिनी की बातचीत में समाज-निन्दा का आभास मिलने से वे बहुत ही रंज हो उठी थीं। बचपन से ही महेन्द्र को देखती आ रहीं हैं। उसके समान अच्छा लड़का कहाँ है? उस महीन के सम्बन्ध में यदि कोई निन्दा करे तो उसकी जीभ क्यों न गिर पड़े। उनको जो कुछ अच्छा मालूम होता उसे यदि सारी दुनिया के लोग बुरा कहें तो भी उसकी कुछ भी परवा न करने की उसकी स्वाभाविक जिद थी।

आज कालेज से लौटकर महेन्द्र ने जब अपना सोने का कमरा देखा तो आश्चर्य में पड़ गया। दरवाजा खोलकर देखा चन्दन और दशांग जलने की सुगन्ध से कमरा भर उठा है।

मसहरी में गुलाबी रेशम की झालर लगी हुई है। नीचे के बिछौने पर सफेद जाजिम चमक रहा है। उसपर का पुराना तकिया हटा दिया है, उसकी जगह पर रेशमी फूल आदि के कसिदे काढ़े हुए विलायती किस्म का गोल तकिया सजाकर रक्खा हुआ है। उसकी सारी कारीगरी विनोदिनी के बहुत दिनों के परिश्रम के फलस्वरूप थी। आशा ने उसे देखकर एक दिन पूछा था, "बहिन,—ये सब तुम किसके लिए तैयार कर रही हो?" विनोदिनी ने हँसकर जवाब दिया था, "अपनी चिता की सजावट के लिए। मृत्यु के सिवा तो सोहाग का कोई आदमी मेरे लिए नहीं है।"

दीवार पर महेन्द्र का शीशे में बंधा हुआ जो फोटोग्राफ था, उसकी फ्रेम के चारो कोनों में रंगीन फीते से बड़ी निपुणता से चार गांठें दी हुई हैं और तसवीर के नीचे एक ताख के दोनों तरफ दो फूलदानियों में फूलों के दो गुच्छे रखे हुए हैं। उन्हें

देखने से मालूम हो रहा है मानो महेन्द्र की वह प्रतिमूर्ति किसी अज्ञात भक्त की पूजा पा रही है। सारे कमरे का रूप ही बदल गया है। पलंग अपने स्थान से कुछ हटा दिया गया है। कमरे को दो भागों में विभक्त किया गया है, पलंग के सामने बीच में एक तार बांधकर उस पर कपड़ा टांग देने से रात को सोने का पलंग और नीचे बैठने के स्थान अलग-अलग हो गये हैं। जिस आलमारी में आशा के शौक की चीजें खिलौने आदि सजाकर रखे हुए थे, उस आलमारी में आशा के शौक की चीजें खिलौने आदि सजाकर रखे हुए थे, उस आलमारी के शीशे के भीतरी भाग में लाल कपड़ा सटाकर उसे ढंक दिया है, अब उसके पहले के इतिहास का जो कुछ चिह्न था, वह नये हाथ की नयी सजा-वट से बिलकुल छिप गया है।

थका हुआ महेन्द्र फर्श पर के सफेद बिछौने पर लेट गया। नया तकिया पर सिर रखते ही उसे एक तरह की मृदु सुगंध मालूम होने लगी। तकिये के भीतर की रुई के साथ नागकेशर फूलों की बहुत-सी रज मिला दी गयी थी और कुछ अतर भी ढाल दिया गया था।

महेन्द्र की आंखें आराम के कारण आप ही आप बन्द होने लगीं, उसे मालूम होने लगा कि इस तकिये पर जिसके निपुण हाथ की कारीगरी मौजूद है, उसीकी चंपे की कली जैसी अंगुली की मानो गन्ध आ रही है।

ऐसे ही समय में घर की दासी ने चांदी की रकाबी में फल मिठाई और शीशे के गिलास में बर्फ मिला हुआ अनन्नास का शरबत लाकर दिया। इन सभी चीजों का ढग पहले से कुछ दूसरे ही प्रकार का था और बड़े ही यत्न और सजावट से सभी

परिपूर्ण थीं। स्वाद में, सुगन्ध में और देखने में नवीनता आ जाने से महेन्द्र के सारे अंग-प्रत्यंग विह्वल हो उठे।

तृप्ति के साथ जलपान हो चुकने पर, चांदी के पनबट्टे में पान इलायची आदि लिये विनोदिनी ने धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश किया। उसने हँसते-हँसते कहा—"इधर कई दिन तुम्हारे भोजन के समय मैं उपस्थित न रह सकी, माफ करो, और जो कुछ भले ही करो, किन्तु तुम्हें मेरे सिर की कसम, यह खबर कभी मेरी आंख की किरकिरी के पास मत भेजो कि तुम्हें इन दिनों तकलीफ हो रही है। अपनी शक्ति के अनुसार करती हूँ, क्या करें, गृहस्थी के सभी काम तो मुझे सम्हालना पड़ता है।"

इतनी बातें कहकर विनोदिनी ने पनबट्टे को महेन्द्र के सामने कुछ आगे बढ़ाकर रख दिया। इस पान में भी सुगन्धित कत्थे की नयी गन्ध मालूम हुई।

महेन्द्र ने कहा—"सेवा के बीच इस तरह की त्रुटियों का कभी-कभी रहना ही अच्छा है।"

विनोदिनी ने कहा—"कैसे अच्छा है, जरा सुनूँ तो।"

महेन्द्र ने उत्तर दिया, "बाद को ब्याज के साथ बकाया को वसूल की जा सकती है।"

"साहु जी, भला बताइये तो ब्याज कितना जमा हुआ।"

महेन्द्र ने कहा—"भोजन के समय तुम हाजिर नहीं थी, अब भोजन के बाद हाजिरी देनेपर भी कुछ बाकी रह जायगा।"

विनोदिनी ने हँसकर कहा, "तुम्हारा हिसाब बड़ा ही कड़ा है, तुम्हारे हाथ में एक बार पड़ जाने पर छुटकारा मिलने का कोई उपाय नहीं देखती।

महेन्द्र ने कहा—"हिसाब जैसा ही क्यों न हो, क्या मैं उसे वसूल कर सका।"

विनोदिनी ने कहा—"वसूल करने लायक कौनसी चीज मेरे पास है, फिर भी तुमने मुझे बन्दी बना रखा है।" इतना कह-कर इस दिल्लगी को एकाएक गम्भीरता में परिणत करके उसने लम्बी सांस खींच ली।

महेन्द्र ने भी कुछ गम्भीर होकर कहा—"किरकिरी तुम क्या इस स्थान को जेलखाना समझ रही हो?"

इसी समय कहार आया और तिपाई पर बत्ती रखकर चला गया।

अचानक आंखों में रोशनी लगने से मुँह के सामने हाथ से कुछ आड़ करके आंखें झुकाये हुए विनोदिनी ने कहा—"क्या जानें, तुमसे बातचीत में कौन जीतनेवाला है। अब जा रही हूँ, बहुत काम करना है।"

महेन्द्र ने हठात् उसका हाथ पकड़कर कहा, "जब तुमने बन्धन स्वीकार कर लिया तो अब जाओगी कहां?"

विनोदिनी ने कहा "छी छी, छोड़ दो। जिसके लिये भाग जाने का रास्ता नहीं है, उसे बांध रखने की चेष्टा ही क्यों की जाय।"

विनोदिनी जोर से हाथ छुड़ाकर वहां से चली गयी।

महेन्द्र उसी बिछौने पर सुगन्धित तकियेपर सिर रखे पड़ा रहा। उसकी छाती में खून तेजी से दौड़ने लगा। सन्नाटा सन्ध्या समय, सुनसान कमरा, नव वसन्त की हवा बह रही थी, ऐसा मालूम होने लगा मानो विनोदिनी अब पकड़ ली गयी, कब्जे में आ गयी, उन्मत्त सा विभोर महेन्द्र अपने को संयत न रख सका। उसे अपनी ऐसी ही असमर्थता मालूम हुई। झटपट बत्ती बुझाकर उसने कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया और सिकड़ी लगाकर किवाड़ बन्द कर दिये गये और सोने का समय

का चिह्न पाने के लिए व्यग्र हो उठा किन्तु विनोदिनी के मुँह की तरफ देखने पर रुककर खड़ा हो गया। विनोदिनी सीढ़ियों से नीचे उतरती हुई नीचे गयी और महेन्द्र भी धीरे-धीरे सीढ़ियों से ऊपर चढ़कर छत पर टहलने लगा। बिहारी के सामने आज हठात् महेन्द्र पकड़ा गया है, इससे उसके मन में एक तरह की मुक्ति का आनन्द उपस्थित हो गया। लुकाछिपाकर चोरी में काम करने में जो घृणा का भाव उत्पन्न होता है, वह भाव एक आदमी के सामने प्रकट हो जाने से मानो बहुत कुछ दूर हो गया। महेन्द्र ने अपने मन में कहा—"मैं अब अपने को अच्छा कहकर लोगों में सच्चरित्र कहलाना नहीं चाहता, किन्तु मैं उसे प्यार करता हूँ, प्यार करता हूँ, उसे चाहता हूँ, यह बात झूठी नहीं है। अपने प्रेम के गौरव से उसका गर्व इतना प्रबल हो उठा, कि वह अपने को बुरा समझकर उद्धत भाव से गर्व अनुभव करने लगा। निस्तब्ध सन्ध्याकाल में चुपचाप तारागणों से सुशोभित अनन्त जगत् के प्रति एक तरह की आज्ञा की दृष्टि डालकर उसने मन ही मन कहा—जो चाहे मुझे जितना ही बुरा क्यों न समझे, किन्तु मैं सचमुच ही प्यार करता हूँ।" इतनी बातें अपने मन में कहकर अपने मन में बसी हुई विनोदिनी की मानसी मूर्ति से समस्त संसार को, समूचे आकाशमण्डल को और समस्त कर्तव्य को महेन्द्र ने ढक दिया। बिहारी ने आज एकाएक आकर मानो महेन्द्र की बन्द दावात को उलटकर फोड़ डाला—विनोदिनी की काली आँखों और काले बालों की कालिमा ने देखते-देखते फैलकर पहले की सब सफेदी और लिखी हुई बातों को लीप पोतकर एकाकार में परिणत कर दिया।

———

२८

दूसरे दिन सवेरे नींद टूटते ही बिछौने से उठकर एक तरह के मधुर आवेग से महेन्द्र का हृदय परिपूर्ण हो गया। प्रातःकाल की सूर्यकिरणों के प्रकाश ने उसकी समस्त अभिलाषाओं और विचारों पर सोने की परत चढ़ा दी। पृथिवी कितनी सुन्दर है, आकाश कितना सुहावना है, हवा मानों फूलों के रेणु की तरह समस्त मन को उड़ाकर अपने साथ लिये जा रही है।

प्रातःकाल में वैष्णव भिक्षुक खँजड़ी बजा-बजाकर गा रहा था। दरवान उसे हटाने लगा तो महेन्द्र ने उसे रोककर झिड़की दी और वैष्णव साधु को एक रुपया दे दिया। कहार ने मिट्टी के तेल की डिबिया ले जाते समय असावधानी से गिराकर फोड़ डाला, और महेन्द्र के मुँह की तरफ भय से सूखकर ताकने लगा। महेन्द्र ने उसका कुछ भी तिरस्कार न करके प्रसन्नता के साथ उससे कहा—"अरे यहाँ से सब झाड़बुहार कर बाहर फेंक दे, किसी के पैर में शीशे के टुकड़े धँस न जाय।" आज उसका मन ऐसा हो गया है कि किसी तरह की भी हानि को अपनी हानि ही नहीं समझता।

इतने दिनों तक प्रेम नेपथ्य की आड़ में छिपकर बैठा हुआ था, आज सामने आकर उसने परदा उठा दिया है। समूचे संसार से परदा हट गया है। प्रति दिन की पृथ्वी की तुच्छता आज अन्तर्हित हो गयी। पेड़ रूख, पशु, पक्षी, रास्ते में चलने वाली जनता, नगर का कोलाहल सभी आज विचित्र रूप में बदल गये हैं। यह विश्वव्यापी नवीनता इतने दिनोंतक कहाँ थी?

महेन्द्र को मालूम होने लगा कि विनोदिनी के साथ जो मिलन आज होगा वह और दिनों के मिलन से कुछ भिन्न हो

ही प्रकारका होगा। आज मानो बातचीत कवितामें लिखने योग्य होगी और भाव व्यक्त करने के लिए सङ्गीत ही उपयुक्त होगा। आज के दिन को ऐश्वर्य और सौन्दर्य से परिपूर्ण करके महेन्द्र मानो उसे आरब्ध उपन्यास से अद्भुत दिन की भाँति बना डालना चाहता है। वह सच होगा तथापि स्वप्न ही होगा उसमें जगत् का कोई विधि-विधान, कोई दायित्व और कोई वास्तविकता न रहेगी।

आज सवेरे से ही महेन्द्र चञ्चल होकर इधर-उधर टहलने लगा। कालेज न जा सका, क्योंकि मिलन की लग्न अकस्मात् कब आ जायगी यह बात तो किसी भी पञ्चांग में नहीं लिखी हुई है।

गृहकार्य में लगी हुई विनोदिनी का कण्ठस्वर बीच-बीच में भण्डारघर से और रसोईघर से महेन्द्र के कानों में सुनाई पड़ने लगा। किन्तु महेन्द्र को वह आज अच्छा नहीं लग रहा था—आज उसने अपने मन में विनोदिनी को संसार से बहुत दूर हटाकर बसाया है।

समय किसी तरह बीतना नहीं चाहता। महेन्द्र ने स्नान कर लिया और भोजन भी कर लिया। घर का सब काम समाप्त हो जाने से दोपहर को एकदम सन्नाटा छा गया। किन्तु तबतक भी विनोदिनी दिखाई नहीं पड़ी। दुःख और सुख, अधैर्य और आशा से महेन्द्र के मनरूपी यन्त्र के सभी तार झंकृत हो उठे।

कल की छीना झपटीवाला 'विषवृक्ष' नीचे के बिस्तर पर पड़ा हुआ है। उस पर नजर पड़ते ही उस छीनाझपटी की याद आ जाने से महेन्द्र के मन में आनन्द का आवेश जाग उठा। विनोदिनी जिस तकिये को दबाकर बैठी थी उसे खींचकर महेन्द्र ने उस पर अपना सिर रखा और 'विषवृक्ष' को उठाकर उसके

पन्ने उलटने लगा। धीरे-धीरे पढ़ने में कब मन लग गया, कब पाँच बज गये—इसका कुछ भी पता महेन्द्र को नहीं रहा।

ऐसे ही समय में एक मुरादाबादी थाली में फल और मिठाई लिये और रिकाबी में बर्फ और चीनी मिलाया हुआ सुगन्धयुक्त खरबूजा लिये विनोदिनीके कमरे में आ पहुँची और महेन्द्र के सामने उन्हें रखकर कहा, "क्या कह रहे हो महेन्द्र बाबू, तुम्हें क्या हो गया है? पाँच बज गये हैं, अब तक हाथ मुँह नहीं धोया और कपड़े भी नहीं बदले?"

महेन्द्र के मन में यह सुनकर एक तरह की चोट लगी। उसे क्या हो गया है, यह क्या कोई पूछने की बात है? क्या यह बात विनोदिनी को छिपी रहनी चाहिये? क्या आज का दिन दूसरे दिनों के ही बराबर है? इस आशंका से कि उसके मन में जो आशा लगी हुई है, कहीं उस पर पानी न फिर जाय, महेन्द्र कल की बातों को याद दिला कर कुछ माँग पेश न कर सका।

महेन्द्र भोजन करने के लिए बैठा। विनोदिनी धूप में सूखने के लिए रखे हुए महेन्द्र के कपड़ों को छत से नीचे उतार कर कमरे में अपने निपुण हाथों से तहों में सजाकर आलमारी में रखने लगी।

महेन्द्र ने कहा, "जरा बैठ जाओ मैं खाना खाकर उठते ही तुम्हारी सहायता करता हूँ।"

विनोदिनी ने हाथ जोड़कर कहा,—"तुम्हारी दोहाई, और जो चाहे करो, सहायता मत करो।"

महेन्द्र ने भोजन करने के बाद उठकर कहा, "ठीक है, तुम मुझे निकम्मा समझ रही हो, अच्छा आज मेरी परीक्षा ही की जाय।" यह कह कर कपड़े तहाने की व्यर्थ चेष्टा करने लगा।

विनोदिनी ने महेन्द्र के हाथ से कपड़े छीनकर कहा, 'अजी

महाशय, आप रहने दीजिये, मेरा काम मत बढ़ाइये।'

महेन्द्र ने कहा—"अच्छा तुम काम करो, मैं देखकर सीखूँ।" यह कहकर आलमारी के सामने विनोदिनी के पास ही जमीन पर बैठ गया। विनोदिनी कपड़े झाड़ने के बहाने महेन्द्र की पीठ के ऊपर कपड़े रख कर उन्हें तहों में सजा कर आलमारी में रखने लगी।

आज का मिलन इसी तरह आरम्भ हुआ। महेन्द्र सवेरे से ही जिस तरह की अपूर्व कल्पना करता आ रहा था, उस अपूर्वता का कोई भी लक्षण न दिखाई पड़ा। इस प्रकार का मिलन काव्य में लिखने, संगीत में गाने अथवा उपन्यास में लिखने की चीज नहीं है, किन्तु तो भी महेन्द्र दुःखित नहीं हुआ, वरन् उसे कुछ आराम ही मिला। अपने काल्पनिक आदर्श को वह कैसे पूरा करेगा, कैसे उसका आयोजन होगा; क्या क्या भाव व्यक्त करने पड़ेंगे, सब तरह की साधारणता को किस तरह दूर करना होगा—इन सब बातों को वह ठीक तौर से समझ नहीं पाता था। इस कपड़े झाड़ने और तहाकर रखने में हँसी दिल्लगी कर के वह मानों स्वरचित एक असम्भव और दुरूह आदर्श के हाथ से छुटकारा पा गया।

ऐसे ही समय में राजलक्ष्मी कमरे में आ गयीं। उन्होंने कहा—"महीन, बहू तो कपड़े रख रही है और तू यहाँ बैठकर क्या कर रहा है?" विनोदिनी ने कहा—"देखो तो बूआजी, झूठमूठ केवल मेरे काम में और अड़ङ्गा डालकर देर कर रहे हैं।"

महेन्द्र ने कहा—"वाह! मैं तो उसके काम में और मदद पहुँचा रहा था।"

राजलक्ष्मी ने कहा—"मेरा भाग्य ही ऐसा है। तू क्या

सहायता करेगा। जानती हो बहू, महीन को सदा से ऐसी ही आदत है। बराबर से माँ-चाची का आदर पाकर यह कोई काम भी अपने हाथ से नहीं कर सकता।"

यह कहकर माता ने परम स्नेहपूर्वक, काम करने में असमर्थ महेन्द्र की तरफ देखा। किस तरह निकम्मे माता का अत्यन्त स्नेह पाने की अपेक्षा रखनेवाले इस सयाने लड़के को हर तरह आराम में रख सकेंगी, इसी विषय को लेकर वे विनोदिनी के साथ बराबर परामर्श किया करती थीं। पुत्र की सेवा का काम विनोदिनी पर सौंपकर वे एकदम निश्चित और परम सुखी हो गयीं। अब महेन्द्र विनोदिनी की मर्यादा समझने लगा है और विनोदिनी को यहीं रहने देने के लिए तत्पर हो उठा है, इससे भी राजलक्ष्मी आनन्दित हैं। महेन्द्र को सुना-सुनाकर उन्होंने कहा, "बहू, आज तो तुमने महेन्द्र के कपड़े धूप में सुखा डाले, कल उसके नये रुमालों में उसके नाम के अक्षर कसीदे में काढ़ देने होंगे। तुमको यहाँ लाकर कुछ सुख तो नहीं दे सकी, कुछ आदर यत्न भी न कर सकी बेटी, केवल काम कराकर कष्ट ही दे रही हूँ।"

विनोदिनी ने कहा, "बूआ, यदि ऐसी बात कहोगी तो मैं समझूँगी कि तुम मुझे पराये घर की समझ रही हो।"

राजलक्ष्मी ने आदर करके कहा, "अहा बेटी, तुम्हारे समान अपनी मुझे और कहाँ मिल सकती है।"

विनोदिनी का कपड़ा रखना जब खतम हो गया तो राजलक्ष्मी ने कहा—"क्या अब वह चीनी का रस चूल्हे पर चढ़ा दूँ, या तुम्हें अभी कुछ और काम करना बाकी है?"

विनोदिनी ने कहा—"नहीं बूआ और कोई काम नहीं है। चलो मिठाई तैयार कर डाली जाय।"

महेन्द्र ने कहा—"माँ, अभी तुम पछता रही थी कि विनोदिनी को काम कराकर कष्ट दिया जा रहा है और फिर काम करने के लिए उसे घसीट ले चली ?"

राजलक्ष्मीने विनोदिनी की ठोड़ी छूकर कहा,"हमारी लक्ष्मी-सी गुणवती लड़की काम में लगे रहना ही पसन्द करती है ।"

महेन्द्र ने कहा—"आज शाम को मुझे कोई काम नहीं करना है, इसीलिये मैंने सोचा था कि एक किताब पढ़कर किरकिरी को सुनाऊँगा ।"

विनोदिनी ने कहा—"बूआ, अच्छा तो है, आज शाम को हम दोनों पुस्तक सुनने आ जायँ तो अच्छा हो ।"

राजलक्ष्मी ने सोचा, "महेन्द्र आजकल बिलकुल अकेला पड़ गया है, सबको एक साथ मिलजुल कर उसकी तबीयत बहलाते रहने की जरूरत है ।" कहा—"अच्छी बात तो है, महीन के लिए मिठाई तैयार करके हम दोनों यहाँ किताब पढ़ना सुनने आ जायँगी । तुम्हारी क्या सम्मति है, महीन ?"

विनोदिनी ने महेन्द्र के मुँह की तरफ एक कटाक्ष फेंककर देख लिया ।

महेन्द्र ने कहा—'अच्छा ।' किन्तु उसके मन में उत्साह नहीं रह गया । विनोदिनी राजलक्ष्मी के साथ-साथ ही चली गई ।

महेन्द्र ने रंज होकर अपने मन में सोचा, "मैं भी आज शाम को घर से बाहर निकल जाऊँगा और देर करके घर लौटूँगा ।" यह कहकर तुरत ही वह बाहर जाने के लिये कपड़े पहनने लगा । किन्तु उस इच्छा की पूर्ति न हो सकी । बहुत देर तक महेन्द्र छत पर टहलता रहा, सीढ़ियों की तरफ अनेक बार देखा, अन्त में कमरे में आकर बैठ गया । रंज होकर मन में कहा—"आज मैं मिठाई को न छूकर माँ को बता दूँगा कि

इतनी देर तक चीनी का रस पकाने से उसमें मिठास नहीं रह जाती।"

आज भोजन के समय विनोदिनी राजलक्ष्मी को अपने साथ लेती आयी। सांस फूलने के भय से राजलक्ष्मी अकसर ऊपर चढ़ना नहीं चाहती थीं। आज विनोदिनी उनसे अनुरोध करके ही अपने साथ लायी है। महेन्द्र बहुत ही गम्भीर मुँह बनाकर भोजन करने लगा।

विनोदिनी ने कहा—'यह क्या महेन्द्र बाबू, आज तो तुम कुछ भी खा नहीं रहे हो, क्या हो गया है ?"

राजलक्ष्मी ने घबराकर पूछा—"तबीयत खराब तो नहीं है ?"

विनोदिनी ने कहा—"इतनी लगन से मैंने मिठाई तैयार की, कुछ तो खाना ही पड़ेगा, शायद अच्छी नहीं बनी है ? अच्छा तो रहने दो। ना, ना, अनुरोध में पड़कर जबर्दस्ती खाना ठीक नहीं है। जरूरत नहीं है।"

महेन्द्र ने कहा—"बहुत ही अड़चन में डाल दिया। मिठाई खाना ही मैं सबसे अधिक पसन्द करता हूँ, अच्छी भी लग रही है, तुम बाधा डालोगी तो मैं कैसे सुनूँगा।

महेन्द्र दो मिठाइयों को बिलकुल खा गया, एक टुकड़ा भी नहीं बचा, सब खतम हो गया।

भोजन के बाद तीनों ही महेन्द्र के सोने के कमरे में आ बैठे। पुस्तक पढ़ने का प्रस्ताव महेन्द्र ने फिर नहीं उठाया राजलक्ष्मी ने कहा—"कौनसी पुस्तक पढ़कर सुनाने के लिए कहा था, शुरू कर दो न।"

महेन्द्र ने कहा—"किन्तु इस पुस्तक में देवी-देवताओं की कोई बात नहीं लिखी है, सुनने में तुम लोगों का मन न लगेगा।"

सुनने में मन न लगेगा ! जैसे ही क्यों न हो, मन लगाने

का राजलक्ष्मी ने दृढ़ निश्चय कर लिया है। महेन्द्र यदि तुर्की भाषा की भी किताब पढ़े तो वह उनको अच्छी लगेगी। अहा बेचारा महेन्द्र! वहू काशी चली गयी है, अकेला पड़ा हुआ है, उसे जो अच्छा लगेगा, माँ को यह अच्छा न लगे तो काम कैसे चलेगा।

विनोदिनी ने कहा—"एक काम करो न महेन्द्रबाबू, बूआजी के कमरे में शान्तिशतक है, दूसरी पुस्तक छोड़कर आज उसी को पढ़कर सुनाओ। बूआजी को भी अच्छा लगेगा और शाम का समय भी अच्छी तरह कटेगा।"

महेन्द्र ने बहुत ही करुणाभाव से एक बार विनोदिनी के मुँह की तरफ देखा, इसी समय दासी ने आकर खबर दी, 'मांजी' ठकुराइन "आकर तुम्हारे कमरे में बैठी हुई हैं।"

ठकुराइन और राजलक्ष्मी में बड़ी मित्रता है। सन्ध्या के बाद उनसे बातचीत करने का लोभ रोक रखना राजलक्ष्मी के लिए बहुत ही कठिन है। फिर भी उन्होंने दासी से कहा—"जा, उनसे कह दे कि आज महीन के पास रहने की जरूरत है, एक काम है, कल वे अवश्य ही आ जायँ।"

महेन्द्र झटपट बोल उठा—"क्यों माँ, तुम उनसे भेंट कर आओ न।"

विनोदिनी ने कहा—"क्या जरूरत है बूआजी, तुम य[illegible] रहो, मैं ही उनके पास जाकर बैठ[illegible]

राजलक्ष्मी लोभ रोक न स[illegible] कहा—"वहू, तबतक यहाँ बैठो, देखूँ मैं दो [illegible] करके ठकुरा[illegible] बिदा कर आऊँ। तुम लोग [illegible] र दो, मेरी [illegible] मत करना।"

राजलक्ष्मी के कमरे से [illegible] के साथ ही [illegible]

स्थिर न रह सका—बोल उठा "किस लिए तुम जानबूझ कर इच्छा पूर्वक मुझे इस तरह कष्ट दे रही हो ?"

विनोदिनी ने मानो आश्चर्य में पड़कर कहा—वाह जी, यह कैसी बात कह रहे हो ? मैं तुम्हें कैसी कष्ट दे रही हूँ ? क्या तुम्हारे कमरे में आकर मैंने कोई अपराध किया है ? जरूरत नहीं है, मैं जा रही हूँ।" यह कहकर वह उदास मुँह किये उठ कर जाने के लिए तैयार हो गयी।

महेन्द्र ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "इसी तरह तो तुम मुझे जलाती रहती हो।"

विनोदिनी ने कहा—"वाह, मुझमें इतना तेज है, यह बात तो मुझे मालूम नहीं थी। तुम्हारा प्राण भी तो कम कठिन नहीं है, बहुत सह सकते हो। तुम झुलसकर जल गये हो, चेहरा देखकर तो समझने का कोई उपाय नहीं।"

महेन्द्र ने कहा—"चेहरा देखकर क्या समझोगी ?" यह कहकर उसने बलपूर्वक विनोदिनी का हाथ पकड़कर अपनी छाती पर दबा लिया।

विनोदिनी 'उः' कहकर चीख उठी और उसके चीखने के साथ ही महेन्द्र ने झटपट उसका हाथ छोड़कर कहा, "क्या घाव पर लग गया ?"

उसने देखा कि कल विनोदिनी के हाथ में जो चोट लगी थी, उससे ही फिर खून बहने लगा है। महेन्द्र ने पछताकर कहा, "मुझे इसका ख्याल ही नहीं था, मैंने भारी अपराध किया किन्तु आज इसी समय इसपर पट्टी बाँधकर दवा लगा देता हूँ। बिना दवा लगाये कदापि न मानूँगा।"

विनोदिनी ने कहा—"नहीं, कोई हर्ज नहीं है, दवा लगाना मैं नहीं चाहती।"

महेन्द्र ने कहा—"क्यों दवा न लगाने दोगी ?"

विनोदिनी ने कहा—"क्यों का क्या जवाब दूँ। तुम्हारी डाक्टरी की कोई जरूरत नहीं है, यह जैसा है, वैसा ही रहेगा।"

महेन्द्र क्षणभर में गम्भीर हो उठा। अपने मन में कहा—कुछ भी समझने का उपाय नहीं है। स्त्रियों का चरित्र कौन समझ सकता है।"

विनोदिनी उठकर जाने लगी। अभिमानी महेन्द्र ने उसे बाधा न देकर कहा, "कहां जा रही हो ?"

विनोदिनी ने कहा, "काम है।" यह कहकर वह धीरे-धीरे चली गयी।

दो एक मिनट बैठकर महेन्द्र विनोदिनी को लौटा लाने के लिए तेजी से उठ खड़ा हुआ, किन्तु सीढ़ियों के निकट तक जाकर ही लौट आया और अकेले ही छत पर टहलने लगा।

विनोदिनी बराबर अपनी तरफ आकर्षित करती रहती है, पर पास तक आने भी नहीं देती। महेन्द्र को इस बात का गर्व रहा करता था कि दूसरा कोई उसे जीत नहीं सकता। अब अपने गर्व को महेन्द्र ने छोड़ दिया है—अब क्या इतना भी गर्व वह न रख सकेगा कि चेष्टा करने पर दूसरे के मन पर विजय पा सके। आज उसने अपनी हार मान ली, किन्तु हार मना न सका। अपने हृदयक्षेत्र के सम्बन्ध में महेन्द्र का मस्तिष्क बहुत ऊँचा खयाल रखता था, वह किसी को भी अपनी बराबरी में मानने को तैयार नहीं था लेकिन आज उसी स्थान पर धूलि में लोट जाना पड़ा। जिस श्रेष्ठता को उसने खो दिया उसके बदले में उसे कुछ भी नहीं मिला। भिखमंगे की तरह बन्द दरवाजे के सामने सन्ध्या के समय खाली हाथ खड़ा रहने की सी उसकी दशा हो गयी।

हर साल फागुन-चैत के महीने में बिहारी की जमींदारी के इलाके से उत्तम शहद आया करता था और वह हर साल राज-लक्ष्मी के पास भी भेज देता था—इस साल भी उसने शहद भेज दिया।

विनोदिनी शहद का बर्तन लेकर खुद राजलक्ष्मी के पास गयी और बोली–"बूआजी, बिहारी के यहाँ से शहद आया है।"

राजलक्ष्मी ने उसे भण्डारघर में रखने के लिए कहा। विनोदिनी शहद रख आने के बाद राजलक्ष्मी के पास आकर बैठ गयी। उसने बिहारी की चर्चा छेड़कर कहा, "बिहारी बाबू कभी तुम्हारी समाचार मालूम करने में नहीं चूकते बेचारे की अपनी माँ तो नहीं हैं,इसलिए तुमको ही अपनी माँ समझते हैं।"

राजलक्ष्मी बिहारी को महेन्द्र की परछाहीं की ही तरह इतने अधिक परिमाण में मानती थीं कि उसके बारे में विशेष रूप से कुछ भी नहीं सोचती थीं—वह तो उनके घर का बिना मूल्य और बिना यत्न का और बिना चिन्ता का अनुगत आदमी था। किन्तु जब विनोदिनी ने राजलक्ष्मी को मातृहीन बिहारी की माँ कह दिया, तब उनका मातृहृदय अचानक स्नेह से पिघल उठा। ऐसा विचार उनके मन में आया कि ठीक है, बिहारी की माँ नहीं है और वह मुझे ही अपनी माँ की तरह मानता है।' उन्हें याद पड़ने पर बिना बुलाये आकर श्रद्धा के साथ सेवा की है। उन सेवाओं को उन्होंने सहज भाव से ग्रहण किया है और उसके लिये कृतज्ञ होने का विचार कभी उनके मनमें नहीं आया। किन्तु बिहारी की खबर किसने ली है? जब अन्नपूर्णा थीं तो जरूर ही वे उनकी खबर लेती थीं, पर राजलक्ष्मी समझती थीं कि बिहारी को अपने वश में रखने के लिए अन्नपूर्णा स्नेह का आडम्बर कर रही हैं।"

राजलक्ष्मी ने एक साँस लेकर कहा—"जरूर ही विहारी मेरे लड़के के बराबर है।"

इसी समय उनके मनमें यह खयाल आया कि विहारी अपने खास लड़के से भी मेरी अधिक सेवा करता है और अपनी सेवा का कभी कुछ बदला न पाकर भी उसने अपना भक्तिभाव अक्षुण्ण रखा है। यह सोचकर उनके हृदय के अन्दर से लम्बी साँस निकल पड़ी।

विनोदिनी ने कहा—"विहारी बाबू तुम्हारे हाथ की बनी रसोई खाना बहुत ही पसन्द करते हैं।"

राजलक्ष्मी ने स्नेह के गर्व से फूलकर कहा, "और किसी के हाथ की बनी तरकारी उसे बिलकुल ही नहीं रुचती।"

यह कहते-कहते उन्हें यह बात याद पड़ गयी कि बहुत दिनों से बिहारी नहीं आया। उन्होंने विनोदिनी से पूछा, "अच्छा बहू बिहारी आज कल क्यों दिखाई नहीं पड़ता ?"

विनोदिनी ने कहा—'मैं भी तो यही सोच रही थी बूआ ! बात यह है कि जब से ब्याह हुआ है तब से तुम्हारा लड़का अपनी बहू को लेकर विभोर रहा करता है कि मित्र और परिचित व्यक्ति आकर क्या करेंगे।"

यह बात राजलक्ष्मी को उचित मालूम हुई। अपनी स्त्री को लेकर महेन्द्र ने अपने सभी हितैषियों को दूर हटा दिया है। बिहारी को तो इस हालत में जरूर गुमान पैदा होगा और—वह क्यों आवेगा ? बिहारी को अपने ही दल में पाकर उनके प्रति राजलक्ष्मी की सहानुभूति बढ़ चली। वे विनोदिनी से कहने लगीं कि बचपन से ही बिहारी ने एकदम निःस्वार्थ भाव से महेन्द्र का कितना उपकार किया है, उसके लिए बिहारी ने कितनी बार कितना कष्ट सहन किया है। इस तरह बिहारी की चर्चा में वे अपने

लड़के के प्रति की जाने वाली अपनी शिकायतों का समर्थन करने लगीं। दो दिनों से बहू को पाकर यदि महेन्द्र अपने चिरकाल के मित्र का इस तरह अनादर करता रहेगा तो संसार में न्याय और धर्म की रक्षा कैसे हो सकेगी ?

विनोदिनी ने कहा—"कल रविवार है, तुम बिहारीबाबू को न्यौता देकर भोजन कराओ, वे खुश हो जायँगे।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "ठीक कहती हो बहू, अच्छा तो महेन्द्र को बुलाती हूँ, वह बिहारी के पास निमन्त्रण भेज देगा।"

विनोदिनी—"नहीं बूआ, तुम स्वयं निमन्त्रण भेज दो।"

राजलक्ष्मी—"मैं क्या तुम लोगों की तरह लिखना-पढ़ना जानती हूँ।'

विनोदिनी—"इससे कोई हर्ज नहीं, तुम्हारी तरफ से मैं ही न्यौता लिख देती हूँ।"

विनोदिनी ने राजलक्ष्मी के नाम से स्वयं ही न्यौते का पत्र लिखकर भेज दिया।

रविवार का दिन महेन्द्र के लिए बहुत ही आग्रह का दिन होता है। पहली की रात अर्थात् शनिवार की रात से ही उसकी कल्पना प्रबल होने लगती है यद्यपि आज तक उसकी कल्पना के अनुकूल किसी काम में भी सिद्धि नहीं हुई—तथापि रविवार के प्रातःकाल प्रकाश उसकी आँखों में मधु बरसाने लगा। जाग्रत प्रवेश करने लगा।

किन्तु आज यह क्या मामला है ? माँ आज किसी व्रत का पालन करेंगी क्या ? दूसरे दिनों की तरह वे तो आज विनोदिनी को घर का काम सौंपकर विश्राम नहीं कर रही हैं। आज तो स्वयं व्यस्त होकर इधर-उधर घूम रही हैं !

इस तरह कामकाज की खलबली में दस बज गये। किन्तु

इतने समय के बीच किसी बहाने भी महेन्द्र विनोदिनी से क्षण-भर के लिए भी एकान्त में न मिल सका। वह ऊबकर पुस्तक पढ़ने की चेष्टा करने लगा। किन्तु पढ़ने में किसी प्रकार भी मन नहीं लगा। फिर अखबार में छपे एक अनावश्यक विज्ञापन को पन्द्रह मिनट तक देखता रह गया। वह इस हालत में स्थिर न रह सका। तुरंत नीचे जाकर देखा कि माँ बरामदे में एक चूल्हा रखकर रसोई पका रही हैं और विनोदिनी कमर में आँचल कसकर सामान जुटाने में व्यस्त है।

महेन्द्र ने पूछा—"आज तुम लोगों का क्या मामला है। इतनी धूमधाम किस लिए ?"

राजलक्ष्मी ने कहा—"क्या बहू ने तुमसे कुछ नहीं बताया। आज मैंने बिहारी को न्यौता दिया है।"

बिहारी को न्यौता! महेन्द्र के समूचे शरीर में आग लग गयी। उसी क्षण उसने कहा—"किन्तु माँ, मैं तो रह न सकूँगा।"

राजलक्ष्मी—क्यों ?

महेन्द्र—मुझे बाहर जाना है।

राजलक्ष्मी—खा-पीकर जाना, अधिक देर न लगेगी।

महेन्द्र—मुझे बाहर से निमन्त्रण मिला है।

विनोदिनी ने क्षणभर के लिए महेन्द्र के मुँह पर कटाक्ष फेंककर कहा, "यदि न्यौता है तो उनको जाने न दो बूआजी, आज बिहारीबाबू अकेले ही भोजन कर लेंगे तो क्या हर्ज है ?"

किन्तु अपने हाथ की बड़े यत्न से बनायी हुई रसोई महेन्द्र को न खिला सकना राजलक्ष्मी के लिए किस तरह सहनीय हो सकता है। वे महेन्द्र से भोजन करने का जितना ही अनुरोध करने लगीं महेन्द्र की जिद उतनी ही बढ़ने लगी। उसने कहा—जरूरी न्यौता है, वहाँ गये बिना काम न बनेगा—बिहारी को

न्यौता देने के पहले मुझसे परामर्श कर लेना चाहिये था।"

नाराज होकर महेन्द्र ने इस तरह माँ को दण्ड देने का उपाय स्थिर किया। राजलक्ष्मी का सारा उत्साह उड़ गया। उनकी इच्छा हुई कि सब बनायी हुई रसोई ज्यों की त्यों छोड़कर कहीं चली जायँ। विनोदिनी ने कहा, "बुआ, तुम कुछ भी चिन्ता मत करो, महेन्द्रबाबू केवल दिखावटी तौर पर उछल-कूद मचा रहे हैं, किन्तु आज उनका बाहर न्यौता खाने के लिए जाना न हो सकेगा।"

राजलक्ष्मी ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं बेटी, तुम उसे नहीं पहिचानती, वह एक बार जिस बात की जिद पकड़ लेता है, किये बिना नहीं मानता।"

किन्तु विनोदिनी महेन्द्र को राजलक्ष्मी की अपेक्षा कम नहीं जानती, अन्त में यही बात प्रमाणित हुई। महेन्द्र समझ गया था कि विनोदिनी ने ही बिहारी को न्यौता देकर बुलाया है। इससे उसका मन ईर्षा से जितना ही पीड़ित होने लगा, उतना ही उसके लिए बाहर जाना कठिन होने लगा। बिहारी क्या करता है यह देखे बिना उससे कैसे जीवित रहा जायगा? देखकर जलना होगा, किन्तु देखना भी चाहिये।

बिहारी ने आज बहुत दिनों के बाद निमंत्रित आत्मीय की भाँति महेन्द्र के मकान के अन्दर प्रवेश किया। लड़कपन से ही जो घर उससे परिचित है और जहाँ घर के ही लड़के की तरह वह बेरोक-टोक ऊधम मचाया करता था, उसी घर के सदर दरवाजे के पास पहुंचकर वह जरा ठिठककर खड़ा हो गया, आँसू का लहरें पलकों के बीच भर उठने के लिए उसकी छाती पर धड़कन पैदा करने लगीं। किन्तु उस धड़कन को किसी तरह सम्हालकर वह मुसकुराते हुए घर के अन्दर पहुँचा

और तुरत स्नान कर बैठी हुई राजलक्ष्मी के पैरों की धूलि लेकर सिर पर चढ़ा ली।

जब बिहारी बराबर आया करता था, तब इस तरह पद-धूलि लेकर प्रणाम करने की प्रथा का पालन नहीं करता था। आज मानों वह दूर विदेश से फिर लौट कर घर आया है, इस भाव से उसने इस तरह प्रणाम किया। बिहारी प्रणाम कर के उठने लगा तो राजलक्ष्मी ने स्नेह के साथ उसके सिर पर हाथ रखा।

राजलक्ष्मी ने आज गूढ़ साहानुभुति के कारण बिहारी के प्रति पहले की अपेक्षा अधिक आधर और स्नेह प्रकट किया। कहा—"ऐ बिहारी, तू इतने दिनों तक यहां क्यों नहीं आया? मैं रोज सोचती थी कि आज बिहारी आवेगा, किंतु तू दिखाई नहीं पड़ता था।"

बिहारी ने हँसकर कहा—"यदि मैं रोज आता तो माँ, मां तुम अपने बिहारी को रोज कैसे याद करती। महीन भैया कहां है?"

राजलक्ष्मी ने उदास होकर कहा—"महेन्द्र को आज कहीं से न्यौता मिला है, वहां जाना बहुत जरूरी था, किसी तरह भी यहां उपस्थित न रह सका।"

यह सुनते ही बिहारी का मन बहुत ही दुःखी हो उठा। बचपन की मित्रता का अन्त में क्या यही परिणाम है? एक लम्बी सांस लेकर अपने मन से समस्त विषाद-वाष्प को तत्काल के लिए उड़ा देने की चेष्टा करके बिहारी ने पूछा,—आज क्या क्या चीजें रसोई में तैयार हो रही हैं?' इतना कह कर वह एक एक करके अपनी रुचिकर चीजों के नाम गिनाने लगा। जिस दिन राजलक्ष्मी रसोई बनाती थीं उस दिन बिहारी अत्यधिक

आडम्बर करके उनकी बनायी चीजों पर अपनी रुचि प्रकट किया करता था और इस प्रकार अपनी लोलुपता दिखाकर राजलक्ष्मी से माता का स्नेह छीन लिया करता था। आज भी अपने हाथ की बनी रसोई पर बिहारी का अधिक आकर्षण देख राजलक्ष्मी ने अपने लोभातुर अतिथि को आश्वासन दिया।

ऐसे ही समय में महेन्द्र ने आकर रूखे स्वर में पूछा,—"क्या बिहारी, कैसे हो ?"

राजलक्ष्मी ने कहा "क्यों महीन, तू न्यौते पर नहीं गया ?"

महेन्द्र ने लज्जा छिपाने की चेष्टा करके कहा—"नहीं, उसे किसी तरह टाल दिया।"

स्नान करके जब विनोदिनी वहाँ आयी तो शुरू शुरू में बिहारी कुछ भी न बोल सका।

महेन्द्र और विनोदिनी का जो दृश्य उसने देखा था, वह उसके मन में अंकित था।

विनोदिनी ने बिहारी के पास आकर मीठे स्वर में कहा—"क्यों बिहारी बाबू, क्या बिलकुल ही आपने नहीं पहचाना ?"

बिहारी ने कहा—"क्या सभी पहचाने जा सकते हैं ?"

विनोदिनी ने कहा—"कुछ समझ रहने से ही पहचाने जा सकते हैं।" इतना कहकर उसने राजलक्ष्मी से कहा—"बूआजी भोजन तैयार है।"

महेन्द्र और बिहारी भोजन करने बैठे। राजलक्ष्मी पास ही बैठकर देखने लगी और विनोदिनी परोसने लगी।

महेन्द्र का मन भोजन करने में नहीं था। वह केवल परोसने के पक्षपात पर ही ध्यान दे रहा था। महेन्द्र को ऐसा मालूम होने लगा मानो बिहारी को भोजन परोसकर विनोदिनी एक तरह का विशेष सुख पा रही है। बिहारी के थाली में ही

और कभी नीचे छटपटाता हुआ आने-जाने लगा।

२६

आशा ने एक दिन अन्नपूर्णा से पूछा, "अच्छा मौसी, क्या मौसाजी की कभी तुम्हें याद आती है?"

अन्नपूर्णा ने कहा—"मैं ग्यारह वर्ष की उम्र में विधवा हुई थी, स्वामी की मूर्ति छाया की तरह याद पड़ती है।"

आशा ने पूछा, "मौसी, तब तुम किस की बात सोचती रहती हो?"

अन्नपूर्णा ने कुछ हँसकर कहा, "मेरे स्वामी इस समय जिसके बीच विराजमान हैं, उस भगवान की ही बात सोचती रहती हूँ।"

आशा ने कहा—"इससे क्या तुमको सुख मिलता है?"

अन्नपूर्णा ने स्नेहपूर्वक आशा के सिर पर हाथ फेरकर कहा—मेरे मन की वह बात तू क्या समझ सकेगी बेटी, उसे मेरा मन जानता है, और जिनकी बातें सोचती रहती हूँ, वे ही जानते हैं।"

आशा मन ही मन सोचने लगी, "मैं जिनके बारे में दिन रात सोचती रहती हूँ क्या वे मेरे मन की बात नहीं जानते? मैं अच्छी तरह चिट्ठी नहीं लिख सकती, इससे उन्होंने क्या मुझे चिट्ठी लिखना छोड़ दिया है?"

इधर कई दिनों में आशा को महेन्द्र की चिट्ठी नहीं मिली। एक साँस लेकर उसने अपने मन में कहा—"मेरी आँख की किरकिरी यदि मेरे पास रहती, तो वह मेरे मन की बात अच्छी

तरह लिख देती।”

बिखरी हुई बिगड़ी लिखावट के अक्षरों में तुच्छ पत्र भेजने से पति का आदर नहीं मिलेगा इस विचार से चिट्ठी लिखने के लिए आशा का हाथ नहीं उठता था। जितनी ही कोशिश करके लिखना चाहती, उसके हाथ उतने ही खराब होने लग जाते। जितना ही वह अपने मन की बातों को समेट लेना चाहती, उतनी ही विशृङ्खलता बढ़ जाने से उनकी पूर्ति नहीं हो पाती थी।

यदि केवल “श्रीचरणेषु” लिखकर दस्तखत कर देने से अन्तर्यामी देवता की तरह महेन्द्र सभी बातें समझ सकता तो आशा का चिट्ठी लिखना सार्थक हो जाता। विधाता ने उसे इतना प्रेम दिया था, उसे व्यक्त करने के लिए थोड़ी सी भाषा क्यों नहीं?

मन्दिर में संध्या की आरती हो जाने के बाद घर लौटकर अन्नपूर्णा के पैरों के पास बैठ आशा धीरे-धीरे उनके पैरों को दबाने लगी। बहुत देर तक चुप रहने के बाद उसने कहा—“मौसी, तुम कहती हो कि देवता की तरह पति की सेवा करना स्त्री का धर्म है, किन्तु जो स्त्री मूर्ख है, जिसकी बुद्धि नहीं है, जो यह नहीं जानती कि पति की सेवा कैसे की जाती है, वह क्या करेगी?”

अन्नपूर्णा कुछ देर तक आशा के मुँह की तरफ देखती रही, फिर उन्होंने लम्बी साँस लेकर कहा, “बेटी, मैं भी तो मूर्ख हूँ, तब भी भगवान् की सेवा करती हूँ।”

आशा ने कहा, “वे तुम्हारे मन की बात जानते हैं, इसलिए प्रसन्न होते हैं, किन्तु मान लो, यदि पति मूर्ख स्त्री की सेवा से प्रसन्न न हों।”

अन्नपूर्णा ने कहा—"सबको प्रसन्न करने की शक्ति सब में नहीं रहती बेटी। यदि स्त्री आन्तरिक श्रद्धा भक्ति और यत्न के साथ पति-सेवा और गृहस्थी के कामकाज में लगी रहे तो पति यदि उसे तुच्छ समझकर ठुकरा भी देगा तो स्वयं जगदीश्वर ग्रहण करेंगे।"

आशा निरुत्तर होकर चुप रह गयी। मौसी की इस बात से उसने सान्त्वना प्राप्त करने की बहुत चेष्टा की, किन्तु उसे किसी तरह भी इस बात पर विश्वास नहीं हुआ कि जिस स्त्री को पति तुच्छ समझकर ठुकरा देंगे उसे जगदीश्वर सार्थकता प्रदान कर सकेंगे। वह सिर झुकाये मौसी के पैर दबाने में व्यस्त हो गयी।

अन्नपूर्णा ने तब आशा का हाथ पकड़, उसे और भी अपने पास खींच लिया, उसका मस्तक चूम लिया और रुँधे हुए गले को बड़ी कोशिश से साफ करके कहा, "चुन्नी, दुःख और कष्ट में जो शिक्षा मिलती है, वह इन दुःखों को केवल कानों से सुन लेने से नहीं मिलती। तेरी इस मौसी ने भी किसी दिन तेरी ही अवस्था में संसार के लेन-देन के व्यवहारों का सम्पर्क स्थापित किया था। उन दिनों मैं भी तेरी ही तरह सोचती रहती थी जिसकी सेवा करूँगी, उसे सन्तोष क्यों न प्राप्त होगा। जिसकी पूजा करूँगी, उसका प्रसाद मुझे क्यों न मिलेगा। जिसकी भलाई की चेष्टा करूँगी, वह मेरी उस चेष्टा को अच्छा क्यों न समझेगा। पग-पग पर मुझे यही दिखाई पड़ा कि वैसा कहीं नहीं होता। अन्त में एक दिन यह स्थिति असहनीय हो गयी। मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि इस दुनिया में मेरा सब काम व्यर्थ हो गया—उसी दिन संसार त्याग करके चली आयी। आज फिर देख रही हूँ कि मेरा कुछ भी करना निष्फल नहीं हुआ। अरी बेटी, जिनके साथ असल लेन देन का सम्बन्ध है, जो इस

संसार-बाजार के मूल महाजन हैं, वे ही मेरे सब कामों को ग्रहण कर रहे हैं और मेरे हृदय में बैठकर इन्हें स्वीकार कर रहे हैं। यदि मुझे यही बात पहले ही मालूम रहती, यदि मैं सब कामों को उन्हीं का काम समझ कर करती रहती, उन्हीं को दे रही हूँ इस बुद्धि से संसार को अपना हृदय प्रदान करती तो मुझे कौन दुःख दे सकता ?"

आशा बिछौने पर पड़ी-पड़ी बहुत रात बीतने तक बहुत बातें सोचती रही, तो भी अच्छी तरह कुछ भी न समझ सकी। किन्तु पुण्यवती मौसी के प्रति उसके मन में असीम भक्ति थी। उनकी बातों को अच्छी तरह न समझने पर भी एक तरह उन्हें उसने शिरोधार्य कर लिया। मौसी ने संसार की सभी वस्तुओं से ऊपर जिनको अपने हृदय में स्थान दे रखा है, उन्हीं जगदीश्वर के उद्देश्य से अँधेरे में बिछौने पर उठ कर फिर बीच-बीच में बैठकर उसने प्रणाम किया। उसने कहा—"मैं बालिका हूँ, तुमको नहीं जानती, मैं केवल अपने पति को जानती हूँ, इसमें यदि मेरा कुछ अपराध हो तो उसे माफ करना। हे भगवन्, मैं अपने पति को जो पूजा देती हूँ उसे तुम ग्रहण करने के लिए मेरे स्वामी से कहना। यदि वे मेरी पूजा को पैरों से ठुकरा देंगे तो मैं जीवित न रह सकूँगी। मैं अपनी मौसी की तरह पुण्यवती नहीं हूँ केवल तुम्हारे ही आश्रय में रहकर मैं न जी सकूँगी।" यह कहकर आशा ने बार-बार बिस्तर पर लेट-लेटकर जगदीश्वर को प्रणाम किया।

आशा के बड़े चाचा के लौट जाने का समय आ गया। बिदाई के पहले दिन की शाम को अन्नपूर्णा ने आशा को अपनी गोद में बैठा कर कहा—चुन्नी, मेरी बेटी, संसार के शोक दुःख-अमंगल से तुझे बराबर रखने की शक्ति मुझमें

नहीं है। मेरा यही उपदेश है कि जहाँ से ही क्यों न हो तुझे जितना ही कष्ट क्यों न मिले, अपनी भक्ति को सर्वदा स्थिर रखना, अपने धर्म को अटल रखना।"

आशा ने मौसी के पैरों की धूलि लेकर कहा—"आशीर्वाद दो मौसी ऐसा ही होगा।"

३०

आशा घर लौट आयी। विनोदिनी उससे नाराज हुई। उसने कहा—"इतने दिनों तक विदेश में रही, क्या एक चिट्ठी भी लिखने की फुरसत नहीं मिली ?"

आशा ने कहा—"बहिन किरकिरी, तुमने भी तो कोई चिट्ठी नहीं लिखी।"

विनोदिनी—"मैं क्यों पहले लिखूँ, तुम्हारी ही तो पहले लिखने की बात थी।"

आशा ने विनोदिनी के गले से लिपटकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया। कहा, तुम तो जानती ही हो, बहिन, मैं अच्छी तरह लिखना नहीं जानती। खासकर तुम्हारी तरह विदुषी को चिट्ठी लिखते मुझे लज्जा लगती है।"

देखते-देखते दोनों का झगड़ा मिट गया और दोनों का परस्पर का प्रेमभाव उमड़ पड़ा।

विनोदिनी ने कहा, दिन रात साथ रहकर तुमने अपने पति की आदत एकदम खराब कर डाली है, बराबर उनके पास किसी के न रहने से वे अकेले रह नहीं सकते।"

आशा—"इसलिये तो तुम्हारे ऊपर मैं उनका भार सौंप

गयी थी। किस तरह साथ रहा जाता है, यह बात तुम मुझसे अधिक जानती हो।"

विनोदिनी—"दिन के समय तो उन्हें किसी तरह कालेज भेजकर मैं निश्चिन्त हो जाती थी किन्तु शाम होने पर किसी तरह छोड़ने को राजी नहीं होते थे, बातचीत करनी पड़ेगी, किताब पढ़कर सुनानी पड़ेगी, माँगों की हद ही नहीं थी।

आशा—किस तरह छकी! जब तुम लोगों को मुग्ध कर सकती हो तो भला लोग ही तुमको क्यों छोड़ेंगे?

विनोदिनी—सावधान रहना बहिन, वे जिस हद तक अत्यधिक बढ़ चढ़कर बर्ताव कर रहे थे उससे तो मुझे कभी कभी अपने ही ऊपर सन्देह होता था कि मैं शायद वशीकरण विद्या जानती हूँ।

आशा ने हँसकर कहा, तुम नहीं जानती तो कौन जानता है? तुम्हारी विद्या यदि मुझे जरा भी मिल जाती तो मेरी रक्षा होती।

विनोदिनी—क्यों, किसकी सर्वनाश करने की इच्छा हुई है? घर में जो है, उसकी रक्षा करो। दूसरे को मोहित करने की चेष्टा न करना बहिन, बड़ा झमेला है।' आशा ने विनोदिनी को हाथ से धमकी का इशारा करके कहा, 'आः, क्या बकती जा रही हो, चुप रहो।

काशी से लौट जाने पर प्रथम मिलन होने पर महेन्द्र ने कहा देख रहा हूँ कि वहाँ तुम बहुत ही आराम से थी, खूब मोटी होकर आयी हो।

आशा को बड़ी लज्जा मालूम हुई। वह सोचने लगी कि किसी तरह मेरे शरीर को मोटा न होना चाहता था। किन्तु मैं बड़ी मूढ़ हूँ, कोई बात मेरे लिए ठीक नहीं होती। जब मेरा मन

इतना खराब रहा करता था तो भी मेरा जला शरीर मोटा हो उठा। एक तो मन का भाव प्रकट करने के लिए बातें नहीं जुटती, इसपर यह आफत कि यह शरीर भी उलटी ही बात बता रहा है।

आशा ने नम्र स्वर में पूछा—"तुम कैसे रहे ?"

पहले का समय होता तो महेन्द्र कुछ हँसी दिल्लगी और मन के साथ कहता—"मर रहा था"। किन्तु आज हँसी न कर सका। गला रुँध गया। उसने कहा—"अच्छी तरह रहा, बुरा नहीं रहा।"

आशा ने महेन्द्र को गौर से देखा तो मालूम हुआ कि वह पहले की अपेक्षा कुछ रोगीसा हो गया है, चेहरा पीला पड़ गया है, आँखें तेज चमक रही हैं मानों कोई भीतरी भूख उसे अपनी अग्निमय जीभ से चाट चाट खा रही है। अपने मन में बहुत ही व्यथित होकर आशा सोचने लगी, "आहा, मेरे स्वामी की तबीयत अच्छी नहीं थी, उन्हें अकेला छोड़कर मैं क्यों काशी चली गयी ?" स्वामी दुबले हो गये और मैं खुद मोटी हो गयी, यह सोच कर भी आशा अपने स्वास्थ्य को बार-बार धिक्कारने लगी।

कुछ देर तक यह सोचते रहने के बाद कि अब कौन बातचीत उठायी जाय, महेन्द्र ने पूछा—"चाची तो अच्छी तरह हैं ?"

इस प्रश्न के उत्तर में कुशल समाचार पाकर और कोई बात करना महेन्द्र के लिए कठिन हो गया। पास ही एक फटा पुराना अखबार पड़ा था, उसे उठाकर महेन्द्र अनमना सा होकर पढ़ने लगा। आशा मुँह नीचे करके सोचने लगी, इतने दिनों के बाद मुलाकात हुई, किन्तु क्या कारण है कि इन्होंने

मुझमे अच्छी तरह जी खोलकर बातचीत नहीं की, यहाँ तक कि मेरे मुँह की तरफ मानों देख न सके। तीन चार दिन चिट्ठी न लिख सकी, क्या इसीसे नाराज हो गये हैं ? क्या मौसी के अनुरोध से बहुत दिनों तक काशी में मैं रह गयी इसीसे रञ्ज हो उठे हैं ?' किस त्रुटि से कौन अपराध हो गया है, इसीको वह दुःखित चित्त से खोज करने लगी।

महेन्द्र कालेज से लौट आया। शाम को उसके जलपान के समय राजलक्ष्मी थी, आशा भी घूँघट काढ़े पास ही किवाड़ पकड़े खड़ी थी, किन्तु और कोई भी नहीं था। राजलक्ष्मी ने कुछ घबड़ाकर पूछा, क्या आज तेरी तबीयत अच्छी नहीं है महीन ?"

महेन्द्र ने कुछ रञ्जसा होकर कहा—नहीं माँ, तबीयत तो बिलकुल ठीक है।"

राजलक्ष्मी—तो तू कुछ खाता क्यों नहीं ?

महेन्द्र छत पर इधर उधर टहलने लगा। उसके मन में बड़ी आशा थी कि नियमित रूप से पुस्तक पढ़ने का काम बन्द न होगा 'आनन्दमठ' प्रायः समाप्त हो चला है, अब केवल दो तीन अध्याय और रह गये हैं। विनोदिनी चाहे जितनी ही निष्ठुर क्यों न हो, बाकी अध्यायों को वह अवश्य ही पढ़कर सुना जायगी। किन्तु सन्ध्या बीत गयी पढ़ने का समय भी बीत गया। निराशा का भारी बोझ उठाकर महेन्द्र को सोने के लिए चला जाना पड़ा।

लज्जिता और शृंगार आदिसे सुसज्जिता आशा धीरे-धीरे शयनगृह में पहुँची। देखा कि महेन्द्र बिस्तर पर सोया पड़ा हुआ है। उस समय वह यह निश्चय न कर सकी कि और आगे बढ़कर क्या करना चाहिये। वियोग के बाद फिर मिलन के समय एक

तरह की नयी लज्जा आती है, जहाँ से छोड़कर जाना पड़ता है ठीक उसी स्थान पर फिर मिलने के पहले एक दूसरे से नयी बात-चीत की प्रत्याशा करना स्वाभाविक है। आशा अपने उस चिर-परिचित सुखसेज पर जो आनन्द दे चुकी है आज बिना बुलाये कैसे पैर रखेगी। वह दरवाजे के पास बहुत देर तक खड़ी रही, किन्तु महेन्द्र की जरा भी आहट नहीं सुनाई पड़ी। बहुत धीरे-धीरे वह एक-एक कदम बढ़ाये आगे बढ़ने लगी। यदि असावधानी से हठात् कोई गहना बज उठेगा तो लज्जा में मरणसा दुःख होगा। काँपती हुई आशा मसहरी के पास पहुँची तो मालूम पड़ा कि महेन्द्र सो रहा है। तब उसे अपनी सब सजावट शृङ्गार आदि मानो उसके समूचे शरीर को घेरकर उसका उपहास करने लगे। इच्छा हुई कि बिजली सी गति में वहाँ से भागकर कहीं दूसरी जगह जाकर सो रहे।

अपनी पूरी शक्ति से चुपचाप संकुचित भाव से वह पलंगपर जा पहुंची। तो भी उससे इतना शब्द हुआ कि यदि महेन्द्र सचमुच निद्रामग्न रहता तो जाग उठता। किन्तु आज उसकी आँखें नहीं खुलीं, क्योंकि वह सोया नहीं था, जगा हुआ था। महेन्द्र पलँग के एक किनारे करवट बदलकर लेट गया था, इसलिए आशा उसके पीछे पीठ के पास सो रही। आशा चुपचाप आँसू बहा रही है यह बात महेन्द्र दूसरी करवट में सोने पर भी समझ रहा था। अपनी ही निष्ठुरता उसके हृदय को जाँते की तरह पीसकर व्यथा पहुँचा रही थी। किन्तु कौनसी बातचीत चलायी जाय, कैसे आदर करना चाहिये, यह कुछ भी बहुत सोचने पर भी वह ठीक न कर सका। भीतर-ही-भीतर वह अपने को कड़े बेतों की मार की चोट लगाने लगा, इससे उसे चोट भी लगी, किन्तु कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ा। उसने

सोचा "सबेरे तो नींद का बहाना न किया जा सकेगा, उस समय सामना होने पर आशा से क्या बातचीत करूँगा ?"

आशा ने आप ही आप महेन्द्र को उस सङ्कट से बचा लिया। एकदम तड़के ही वह अपने अपमानित साज शृङ्गार को लेकर सेज छोड़कर चली गयी, वह भी महेन्द्र को मुँह न दिखा सकी।

२१

आशा सोचने लगी "ऐसा क्यों हुआ ? मैंने कौन अपराध किया है ?" जहाँ सच्ची विपत्ति थी, वहाँ उसकी नजर नहीं पड़ी। उनके मन में यह भावना नहीं उत्पन्न हुई कि महेन्द्र विनोदिनी को प्यार कर सकता है। संसार की बातों की अभिज्ञता उसे बिलकुल ही नहीं थी। इसके सिवा, विवाह के तुरंत बाद से उसने महेन्द्र को जिस स्वभाव का मनुष्य समझ रखा था, उसके विरुद्ध कुछ सोचने की कल्पना भी उसने कभी नहीं की थी।

महेन्द्र आज रोज की अपेक्षा कुछ पहले ही कालेज चला गया। उसके कालेज जाते समय आशा खिड़की के पास आकर खड़ी हो जाती थी और महेन्द्र भी गाड़ी से मुँह उठाकर एक बार उसे देख लिया करता था। उसी पुरानी आदत के अनुसार आज भी गाड़ी की आवाज सुनते ही यन्त्रचालित सी होकर आशा खिड़की के पास आकर उपस्थित हुई। पुराने अभ्यास के कारण महेन्द्र ने भी आश्चर्य-चकितसा होकर आँखें ऊपर उठा लीं। उसने देखा कि आशा खड़ी है, स्नान तक भी उसने नहीं किया है, कपड़े मैले कुचैले हैं, बाल बिखरे हुए हैं, मुँह सूख

गया है। यह दृश्य देखते ही वह अपनी आँखें नीची करके गोद में रखी किताब देखने लगा। आँखों को मिलाकर नीरव संभाषण करना आज कहाँ चला गया? और कहाँ चली गयी वह मनोभाव व्यक्त करने-वाली हँसी?

गाड़ी चली गयी। आशा उसी जगह जमीन पर बैठ गयी। पृथ्वी, संसार सभी उसके लिए स्वादहीन हो गये। कलकत्ते के कामकाज के प्रवाह में वह ज्वार आने का समय था। साढ़े दस बज चुके थे, आफिस जानेवाली गाड़ियों का तांता टूटता नहीं था। एक के पीछे लगातार दूसरी ट्रामगाड़ी दौड़ रही थी। उस व्यस्ततावेगपूर्ण कर्मकल्लोल के पास ही एक मुरझाया हृदय बहुत ही खराब मालूम पड़ रहा था।

एकाएक आशा के मन में यह बात आयी, "समझ गयी, बिहारी बाबू काशी गये थे, यह खबर पाकर वे मुझसे रंज हो उठे हैं। इसके सिवा और तो दूसरी कोई अप्रीतिकर घटना नहीं हुई। किन्तु उसमें मेरा क्या दोष था?"

सोचते-सोचते हठात मानो क्षणभर के लिए आशा के हृदय की गति बन्द हो गयी। एकाएक उसके मन में यह आशंका उत्पन्न हुई कि बिहारी की काशीयात्रा से मेरा भी कुछ सम्बन्ध है, इस ख्याल से पतिदेव को मेरे ऊपर सन्देह हुआ है, सोचते होंगे कि दोनों की सलाह से यह काम हुआ है। छि, छि, छि। ऐसा सन्देह! बड़ी ही लज्जा की बात है। एक तो बिहारी के साथ उनका नाम लिये जाने से उनके लिए धिक्कार का कारण उत्पन्न हो गया है, इसके बाद यदि उसपर महेन्द्र का ऐसा सन्देह होने लगा तो प्राण रखना भी कठिन हो जायगा। किन्तु यदि कोई सन्देह का कारण हो, यदि मुझसे किसी तरह का अपराध हुआ हो तो महेन्द्र साफ शब्दों में क्यों नहीं कहता

और विचार करके उचित दण्ड क्यों नहीं देता ? महेन्द्र कुछ भी साफ शब्दों में नहीं कहता, केवल आशा से दूर रहकर भागत फिरता है। इस तरह आशा को बार-बार यह सन्देह होने लगा कि महेन्द्र के मन में कोई ऐसा सन्देह उत्पन्न हुआ है, जिसे वह अन्याय समझता है और उसे मुझसे कहने में भी उसे लज्जा मालूम हो रहा है। ऐसा न होता तो इस तरह अपराधी की भाँति उसका चेहरा उदास क्यों बना हुआ है ? क्रुद्ध विचार का तो ऐसा कुण्ठित भाव नहीं होना चाहिये।

कालेज जाते समय आश्चर्य में पड़े हुए की भाँति गाड़ी से महेन्द्र आशा का जो मलिन करुण मुख देख गया था, उसे सारा दिन वह भूल न सका। कालेज में लेक्चर सुनते समय श्रेणी-बद्ध छात्रमण्डली के बीच, वही खिड़की, आशा के वे ही बिखरे हुए बाल, उसके मैले कपड़े, वहोत्कण्ठित व्याकुल दृष्टि, स्पष्ट रेखाओं में बार-बार अंकित हो उठने लगी।

कालेज का काम समाप्त करके महेन्द्र गोलदीघी के किनारे धीरे-धीरे टहलने लगा। टहलते-टहलते शाम हो चली। आशा के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये यह बहुत सोचने पर भी वह किसी तरह निश्चय न कर सकता। दयापूर्ण छल ठीक है या अकपट निष्ठुरता ठीक है, यह प्रश्न हल न हो सका। विनोदिनी को छोड़ देना चाहिये या नहीं यह प्रश्न उसके मन में बिलकुल ही नहीं आया।

महेन्द्र ने तब अपने मन को यह कहकर समझाया कि आशा पर अब भी मेरा जितना प्रेम है, वह बहुत ही कम स्त्रियों के भाग्य में प्राप्त होता है। उस प्रेम, उस स्नेह को पाकर आशा क्यों न सन्तुष्ट रहेगी। विनोदिनी और आशा दोनों को स्थान देनेके योग्य चौड़ा हृदय मेरे पास मौजूद है। विनोदिनी के

न होनेपर भी बिछौने पर जाकर लेट गय
यह भी तो वह पुराना बिछौना नहीं
बिछी रहने से बिछौना पहले की अपेक्षा
है। इसमें भी एक तरह की सुगन्ध है
या अगर की है या किस चीज़ क
आता। महेन्द्र बार-बार इध
वह इस बात की चेष्टा में
चिह्न मिल जाय तो उसे
हाथ न आया।

रात के नौ बजे द
दिनी ने बाहर से पुक
आयी हूँ, दरवाजा खे

सुनते ही
हाथ रखा,
कहा, "नहीं, न

"बाहर से घ
तबीयत तो ठीक है
जरूरत है ?"

महेन्द्र ने कहा—"मुझे कुछ भी नहीं
की जरूरत नहीं है।"

विनोदिनी ने कहा—"तुम्हें मेरे सिर की कसम, झूठ-मूठ का बनना छोड़ दो, अच्छा यदि तबीयत ख है तो दरवाजा एक बार खोल दो।"

महेन्द्र बड़े जोर से बोल उठा—"नहीं, नहीं खोलूँगा, किस तरह भी नहीं। तुम चली जाओ।"

यह कहकर और झटपट उठकर फिर बिछौने पर जाकर

अन्तर्हिता आशा की स्मृति को शून्य
वञ्चल हृदय के भीतर अन्धकार में

नींद नहीं आयी तब बत्ती जलाकर
चिट्ठी लिखने के लिए उठ बैठा।
क मुझे अकेला छोड़ मत
तुम्हारे साथ न रहने से
को तोड़कर मुझे किस
न मेरी समझ में नहीं
शा कहाँ है? तुम्हारी
ही यह प्रकाश है।
मेरे लिए सत्य हो
... को. मेरे
जानेवाले
काल के लिए

... जानने मुझे जोरों से अपने
बड़ी रात बीतने तक बहुत सी बातें
के गिर्जाघर की घड़ी की टन-टन करके तीन
जाज सुनाई पड़ी। कलकत्ते की सड़कों पर गाड़ियों
की घरघराहट नहीं सुनाई पड़ती। मुहल्ले के दूसरे
... के दो मञ्जिले मकान से किसी की के कण्ठ से विहाग
गिनी की जो आवाज सुनाई पड़ रही थी, वह भी विश्वव्यापिनी
शान्ति और निद्रा में एकदम विलीन हो गयी है। एकाग्र चित्त से
आशा की याद करके, और लम्बे पत्र में अपने मन की घबरा-
हट को तरह तरह से प्रकट करके उसे बहुत कुछ सान्त्वना मिली

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पुकारने पर तुम मेरी कुछ भी आहट न पाओगे। चिट्ठी में तुमने मुझे निठुर लिखा है, यह बात सच हो सकती है; किन्तु मेरे मन में कुछ दया भी मौजूद है। इसीसे आज मैं तुम्हें दया करके छोड़ देती हूँ। यदि तुम इस चिट्ठी का उत्तर दोगे, तो समझूँगी कि यहाँ से भाग कर अन्यत्र गये बिना मुझे छुटकारा न मिलेगा।"

चिट्ठी पढ़ने पर तुरत ही क्षणभर में चारों ओर से मानो आशा के सभी अवलम्बन टूट पड़े। शरीर की सभी नसें मानो एकदम ही शिथिल पड़ गयां, मानों साँस लेने के लिए शरीर में हवा का लेशमात्र भी नहीं रह गया। सूर्य ने मानों उसकी आँखों पर से अपना सब प्रकाश खींच लिया। आशा पहले दीवाल को, बाद आलमारी को, फिर बाद में कुर्सी को पकड़ते पकड़ते जमीन पर गिर पड़ी। क्षणभर के बाद सचेत होकर उसने फिर एक वार चिट्ठी पढ़ने की चेष्टा की. किन्तु विचलित चित्त होने से वह किसी प्रकार भी उसका अर्थ न समझ सकी, काले-काले अक्षर उसकी आँखों पर नाचने लगे। यह क्या हुआ? यह कैसे हुआ? यह क्या सम्पूर्ण सर्वनाश है? वह क्या करे, किसको पुकारे, कहाँ चली जाय, इनपर बहुत सोचने पर भी वह कुछ निश्चय न कर सकी। पानी से ऊपर बाहर आकर मछली जिस तरह छटपटाने लगती है, उसकी छाती उसी तरह छटपटाने लगी। डूबता हुआ आदमी जिस तरह कुछ सहारा पानेके लिए बार-बार जल के ऊपर हाथ फैला कर आकाश पकड़ना चाहता है. उसी तरह आशा भी अपने मन के भीतर कुछ न कुछ जी जान से पकड़ रखने के लिए चेष्टा करने लगी, अन्त में अपनी छाती पकड़कर जोरों से चिल्ला उठी—"मौसी!"

उस स्नेह के संभाषण के उच्छ्वसित होने के साथ ही

उसकी आँखों से झर-झर करके आँसू गिरने लगे। जमीन पर पड़ी-पड़ी बड़ी देर तक रो चुकने पर जब वह कुछ शान्त हुई तो सोचने लगी, "इस चिट्ठी को लेकर मैं क्या करूँगी" पति को यदि मालूम हो जायगा कि यह चिट्ठी आशा के हाथ में पड़ गयी थी तो उनको बड़ी लज्जा होगी, यह ख्याल करके वह बहुत ही कुण्ठित हो गयी। उसने निश्चय किया कि चिट्ठी को उसी कमीज की जेब में रखकर उसे खूँटी पर टाँग दे, धोबी को देने की जरूरत नहीं है।

यह सोच कर हाथ में चिट्ठी लिये वह सोने के कमरे में गयी। इतने में धोबी मैले कपड़ों की गठरी पर टेककर सो गया था। आशा महेन्द्र की कमीज उठाकर उसकी जेब में चिट्ठी रख रही थी कि तबतक आवाज सुनाई पड़ी, "बहिन आँख की किरकिरी।"

जल्दी से चिट्ठी और कमीज पलंग पर फेंककर वह उसीपर बैठ गयी। विनोदिनी ने कमरे में आकर कहा, "आजकल धोबी बहुत से कपड़े अदल बदल करने लगा है। जिन कपड़ों पर निशान नहीं लगे हैं, उन्हें मैं ले जाकर निशान लगा दूँ।"

आशा विनोदिनी के मुँह की तरफ अपनी नजर न उठा सकी। कहीं मुँह का भाव देखकर मन की बातें प्रकट न हो जायँ इसीलिए वह खिड़की की तरफ मुँह फेरकर आकाश की तरफ ताकने लगी। ओंठ से ओंठ को दबा रखा, जिससे कहीं आँसू न निकल पड़े।

विनोदिनी ने जरा ठिठक कर एक बार आशा को गौर से देखा। उसने मन ही मन सोचा—'ओ, समझ गयी। कल रात का सब हाल तुम जान गयी हो। मेरे ही ऊपर सब क्रोध उमड़ा है मानो सब अपराध मैंने ही किया है।"

विनोदिनी ने आशा के साथ बातचीत करने की कुछ भी चेष्टा नहीं की। कुछ थोड़े से कपड़े छाँटकर तेजी से कमरे से बाहर चली गयी।

विनोदिनी के साथ आशा अब तक सरल चित्त से मित्रता का भाव रखती आ रही है, उसी बात की लज्जा ने इस दारुण दुःख के बीच भी उसके हृदय में बहुत ज्यादा प्रभाव जमा लिया। उसके मन में सखी के सम्बन्ध में जो आदर्श था, उसी आदर्श के साथ उसे इस निठुर चिट्ठी को और एक बार मिलाकर देखने की इच्छा हुई।

आशा चिट्ठी खोलकर देख रही थी कि उसी समय जल्दी से महेन्द्र कमरे में आ धमका। एकाएक न मालूम क्या याद करके कालेज के एक लेक्चर के बीच ही उसका सुनना छोड़कर तेजी से घर चला आया है।

आशा ने चिट्ठी को अपने आँचल में छिपा लिया। महेन्द्र भी कमरेमें आशाको देखकर जरासा ठिठककर खड़ा हो गया। इसके बाद व्यग्र दृष्टिसे कमरे में इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने लगा। आशा समझ गयी कि महेन्द्र क्या खोज रहा है। किन्तु किस तरह वह अपने हाथ की चिट्ठी को छिपे तौर से ठीक स्थान पर रख दे और भाग जाय, यह निश्चय न कर सकी।

तब महेन्द्र एक एक करके मैले कपड़ों को उठाकर देखने लगा। महेन्द्र का यह निष्फल प्रयास देखकर आशा और स्थिर न रह सकी, चिट्ठी और कमीज को फर्श पर फेंककर दाहिने हाथसे पलंग का पाया पकड़ कर उसी हाथ से उसने अपना मुँह छिपा लिया। महेन्द्र ने बिजली की तरह तेज़ी दिखाकर उस चिट्ठी को उठा लिया, इसके बाद क्षणभर के लिए स्तब्ध

होकर आशा की तरफ देखा। इसके बाद आशा ने महेन्द्र के जल्दी दौड़कर चले जाने का शब्द सुना। उसी समय धोबी कह रहा था, "बहूजी, कपड़े देने में और कितनी देर करोगी? बड़ी देर हो गयी, मेरा मकान तो निकट नहीं है।"

२३

राजलक्ष्मी ने आज सबेरे से विनोदिनी को अपने पास नहीं बुलाया। विनोदिनी प्रतिदिन की भाँति भंडार में गयी। उसने देखा कि राजलक्ष्मी ने उसकी तरफ मुँह उठाकर देखा भी नहीं।

उनका ऐसा भाव देखकर विनोदिनी ने कहा—"बुआजी शायद तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है। खराब होने की बात ही है। कल रात को महेन्द्र बाबू ने जो काम किया एक दम पागल की तरह यहाँ आ गये,मुझे तो उसके बाद नींद ही नहीं आयी।"

राजलक्ष्मी मुँह लटकाये ही रह गयी, हाँ, या ना, कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

विनोदिनी ने कहा—"शायद आँख की किरकिरी के साथ साधारण खटपट हो गयी होगी, इसका देखनेवाला कौन रहा। इस कारण उसी समय नालिश करने या फैसला के लिए आवे, रात बिता देने भी असह्य हो गया। बूआजी, तुम जो चाहे कहो, तुम रंज न होना, मैं तो यही कहूँगी कि तुम्हारे लड़के में चाहे और हजार गुण हो सकते हैं, किन्तु धैर्य का तो लेशमात्र भी नहीं है। यही कारण है कि मेरे साथ भी उनका झगड़ा होता रहता है।"

राजलक्ष्मी ने कहा—"बहू, तुम झूठ बोल रही हो—मुझे

आज और कोई बात अच्छी नहीं लग रही है।"

विनोदिनी ने कहा—"मुझे भी कुछ अच्छा नहीं लग रहा है बूआ। तुम्हारे मन में चोट पहुँचेगी, इसी भय से झूठ बोल कर मैं तुम्हारे लड़के का दोष छिपाने की चेष्टा कर रही थी। किन्तु अब ऐसा हो गया है कि और छिपाया नहीं जा सकता ?"

राजलक्ष्मी—अपने लड़के के दोष गुण मैं जानती हूँ। किंतु तुम जो इतनी मायाविनी हो यह मैं नहीं जानती थी।

विनोदिनी न मालुम क्या कहने के लिए तैयार सी हो गयी पर फिर अपने को सँभाल कर बोली, "यह बात तो ठीक ही है बूआजी, कोई किसी को नहीं जानता। अपने ही मन को क्या सभी जानते हैं ? तुमने भी क्या कभी किसी समय अपनी बहू के प्रति मनमें द्वेष रखकर अपने लड़के के मन को फुसलाना नहीं चाहा था ? एक बार सोचकर देखो तो।"

राजलक्ष्मी आग की भाँति जल उठीं, कहा—"अभागिनी, लड़के के सम्बन्ध में माँ के नाम को तुम इतना कलंक लगा सकती हो, क्या तेरी जीभ गिर न पड़ेगी ?"

विनोदिनी ने विचलित होकर कहा—"बूआजी, हम औरतों की जाति ही मायाविनी होती है। मुझमें कौन सी माया थी, यह बात मैं अच्छी तरह न जान सकी, किन्तु तुमने जान लिया। इसी तरह तुममें क्या माया थी वह तुम नहीं जान सकी, उसे मैंने जान लिया। किन्तु माया जरूर थी, नहीं तो ऐसी घटना नहीं घट सकती थी। मैंने भी कुछ जानकर और कुछ न जानकर फन्दा डाला है। हमारी जाति का कर्म ही ऐसा है, हम मायाविनी हैं।"

क्रोध के कारण राजलक्ष्मी के मुँह से मानों कोई बात न निकली, गला रुँध गया, वे तेजी के साथ कमरे से बाहर निकल

कर चली गयीं।

विनोदिनी कुछ देर तक अकेली ही उस कमरे में स्थिर भाव से खड़ी रही, उसकी दोनों आँखों में आग जलने लगी।

सबेरेका घरका सब कामकाज खतम हो जानेपर राजलक्ष्मी ने महेन्द्र को बुला भेजा। महेन्द्र समझ गया कि कल रात की घटना के सम्बन्ध में आलोचना होगी। तब विनोदिनी के पास से अपने पत्र का उत्तर मिलने से उसका मन व्याकुल हो उठा था। उस आघात के प्रतिघात रूप में उसका समूचा तरंगित हृदय विनोदिनी की तरफ बहुत तेजी से दौड़ने लगा। इस अवस्था में फिर माँ के साथ उत्तर प्रत्युत्तर करना उसके लिए असाध्य हो गया था। महेन्द्र जानता था कि माँ ज्यों ही विनोदिनी के बारे में भर्त्सना करने लगेंगी उस समय विद्रोही बनकर मन की सब बातें खोलकर कह देने से तुरंत ही घोर गृहयुद्ध आरम्भ हो जायगा। इसलिए इस समय घर से दूर जाकर सब बातों पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए। महेन्द्र ने नौकर से कहा—"माँ से जाकर कह दे, आज कालेज में मुझे जरूरी काम है, इसी समय जाना पड़ेगा, लौटकर मुलाकात करूँगा" इतनी बातें कहकर भगानेवाले लड़के की तरह उसी समय तुरत ही झटपट कपड़े पहनकर बिना कुछ खाये पिये घर से निकल भागा। विनोदिनी की जिस दारुण चिट्ठी को आज प्रातःकाल वह बार-बार पढ़ रहा था और जेब में लेकर घूम रहा था, आज को हड़बड़ी में चिट्ठी के साथ की कमीज को छोड़कर ही चला गया।

एक झड़ी वर्षा हो जाने के बाद आकाश बादलों से भरोसा रह गया। आज विनोदिनी का मन बहुत खराब हो रहा है। मन में किसी तरह खराबी आ जाने पर विनोदिनी और भी

अधिक काम में लग जाती है। इसलिए आज वह सभी कपड़े बटोरकर उनमें निशान लगाने लगी है। आशा के पास कपड़े लेने के लिए जाकर आशा का रूखा मनोभाव देखकर उसका मन और भी खराब हो गया है। संसार में यदि अपराधी ही बनना है तो अपराध की सब लांछना ही वह क्यों भोग करे, अपराध के सुखों से अपने को क्यों वञ्चित रखे?

रिमझिम करके शब्द करती हुई फिर वर्षा आ गयी। विनोदिनी अपने कमरे में फर्श पर बैठी है। सामने कपड़ों का ढेर लगा हुआ है। दाई एक एक कपड़ा उठाकर दे रही है और विनोदिनी स्याही से निशान लगा रही है।

एकदम किसी तरह की आवाज न देकर महेन्द्र दरवाजा खोलकर कमरे में आ गया। दाई अपना काम छोड़कर कपड़े से सिर ढँककर चली गयी।

विनोदिनी अपने हाथ के कपड़े जमीन पर फेंककर बिजली की तरह तेजी से उठ खड़ी हुई और फिर उसने कहा—"जाओ, इस कमरे में से निकल जाओ।"

महेन्द्र ने कहा, "क्यों मैंने क्या किया है?"

विनोदिनी—"क्या किया है! डरपोक नामर्द! क्या करने की तुम्हारी शक्ति है? न तो प्रेम करना जानते हो, न तो कर्तव्य पालन ही करना जानते हो। बीच में इस तरह लोगों में क्यों मुझे बदनाम करते हो?"

महेन्द्र—"मैं तुमसे प्रेम नहीं करता, क्या ऐसी बात तुम कहती हो?

विनोदिनी—"मैं यही बात कह रही हूँ। लुक छिपकर इधर-उधर करके कभी उधर जाना कभी इधर आना—इस तरह की तुम्हारी चोरों की तरह प्रवृत्ति देखकर मुझे तुमसे घृणा हो गयी

है। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। तुम जाओ।

महेन्द्र ने एकदम मुरझाकर कहा—तुम मुझसे घृणा करती हो विनोद?

विनोदिनी—हाँ, घृणा करती हूँ।

महेन्द्र—अब भी प्रायश्चित्त करने का समय है विनोद। यदि मैं और दुविधा न करूँ, सब छोड़कर चल दूँ, तो तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो?"

यह कहकर महेन्द्र ने विनोदिनी के दोनों हाथ पकड़कर उसे अपने पास खींच लिया। विनोदिनी ने कहा, "छोड़ दो। मुझे चोट लग रही है।"

महेन्द्र—लगने दो। बोलो, तुम मेरे साथ चलोगी?

विनोदिनी—नहीं, नहीं जाऊँगी। किसी तरह भी न जाऊँगी।

महेन्द्र—क्यों नहीं जाओगी? तुम ही मुझे सर्वनाश के मुँह में खींच लाया हो, अब तुम मुझे छोड़ न सकोगी। तुमको चलना ही होगा।"

यह कहकर महेन्द्र ने पूरा जोर लगाकर विनोदिनी को खींच कर अपनी छाती में सटा लिया और बलपूर्वक अपने पास रखकर कहा—"तुम्हारी घृणा भी आज मुझे लौटा न सकेगी। मैं तुमको ले ही जाऊँगा और जिस तरह ही क्यों न हो तुम मुझे जरूर प्यार करोगी।"

विनोदिनी ने जोर लगाकर अपने को छुड़ा लिया।

महेन्द्र ने कहा—"चारों तरफ तुमने आग जला रखी है, अब तुम उसे बुझा भी न सकोगी, भागकर कहीं जा भी न सकोगी।"

यह कहते-कहते महेन्द्र का स्वर ऊँचा हो गया। उसने

चिल्लाकर कहा—"तुमने ऐसा खेल क्यों खेला विनोद ? अब इसे खेल कह देने से छुटकारा नहीं मिल सकता। अब तुम्हारी और मेरी एक ही साथ मृत्यु होगी।"

राजलक्ष्मी ने कमरे में प्रवेश करके कहा—"महीन, क्या कर रहा है ?"

महेन्द्र की उन्मत्त दृष्टि क्षणभर के लिए माता की ओर लौट आयी; इसके बाद फिर उसने विनोदिनी की तरफ देखकर कहा, "मैं सब छोड़कर जा रहा हूँ, बोलो, तुम मेरे साथ चलोगी ?"

विनोदिनी ने क्रुद्धा राजलक्ष्मी की तरफ एक बार देखा। इसके बाद आगे बढ़कर अविचलित भाव से महेन्द्र का हाथ पकड़कर कहा, "चलूँगी।"

महेन्द्र ने कहा—"तो आज दिन भर के लिए ठहरो, मैं जाता हूँ, कल से तुम्हारे सिवा मेरा और कोई न रहेगा।"

यह कह कर महेन्द्र चला गया।

उसी समय धोबी ने आकर विनोदिनी से कहा, "बहूजी, मैं और बैठ नहीं सकता। यदि आज तुम लोगों को फुरसत न हो तो कल आकर कपड़े ले जाऊँगा।"

दाई ने आकर कहा, "बहूजी, साईस कहता है कि दाना खतम हो गया।"

विनोदिनी सात दिन के लिए दाना तौलकर अस्तबल में भेज देती थी और खुद खिड़की के पास खड़ी होकर घोड़े का खाना देखती थी।

गोपाल ने आकर कहा, "बहूजी, झगड़ू ने आज बाबू साधुचरण से झगड़ा किया है। वह कहता है कि मिट्टी के तेल का

हिसाब समझ लेने पर वह मालिक से वेतन चुकता लेकर काम छोड़कर चला जायगा।"

संसार का, घर गृहस्थी का, सब काम पहले की तरह चल रहा है।

३४

बिहारी अबतक मेडिकल कालेज में पढ़ता था। ठीक परीक्षा देने के पहले ही उसने पढ़ना छोड़ दिया। कोई भी उसकी पढ़ाई छोड़ने पर आश्चर्य प्रकट करता तो वह कहता था, 'दूसरे का स्वास्थ्य तो पीछे देखूँगा, इस समय अपने स्वास्थ्य की रक्षा होनी चाहिये।"

असल बात तो यह है कि बिहारी पर अनेक कामों का भार था। बराबर कुछ न करने से उसे चैन नहीं मिलता था, परन्तु यश की तृष्णा रुपये का लोभ या जीविका के लिए धनोपार्जन आदि किसी बात की चिन्ता उसे जरा भी नहीं थी। कालेज से डिग्री लेकर वह शिवपुर इञ्जीनियरिङ्ग पढ़ने गया था। जितनी बातें जान लेने की उसे चाह थी, और हाथ के काम करने में जितनी दक्षता प्राप्त करना वह जरूरी समझता था उसे पूरा करके ही वह मेडिकल कालेज में भरती हुआ। महेन्द्र एक साल पहले ही डिग्री लेकर मेडिकल कालेज में भरती हुआ था। कालेज के छात्रों के छात्रों में महेन्द्र और बिहारी की मित्रता प्रसिद्ध हो चुकी थी। वे लोग हँसी दिल्लगी में इन दोनों को श्यामदेशीय जुड़वाँ भाई कहा करते थे। गत वर्ष महेन्द्र परीक्षा में फेल हो गया तो दोनों मित्र एक ही दर्जे में सहपाठी हो गये।

इसी समय अचानक जोड़ी कैसे टूट गयी, यह छात्रों में से कोई भी न समझ सका। रोज जिस स्थान पर महेन्द्र से मुलाकात होगी ही, फिर भी अधिक देर तक न होगी, वहाँ बिहारी किसी तरह भी नहीं जाता। सभी जानते थे कि बिहारी अच्छी तरह पास करके अवश्य ही सम्मान और पुरस्कार प्राप्त करेगा, किन्तु उसने परीक्षा ही नहीं दी।

बिहारी के घर के पास एक छोटी झोपड़ी में राजेन्द्र चक्रवर्ती नामक एक गरीब ब्राह्मण रहता था, छापेखाने में बारह रुपये मासिक वेतन पर नौकरी करके वह अपनी जीविका चलाता था। बिहारी ने उससे कहा, "तुम अपने लड़के को मेरे पास रहने दो, मैं खुद उसे लिखना पढ़ना सिखाऊँगा।"

ब्राह्मण की भारी रक्षा हुई। खुश होकर उसने अपने आठ वर्ष की उम्र के लड़के को जिसका नाम बसन्त था, बिहारी को सौंप दिया।

बिहारी उसे अपने ढंग से शिक्षा देने लगा। उसने कहा, "दस वर्ष की अवस्था के पहले मैं इसे किताब पढ़ने को नहीं दूंगा, सब जबानी ही सिखाऊँगा। उसके साथ खेल-खेलकर उसे अपने साथ लेकर मैदान में, म्युजियम में, अलीपुर की पशुशाला में, शिवपुर के बगीचे में घूम-घूमकर बिहारी दिन दिन बिताने लगा। बिहारी उसे जबानी अंग्रेजी बोलना सिखाता, इतिहास कहानियाँ सुनाता, तरह तरह के उपयोगों से बालक की चित्तवृत्ति की परीक्षा करता और उस वृत्ति को पुष्ट बनाता रहता—सारा दिन उसके लिए ये ही सब काम थे। वह क्षणभर के लिए भी अपने को काम से खाली नहीं रखता था।

उस दिन शाम को कहीं बाहर जाने की गुञ्जाइश नहीं थी। दोपहर को वर्षा रुक जाने के बाद फिर तीसरे पहर से वर्षा शुरू हो गयी है। विहारी मकान के दूसरे खण्ड के बड़े कमरे में बत्ती जलाकर वसन्त के साथ अपने नये ढंग का खेल खेल रहा था।

वसन्त, इस कमरे में कितनी धरनें हैं, झटपट बोलो। नहीं, गिन न सकोगे।

वसन्त—बीस हैं।

विहारी—"हार हो गयी, अठारह हैं।"

झटपट किवाड़ की खड़खड़ी खोलकर विहारी ने पूछा—"इस खड़खड़ी में कितने पल्ले हैं? यह कहकर खड़खड़ी छोड़कर बन्द कर दी।

वसन्त ने कहा—"छः हैं।"

"जीत हुई। यह बेंच कितनी लम्बी होगी? उस किताब का वजन कितना है?" इस तरह प्रश्न करके विहारी वसन्त के इन्द्रियों का ज्ञान बढ़ा रहा था, ऐसे ही समय में कहार ने आकर कहा, "बाबूजी, एक औरत—"

बात अभी खतम भी नहीं होने पायी कि तबतक विनोदिनी कमरे में आकर हाजिर हो गयी।

बिहारी ने आश्चर्य में पड़कर कहा—"यह क्या किया, भाभी?"

विनोदिनी ने कहा—"तुम्हारे यहाँ क्या तुम्हारे घर की औरतों में से कोई नहीं है?"

विहारी—"न कोई घर की औरत हैं, न कोई बाहरी ही हैं। बूआजी हैं जो गाँव के मकान पर रहती हैं।"

विनोदिनी—"तो तुम अपने गाँव के मकान पर मुझे ले चलो।"

बिहारी—"वहाँ मैं तुम्हें क्या कहकर ले जाऊँगा ?"

विनोदिनी—"दासी कहकर। वहाँ मैं घर का काम काज करूँगी ?"

बिहारी—"बूआजी कुछ आश्चर्य में पड़ जायँगी। उन्होंने कभी दासी न रहने के कारण तकलीफ की शिकायत मुझसे नहीं की। पहले यह तो बताओ तुम्हारे मन में ऐसी इच्छा कैसे उत्पन्न हुई ? बसन्त, तुम अब जाओ, सो रहो।"

बसन्त चला गया। विनोदिनी ने कहा, "बाहर की घटना सुनकर तुम घर भीतर की कुछ भी बात न समझ सकोगे।

बिहारी—मान लो, यदि नहीं ही समझा, या गलत ही समझ लूँ, तो इससे क्या नुकसान होगा ?

विनोदिनी—अच्छा, न हो गलत ही समझ लो। महेन्द्र मुझे प्यार करता है।

बिहारी—यह खबर तो नयी नहीं है और ऐसी भी खबर नहीं है जिसे दूसरी बार सुनने की इच्छा हो।

विनोदिनी—मुझे भी बार-बार सुनने की इच्छा नहीं है। इसीलिए तुम्हारे पास आयी हूँ, मुझे आश्रय दो।

बिहारी—तुम्हारी इच्छा नहीं है ? इस विपत्ति को किसने पैदा किया ? महेन्द्र जिस मार्ग से जा रहा था, उस मार्ग से उसे किसने भ्रष्ट किया ?

विनोदिनी—मैंने किया। तुमसे नहीं छिपाऊँगी। यह सब काम मेरा ही है। मैं बुरी हूँ, या जो हूँ, इस बार मेरी तरह होकर मेरे हृदय का हाल समझने की चेष्टा करो। अपने हृदय की ज्वाला से ही मैंने महेन्द्र के घर में आग लगायी है। एक बार मुझे मालूम हुआ था कि मैं महेन्द्र को प्यार करती हूँ, किंतु यह मेरी भूल थी।

बिहारी—जो प्यार करता है, वह क्या इस तरह आग लगा सकता है ?

विनोदिनी—बिहारी बाबू, यह तुम्हारे शास्त्र की बात है। अबतक भी उन बातों को सुनने योग्य मेरी मति नहीं हुई है। बिहारी बाबू, अपना ग्रन्थ एक किनारे रखकर एक बार अन्तर्यामी की तरह मेरे हृदय के अन्दर दृष्टि डालो। मैं अपना भला बुरा सब आज तुमसे खोलकर कहना चाहती हूँ।

बिहारी—क्या शौक से ग्रन्थ खोलकर रखता हूँ भाभी, हृदय को हृदय के ही नियमों से समझने का भार अन्तर्यामी के ही ऊपर रहने दो। हम लोग यदि शास्त्र देखकर उसके विधान के अनुसार न चलें तो अन्त में कुछ टगाये नहीं जा सकते।

विनोदिनी—सुनो बिहारी बाबू, मैं निर्लज्ज होकर कह रही हूँ। तुम मुझे इस काम से लौटा सकते थे। महेन्द्र मुझे जरूर प्यार करता है, किन्तु वह बिलकुल ही अन्धा है, मुझे एकदम पहचानता नहीं। एक बार जान पड़ा था कि तुमने मुझे पहचाना है—एक बार तुमने मुझपर श्रद्धा भी की थी—सच बोलो, उस बात को आज छिपाने की चेष्टा मत करो।

बिहारी—सच ही कह रहा हूँ, मैंने तुमपर श्रद्धा की थी।'

विनोदिनी—तुमने भूल नहीं की बिहारी बाबू, किन्तु यदि पहचाना ही था और मुझपर श्रद्धा ही थी तो वहीं पर क्यों रुक गये ? मुझे प्यार करने में तुम्हें कौन रुकावट थी ? मैं आज निर्लज्ज होकर कह रही हूँ—तुमने भी मुझे क्यों नहीं प्यार किया ? मेरा भाग्य फूटा है। तुम भी, सुनती हूँ आशा के प्यार में डूब गये। नहीं, तुम क्रोध न कर सकोगे। बैठो बिहारी बाबू मैं कोई बात छिपाकर न कहूँगी। तुम आशा को प्यार करते हो, यह बात जब तुम स्वयं नहीं जानते थे, उस समय भी मैं जानती

थी। किन्तु यह बात मेरी समझ में नहीं आयी कि आशा में तुम लोगों ने क्या देख पाया है। भला या बुरा, उसमें है क्या? विधाता ने क्या पुरुषों को दृष्टि के साथ अन्तर्दृष्टि नहीं दी है? तुम लोग देखकर और कितना देखकर मुग्ध हो जाते हो? तुम लोग बिलकुल ना समझ हो। अन्धे हो।"

बिहारी उठकर खड़ा हो गया और बोला—"आज तुम मुझको कुछ सुनाओगी, सब मैं सुन लूँगा, किन्तु जो बात कहने की नहीं है, वह बात कुछ न कहना, तुमसे मेरी यही नम्र प्रार्थना है।"

विनोदिनी—"बिहारी बाबू, तुमको कहाँ चोट लग रही है, यह मैं जानती हूँ—किन्तु जिसकी श्रद्धा मैंने पायी थी और जिसका प्रेम पाने से मेरा जीवन सार्थक हो जाता, उसके पास, इस रात के समय, भय लज्जा सब छोड़कर आयी हूँ, वह कितनी बड़ी व्यथा में पकड़कर! यह समझकर कुछ धैर्य धारण करो। मैं सच ही कहती हूँ, यदि तुम आसा को प्यार नहीं करते तो मेरे द्वारा इसका ऐसा सर्वनाश नहीं होता।"

बिहारी ने उदास होकर कहा—"आशा का क्या हुआ है? तुमने उसका क्या किया है?"

विनोदिनी—"महेन्द्र अपना सब घर द्वार छोड़कर कल मुझे अपने साथ लेकर, कहीं चले जाने को तैयार है।"

बिहारी ने एकाएक गरजकर कहा—"यह कभी नहीं हो सकता। किसी तरह भी ऐसा नहीं हो सकता।"

विनोदिनी—किसी तरह भी नहीं? महेन्द्र को आज कौन रोककर रख सकता है?"

बिहारी—"तुम रोक सकती हो।"

विनोदिनी थोड़ी देर तक चुप रही। इसके बाद उसने

बिहारी के मुँह की तरह नजर स्थिर रखकर कहा—"किसके लिए रोक रखूँगी ? क्या तुम्हारी आशा के लिए ? क्या मेरा अपना सुख दुःख कुछ भी नहीं है ? तुम्हारी आशा की भलाई हो, महेन्द्र की घर गृहस्थी अच्छी रहे इसीलिये क्या मैं अपने इस जन्म की सभी माँगों को तिलांजलि दे दूँ, इतनी भली मैं नहीं हूँ। मैं जो छोड़ दूँगी, उसके बदले में मुझे क्या मिलेगा ?"

बिहारी के मुख का भाव क्रमशः अत्यन्त कठोर हो उठा। उसने कहा—"तुमने अनेक स्पष्ट बातें कहने की चेष्टा की है, इस बार मैं भी एक स्पष्ट बात कहता हूँ। तुमने आज जो काण्ड कर डाला है और इस समय तुम जो बातें कर रही हो, इन सब में से अधिकतर तुमने जो साहित्य पढ़ा है उसीसे चुराये गये हैं। इनमें बारह आना नाटक या नाविल है।'

विनोदिनी—नाटक ! नाविल !

बिहारी—हाँ, नाटक, नाविल। सो वे भी खूब ऊँचे दर्जे के नहीं। तुम समझती हो कि ये सब तुम्हारे अपने हैं, किन्तु बात ऐसी नहीं है। ये सभी छापेखाने की प्रतिध्वनि मात्र हैं। यदि तुम बिलकुल ही अबोध मूर्ख सरल बालिका होती, तो भी तुम को संसार में प्रेम से वंचित न रहना पड़ता। किन्तु नाटक की नायिका स्टेज के ऊपर ही शोभा पाती है। उसे घर में रखने से काम नहीं चलता।

कहाँ चला गया विनोदिनी का वह तीव्र तेज और दुःसह दर्प ? मन्त्रमुग्ध सर्पिणी की भाँति वह एकदम झुक गयी। बहुत देर के बाद, बिहारी के मुँह की तरफ बिना देखे ही शान्त और नम्र स्वर में कहा—"तुम मुझसे क्या करने के लिए कहते हो?"

"बिहारी ने कहा—कोई असाधारण काम करने की इच्छा

मत करो, साधारण स्त्री की शुद्ध बुद्धि जो कहे, वही करो। अपने गाँव पर चली जाओ।"

विनोदिनी—कैसे जाऊँ।'

बिहारी—रेलगाड़ी के जनाना डिब्बे में सवार कराकर मैं तुमको तुम्हारे गाँव के स्टेशन तक पहुँचा आऊँगा।

विनोदिनी—तो आज रात को मैं यहीं ठहर जाऊँ।

बिहारी—नहीं इतना विश्वास मुझे अपने ऊपर नहीं है।

सुनते ही उसी क्षण विनोदिनी कुर्सी से जमीन पर लोट गयी और बिहारी के दोनों पैर पूरी ताकत से अपनी छाती में दबाकर बोली, "इतनी दुर्बलता रहने दो बिहारी बाबू, एकदम पत्थर के देवता की तरह पवित्र न बन जाओ।"

यह कहकर विनोदिनी ने बिहारी के दोनों पैरों को बार-बार चूम लिया। विनोदिनी के इस अकाल्पनिक व्यवहार से क्षणकाल के लिए बिहारी मानों अपने मन को सम्हाल न सका। उसके शरीर मन की सभी गाँठें मानो शिथिल हो उठीं। बिहारी के इस स्तब्ध, विह्वल भाव का अनुभव करके उसके पैर छोड़कर विनोदिनी अपने दोनों घुटनों पर टेककर खड़ी हो गयी और कुर्सी पर बैठे हुए बिहारी के गले को अपने दोनों हाथों से लपेटकर कहने लगी, 'जीवनसर्वस्व, मैं जानती हूँ कि तुम चिरकाल के लिए मेरे नहीं हो सकते, किन्तु आज एक मुहूर्त के लिए तुम मुझे प्यार करो। इसके बाद मैं अपने उसी जंगल में चली जाऊँगी, किसी से कुछ न चाहूंगी। प्यारे, आज मुझे तुम ऐसी कोई चीज दो, जिसे मैं मरने के समय तक अपने मन में रख सकूँ।' यह कहकर विनोदिनी ने अपनी आँखें बन्द कर अपने ओठ और कपोल बिहारी के मुख के पास वक्र बढ़ा दिये। मुहूर्त भर के लिए दोनों ही निश्चल हो गये और समूचा कमरा

निस्तब्ध हो रहा। इसके बाद लम्बी साँस लेकर बिहारी विनोदिनी का हाथ छुड़ाकर दूसरी कुर्सी पर जा बैठा और अपने रुँधे हुए कंठस्वर को साफ करके कहा—रात को एक बजे एक पसिंजर गाड़ी उधर जाती है।'

विनोदिनी कुछ देरतक स्तब्ध हो रही, फिर उसने अस्पष्ट स्वर में कहा—"उसी ट्रेन से जाऊँगी।"

ऐसे ही समय में नंगे पैर और नंगे बदन बसन्त अपना परिपुष्ट गोरा सुन्दर शरीर लिये बिहारी की कुर्सी के पास आकर खड़ा हो गया और गम्भीर भाव से विनोदिनी की तरफ देखने लगा।

बिहारी ने पूछा—"अबतक सोने नहीं गया?" बसन्त कुछ भी उत्तर न देकर उसी तरह गम्भीर भाव से खड़ा रहा।

विनोदिनी ने उसकी तरफ दोनों हाथ बढ़ा दिये। बसन्त पहले पहल कुछ दुविधा में पड़ गया पर फिर धीरे-धीरे विनोदिनी के पास चला गया। विनोदिनी उसे अपने दोनों हाथों से छाती में सटाकर झर-झर आँसुओं की धारा बहाने लगी।

३५

जो असम्भव है, वह भी सम्भव हो जाता है और जो असह्य है, वह भी सह्य हो जाता है—यदि ऐसा न होता तो महेन्द्र के घर में उस दिन की वह रात उस तरह न कटती। महेन्द्र विनोदिनी को अपने साथ चलने के लिए तैयार रहने की

सलाह देकर थोड़ी दूर पर अपने किसी परिचित सहपाठी के यहाँ चला गया और उसी रात को विनोदिनी के पास एक पत्र भी उसने लिख भेजा। वही पत्र दूसरे दिन सवेरे महेन्द्र के घर पहुँचा।

आशा अभी बिछौने पर लेटी हुई थी, कहार पत्र हाथ में लिये आया और बोला—"बहूजी चिट्ठी है।"

आशा के हृदय में बड़ा भारी धक्का लगा। एक क्षण में हजारों आश्वास और आशंकाएँ उसके हृदय में उत्पन्न हो गयीं। जल्दी से सिर उठाकर, चिट्ठी को लेकर उसने देखा कि वह महेन्द्र के हाथ की लिखी है और विनोदिनी के नाम से भेजी गयी है। उसी समय तुरत ही उसका सिर तकिये पर गिर गया, कुछ भी न कहकर उसने वह चिट्ठी कहार को लौटा दी।

कहार ने पूछा—"चिट्ठी किसको देनी होगी ?"

आशा ने कहा—"मैं नहीं जानती।"

उस समय रात के आठ बजे होंगे, महेन्द्र झटपट तूफान की भांति विनोदिनी के कमरे के सामने आ खड़ा हुआ। उसने देखा कि कमरे में प्रकाश नहीं है—अन्धकार छाया हुआ है। जेब से दियासलाई की डिबिया निकालकर उसने दियासलाई जलायी और देखा कि कमरा सूना पड़ा हुआ है। विनोदिनी नहीं है, उसका सामान भी नहीं। दक्षिण तरफ के बरामदे में आकर देखा, बरामदा भी सुनसान है। उसने पुकारा—"विनोद!" पर कुछ भी उत्तर नहीं मिला। बेवकूफ ! मैं बेवकूफ हूँ। उसी समय उसे अपने साथ ले जाना उचित था। जरूर ही माँ ने विनोदिनी को ऐसी झिड़की दी है जिससे वह यहाँ न रह सकी।"

यह कल्पना मन में आते ही उसे इसकी सत्यता पर विश्वास हो गया। महेन्द्र अधीर होकर उसी क्षण माँ के कमरे में गया।

उस कमरे में भी प्रकाश नहीं था, किन्तु राजलक्ष्मी बिस्तर पर लेटी हुई हैं, यह उस अँधेरे में भी उसे मालूम हो गया। महेन्द्र एकदम ही रूखे स्वर में बोल उठा—"माँ' 'तुम लोगों ने विनोदिनी को क्या कहा सुना है ?'

राजलक्ष्लो ने कहा—"मैने तो कुछ भी नहीं कहा।"

महेन्द्र—तो वह कहां चली गयी ?

राजलक्ष्मी—मैं क्या जानूँ।

महेन्द्र ने अविश्वास के स्वर में कहा—' तुम नहीं जानती ? अच्छा, मैं उसका पता लगाने जाता हूँ, वह चाहे जहाँ ही हो, मैं उसे बाहर निकालूँगा।"

यह कह कर महेन्द्र चला गया। राजलक्ष्मी झटपट बिछौने से उठकर उसके पीछे जाती हुई कहने लगीं—"महीन' मत जा, लौट आ, मेरी एक बात सुन कर जा।"

महेन्द्र एक श्वास में दौड़ता हुआ मकान से निकल गया। क्षणभर में फिर लौटकर दरवान से उसने पूछा—"बहू कहाँ गयी है ?"

दरवान ने कहा,—"हम लोगों से कुछ कह नहीं गयीं, हम लोग कुछ भी नहीं जानते।"

महेन्द्र ने डाँटकर झिड़की देते हुए कहा—"क्या तुम नहीं जानते ?"

दरवान ने हाथ जोड़ कर कहा—"नहीं महाराज मैं नहीं जानता।"

महेन्द्र ने अपने मन में निश्चय कर लिया कि माँ ने इन लोगों को कुछ न बताने के लिए सिखा दिया है। कहा—अच्छा यही सही।"

उस समय महानगरी की सड़क पर गैस की रोशनी से बिंधे हुए सन्ध्या के अन्धकार में बरफ वाले 'बरफ चहिए' और दूसरे सौदेवाले अपनी चीजों के नाम लेकर फेरी लगा रहे थे। कलरव से पूर्ण भीड़ के भीतर महेन्द्र घुस गया और अदृश्य हो गया।

३६

अकेला बैठ कर अँधेरी रात में बिहारी कभी ध्यान करने नहीं बैठता। किसी समय भी बिहारी ने अपने को अपना आलोच्य विषय नहीं बनाया। वह पढ़ने-लिखने, कामकाज, इष्ट मित्र और बन्धु बान्धवों आदि लोगों के बारे में ही सोचा करता था। अपनी अपेक्षा चारों तरफ के अन्य लोगों को प्रधानता देकर वह आनन्द पाता था। किन्तु हठात् एक दिन उसके चारों तरफ के सब लोग मानो उससे अलग हो गये, प्रलय के अन्धकार में, वेदना के गगनभेदी पर्वत शिखर पर उसे अकेले खड़ा रहना पड़ा। उसी दिन से वह अपने अकेलेपन के साथ से डरने लगा। जबर्दस्ती अपने कन्धे पर काम लाद कर वह कभी उस साथी को अवकाश नहीं लेने देना चाहता।

किन्तु आज वह किसी तरह भी अपने उस अन्तरवासी को ठेलकर न रख सका। कल विनोदिनी को वहाँ उसके गाँव पर पहुँचाकर लौट आया है ? तभी से वह चाहे जिस काम में चाहे जिस आदमी के साथ ही रहता है, उसका गुहाशायी

वेदनातुर हृदय उसे अपनी निगूढ़ निर्धनता की तरफ बराबर घसीटता रहता है।

थकावट और अवसाद ने आज विहारी को परास्त कर दिया। इस समय रात के नौ बजे होंगे। विहारी के घर के सामनेवाली दक्षिण तरफ की छत पर दिन के अन्त समय की ग्रीष्मकालीन वायु के झकोरे बह रहे हैं। चन्द्रोदयहीन अन्धकार में छत पर एक कुर्सी डालकर वह बैठा हुआ है।

आज सन्ध्या को उसने बसन्त को नहीं पढ़ाया, बहुत जल्द ही आज उसे उसने छुट्टी दे दी है। आज सान्त्वना के लिए साथ के लिए, अपने चिराभ्यस्त प्रीतिसुधास्निग्ध पुनर्जीवन के लिए उसका हृदय मानो माता द्वारा त्यागे हुए बच्चे की भांति विश्वव्यापी अन्धकार के बीच दोनों हाथ उठाकर किसी को खोजता हुआ घूम रहा है। आज उसकी दृढ़ता और कठोर संयम का बाँध टूटकर कहाँ चला गया है? विहारी ने जिनके बारे में कुछ भी न सोचने का प्रण किया था, उन्हीं की तरफ उसका हृदय दौड़ा चला जा रहा है, उसका मार्ग रोक रखने के लिये उसके पास लेशमात्र भी बल नहीं है।

महेन्द्र के साथ बचपन की दोस्ती से लेकर उस दोस्ती के अन्त तक की सभी बातें जो लम्बी कहानी अनेक वर्णों से चित्रित थी, जल स्थल पर्वत नदियों से भरे मानचित्र की भांति उसके मन में लिपटी हुई थी, उसे विहारी ने बहुत ही विस्तृत कर दिया। जिस छोटे जगत पर अपने जीवन की स्थापना की थी, वह किस स्थान पर किस दुर्ग्रह से टकरा गया, उसी को वह ध्यान देकर देखने लगा। पहले बाहर से कौन आया? यह प्रश्न उठते ही सूर्यास्त समय की करुण लाल छटा से आभासित आशा का लज्जामण्डित मुख अन्धकार में अंकित हो उठा, उसके साथ

साथ मंगल उत्सव की शंखध्वनि उसके कानों में बजने लगी। यह शुभ ग्रह अदृष्ट आकाश के अज्ञात प्रान्त से आकर दोनों बन्धुओं के बीच में आकर खड़ा हो गया—मानो उसने दोनों में कुछ भेदभाव उत्पन्न कर दिया, फिर न मालूम उसने कहाँ से एक ऐसी गूढ़ वेदना लाकर उपस्थित कर दी, जो मुँह से कहने योग्य नहीं है और जो मन में भी लालन करने योग्य नहीं है। किन्तु फिर भी यह विच्छेद, यह वेदना अपूर्व स्नेहरंजित माधुर्य रश्मि से आच्छादित और परिपूर्ण हो गयी।

इसके बाद जिस शनिग्रह का उदय हुआ, उसने मित्रों के प्रणय, पति पत्नी के प्रेम को, गृह की शान्ति और पवित्रता को एकदम छार-खार कर डाला। विहारी ने प्रबल घृणा के साथ उस विनोदिनी को अपने समस्त अन्तःकरण से दूर ढकेल देने की चेष्टा की। किन्तु यह कैसा आश्चर्य है! वह आघात मानो अत्यन्त कोमल हो गया, मानो विनोदिनी को छू भी न सका। वह परम सुन्दरी पहेली अपनी दुर्भेद्य रहस्यपूर्ण अनिमेष दृष्टि लेकर कृष्णपक्ष के अन्धकार में विहारी के सामने स्थिर भाव से खड़ी हो गई। गर्मी की रात में उच्छ्वसित दक्षिण पवन उसी के घन निःश्वास की तरह विहारी के शरीर पर आकर पड़ने लगा। धीरे-धीरे उस पलकहीन आँखों की ज्वालामयी ज्योति मलिन होने लगी, हृदय की प्यास से सूखी हुई वह खर दृष्टि आँसुओं के जल से सिंचकर, स्निग्ध होकर, देखते ही देखते गम्भीर भाव के रस से भर उठी, क्षणभर में उस मूर्ति ने बिहारी के पैरों के पास गिरकर उसके दोनों घुटनों को पूरा जोर लगाकर अपनी छाती में दबा लिया, इसके बाद उसने एक मनोहर मायालता की भाँति क्षणमात्र समय के बीच ही बिहारी को लपेटकर, बढ़कर, ताजी खिली सुगन्धित की मंजरी

की भाँति अपना चुम्बनोन्मुख बिहारी के ओठों के पास लाकर रख दिया। बिहारी आँखें बन्द करके उस मूर्ति को स्मृतिलोक से निर्वासित कर देने की चेष्टा करने लगा, किन्तु किसी तरह भी उस पर आघात पहुँचाने के लिए मानो उसका हाथ नहीं उठा। एक असम्पूर्ण व्याकुल चुम्बन उसके मुख के पास आसन्न बना रह गया। वह एकदम रोमांचित हो उठा।

बिहारी छत के निर्जन अन्धकार में और अधिक देर तक ठहर न सका और किसी तरफ अपना मन लगाने के लिए वह झटपट दीप से प्रकाशित कमरे में चला गया।

कोने में तिपाई पर रेशमी कपड़े से ढकी एक फ्रेमदार तसवीर रखी हुई थी। बिहारी उस कपड़े को हटाकर उस तसवीर को अपने हाथ में लेकर प्रकाश के पास बैठ गया और फिर उसे अपनी गोद में रखकर देखने लगा।

तसवीर महेन्द्र और आशा की थी और विवाह के थोड़े दिन बाद उतारी गयी थी। तसवीर के पीछे महेन्द्र ने अपने हाथ से 'महीन' आशा ने अपने हाथ से 'आशा' लिख दिया था। तसवीर में नवविवाह का वह मधुर दिन कुछ भी कम नहीं मालूम होता था। महेन्द्र चौकी पर बैठा हुआ है, उसके चेहरे पर नये विवाह का एक नवीन सरस भावावेश झलक रहा है। पास ही आशा खड़ी है तसवीर खींचनेवाले ने उसे घूँघट काढ़ने नहीं दिया था, किन्तु उसके मुँह से लज्जा भाव न हटा सका। महेन्द्र अपनी सहचरी आशा को रुलाकर कितनी दूर चला जा रहा है, किन्तु जड़ चित्र ने महेन्द्र के मुँह पर से नवीन प्रेम की एक रेखा भी बदलने नहीं दी, वह कुछ भी न समझकर मूढ़ भाव से अदृष्ट के परिहास को स्थायी बना रहा है।

इसी तसवीर को गोद में लेकर बिहारी ने धिक्कार के द्वारा विनोदिनी को अपने हृदय से दूर कर देना चाहा। किंतु विनोदिनी के प्रेमकातर यौवन से कोमलता प्राप्त दोनों हाथ बिहारी के पैरों को पकड़े रहे। बिहारी ने मनही मन कहा, 'ऐसा सुन्दर प्रेम का संसार तुमने बिगाड़ दिया।' किन्तु विनोदिनी का वह ऊपर उठा हुआ व्याकुल मुख का चुम्बन-निवेदन उससे चुपचाप कहने लगा, 'मैं तुमको प्यार करती हूँ। सारे संसार भर में मैंने तुमको ही चुनकर वरण किया।'

किन्तु बिहारी के प्रश्न का क्या यही ठीक जवाब है ? क्या यह बात एक बिगड़े हुए घर के दारुण आर्तनाद को छिपा सकती है ? बिहारी ने विनोदिनी का स्मरण करके कहा-पिशाची !'

'पिशाची !' क्या यह बिहारी ने पूरी भर्त्सना के भाव से कहा, या इसके साथ कुछ आदर का स्वर भी मिला था ? जिस समय बिहारी अपने समस्त जीवन के सभी प्रेम की माँगों से वंचित होकर एकदम दरिद्र भिखारी रास्ते में आकर खड़ा हुआ है, उस समय भला बिहारी यथोचित अपरिमित प्रेम के उपहार को उपेक्षा करके क्या फेंक सकता है ? इसकी बराबरी का उपहार अबतक बिहारी को क्या मिला है ? इतने दिनों तक अपना सारा जीवन दूसरों के लिए अर्पित करके, केवल प्रेम भण्डार के टुकड़े माँगकर दिन काट रहा था। प्रेम की अन्नपूर्णा ने सोने की थाली भरकर केवल उसी के लिए भेज दिया है, अभागा बिहारी किस दुविधा में पड़कर अपने को वंचित रखेगा ?

चित्र को अपनी गोद में रखकर इस तरह की बहुत सी बातें सोचता हुआ बिहारी आलोचना कर रहा था कि उसी समय पास ही का शब्द सुनकर वह चौंक उठा। आँखें उठाकर देखा

कि महेन्द्र आ गया है। चकित होकर वह उठ खड़ा हुआ, पर उसकी गोद से वह तसवीर कार्पेट पर गिर पड़ी—उसपर उसका ध्यान नहीं गया।

महेन्द्र आने के साथ ही बोल उठा, 'विनोदिनी कहाँ है ?'

बिहारी कुछ आगे बढ़कर महेन्द्र के निकट गया और उसका हाथ पकड़कर बोला, 'महीन भैया, जरा बैठो भाई, सब बातों की आलोचना की जायगी।'

महेन्द्र ने कहा, 'मुझे बैठने और आलोचना करने का समय नहीं है। बताओ विनोदिनी कहाँ है।'

बिहारी ने कहा—'तुम जो प्रश्न कर रहे हो उसका उत्तर एक ही बात में नहीं दिया जा सकता। तुम्हें इसके लिए स्थिर होकर बैठना पड़ेगा।'

महेन्द्र ने कहा—'उपदेश दोगे ? उपदेश की ऐसी बातें मैं बचपन में ही पढ़ चुका हूँ।'

बिहारी—'नहीं, उपदेश देने का अधिकार मुझे नहीं है और मुझमें शक्ति भी नहीं है।'

महेन्द्र—'तो क्या भर्त्सना करोगे ? मैं जानता हूँ कि मैं पाखण्डी हूँ, मैं नराधम हूँ, और तुम जो कुछ कहना चाहते हो, सो सब मैं समझता हूँ- किन्तु बात यह है कि विनोदिनी कहाँ है यह तुम जानते हो या नहीं ?'

बिहारी-'जानता हूँ।'

महेन्द्र-'क्या मुझे नहीं बतलाओगे ?'

बिहारी-'नहीं।'

महेन्द्र-बतलाना ही पड़ेगा। तुमने उसे फुसलाकर यहाँ लाकर छिपा रखा है। वह मेरी है उसे लौटा दो।'

बिहारी क्षणकाल तक स्तब्ध हो रहा। उसके बाद दृढ़ स्वर में बोला—'वह तुम्हारी नहीं है। मैं उसे फुसलाकर यहाँ नहीं लाया, वह स्वयं मेरे पास चली आयी है।'

महेन्द्र ने गरजकर कहा—'झूठ बोल रहे हो।' यह कहकर वह पास के दूसरे कमरे में बन्द दरवाजे पर धक्का दे देकर पुकारने लगा, 'विनोद, विनोद।'

कमरे के अन्दर से रोने की आवाज सुनकर महेन्द्र बोल उठा—'कुछ भी डर नहीं है विनोद! मैं महेन्द्र हूँ। मैं तुमको छुड़ाकर ले जाऊँगा, कोई तुमको बन्द करके न रख सकेगा।'

यह कहकर ज्योंही महेन्द्र ने खूब जोर लगाकर धक्का दिया कि दरवाजा खुल गया। तेजी से भीतर घुसकर देखा कि कमरे में बिलकुल अन्धेरा है। अस्पष्ट छाया की भाँति उसे देख पड़ा कि बिछौने पर मानो कोई भय से सिकुड़कर सिसककर तकिये से लिपट गया। बिहारी ने झटपट कमरे में जाकर बसन्त को बिछौने से अपनी गोद में उठा लिया और सान्त्वना के स्वर में कहा, 'डर नहीं है बसन्त, डर नहीं है, कोई डर नहीं है।'

महेन्द्र तब जल्दी से उस कमरे से बाहर निकलकर मकान भर के सभी कमरों को देखने लगा। जब कहीं विनोदिनी का पता नहीं चला तो फिर वहीं लौट आया। उस समय भी बसन्त भयसे रहरहकर रो उठता था। उसके कमरेमें बत्ती जलाकर उसे बिस्तरे पर लिटाकर उसकी पीठ पर हाथ फेरकर बिहारी उसे सुलाने की चेष्टा कर रहा था।

महेन्द्र ने आकर कहा—'विनोदिनी को तुमने कहाँ रखा है'?

बिहारी ने कहा, 'महीन भैया, गड़बड़ मत मचाओ, तुमने अकारण ही इस बालक को डरा दिया है, इससे इसकी तबीयत

खराब हो जा सकती है ! मैं कहता हूं, विनोदिनी को खबर से तुम्हारा कोई मतलब नहीं है ।'

महेन्द्र ने कहा, साधु महात्मा धर्म का आदर्श मेरे सामने मत खड़ा करो । मेरी स्त्री की यह तसवीर गोद में रखकर रात को तू किस देवता का ध्यान करके कौनसा पुण्य मन्त्र जप रहा था ? पाखण्डी !'

यह कहकर महेन्द्र ने उस तसवीर को जमीन पर फेंक दिया और उसे जूता समेत पैरों से रौंदकर शीशे को टुकड़े-टुकड़े कर डाला, और उसमें से चित्र निकालकर उसे फाड़कर टुकड़े-टुकड़े करके बिहारी के ऊपर फेंक दिया ।

महेन्द्र की ऐसी उन्मत्त दशा देखकर वसन्त फिर डरकर रो उठा । बिहारी का गला प्रायः रुँधसा गया—दरवाजे की तरफ हाथ से इशारा करके कहा-'जाओ ।'

महेन्द्र तूफान की भाँति तेजी से बाहर चला गया ।

—o—

३७

विनोदिनी जब यात्रियों से खाली जनानी गाड़ी में सवार होकर खिड़की से खेतों और वृक्षों से घिरे गांवों को एक-एक करके देखने लगी तो उसके मन में स्निग्ध एकांत ग्राम्य जीवन की याद आ गयी । वृक्षों की छाया के घेरे के अन्दर अपने बनाये हुए कल्पना के घोंसले में अपनी प्यारी पुस्तकों को लेकर कुछ दिनों तक नगरनिवास के समस्त क्षोभ, जलन और घाव की वेदना से छुटकारा पाकर शान्तिपूर्वक जीवन बिता सकेगी यही विचार उसके मन में आने लगा ।

गर्मी के शस्यशून्य दिगन्तप्रसारित मटमैल मैदान में सूर्य के अन्त होने का दृश्य देखकर विनोदिनी सोचने लगी—'अब किसी दूसरी चीज की जरूरत नहीं है। उसके मन में यह ख्याल आया कि' इसी तरह सुवर्णरंजित निस्तब्ध और विस्तीर्ण शांति में डूबकर और दूसरी सभी बातों को भूलकर आँखें बन्द कर लूँ, जीवन की नौका को तरंगों के आन्दोलन से विक्षुब्ध सुख-दुःख सागर के पार तट पर ले जाकर शब्दहीन सन्ध्या के समय कम्पहीन वटवृक्ष के नीचे बाँध दूँ, और किसी भी चीज की मुझे जरूरत नहीं है। गाड़ी चली जा रही थी, कहीं-कहीं, आम के बगीचों में आनेवाली मुकुलों की गन्ध से गाँवों की स्निग्ध शान्ति ने उसके मन को एकदम आविष्ट कर दिया। उसने अपने मन में कहा, 'खूब हुआ, अच्छा ही हुआ, अपने को ही लेकर और खींचातानी मैं नहीं कर सकती—अब सब भूल जाऊँगी, सो रहूंगी, गाँव की लड़की बनकर घर के और कामकाज में सन्तोष के साथ और आराम के साथ जीवन बिता दूंगी।'

तृषित हृदय में यह शान्ति की आशा रखकर विनोदिनी ने अपनी कुटिया में प्रवेश किया। किन्तु हाय! शान्ति कहाँ? केवल शून्यता और दरिद्रता विराज रही है। चारों तरफ सब कुछ जीर्ण, अनादृत, गन्दे और मलिन हैं। बहुत दिनों से बन्द सीड़ से भरे कमरे में जाने पर उसकी साँस मानो बन्द होने लगी। घर में जो थोड़ी-सी चीजें थीं वे सब कीड़ों के काटने से, चूहों के उत्पात से धूल के आक्रमण से बरबाद हो चुकी हैं। शाम को विनोदिनी अपने घर पहुँची, घर निरानन्द और अन्धकार से पूर्ण था। किसी तरह सरसों के तेल से दिया जलाने

Dear! not to speak of a brawl,
But let you ... "Bawra" — once for all.

पर उसके धुएँ से और क्षीण प्रकाश से कमरे की दीनता और भी अधिक प्रकट हो उठी। पहले जिस हालत से वह दुःख नहीं पाती थी, वह अब उसके लिये असह्य हो उठी। उसका विद्रोही अन्तःकरण दृढ़ता के साथ बोल उठा 'यहां तो एक मुहूर्त भी न रहा जायगा।' ताखे पर पहले की दो चार धूलि से सनी पुस्तकें और मासिक पत्रिकाएँ पड़ी हुई मिलीं, किन्तु उन्हें छूने की भी इच्छा नहीं हुई। बाहर आमके बगीचे में हवा की बिलकुल ही कमी थी और झिल्लियों और मच्छड़ों की भनभनाहट अन्धकार में सुनाई पड़ रही है।

विनोदिनी की जो वृद्धा अभिभाविका थीं, वे घर में ताला लगाकर अपनी लड़की को देखने के लिए दामाद के घर चली गयी थीं। मानो चौंक सी गयी। वे काना फूसी करने लगीं, अरे बाप रे बाप! विनोदिनी का रंग तो बहुत ही साफ हो उठा है, कपड़े-लत्ते बड़े ही ठाट के हैं, मानो मेमसाहब बन गयी है। वे आपस में न मालूम क्या-क्या इशारा करके एक दूसरे का मुँह ताकने लगीं। जो कुछ अफवाहें सुनाई पड़ी थीं उसके साथ मानो लक्षण मिल गये।

विनोदिनी पग-पग पर अनुभव करने लगी कि वह हर तरह से अपने गांव से बहुत दूर चली गयी है। अपने ही घर में उसका निर्वासन हुआ है, कहीं भी उसे मुहूर्त के लिए भी आराम की जगह नहीं है।

डाकघर का बूढ़ा प्यादा लड़कपन से ही विनोदिनी का परिचित था। दूसरे दिन जब विनोदिनी गाँव के तालाब में स्नान करने के लिये गयी और घाट पर उतर ही रही थी कि चमड़ेका बैग लिये प्यादा को उधर से जाते देखकर विनोदिनी अपने को न रोक सकी। अंगौछे को घाट पर ही छोड़कर झटपट उसके

पास जाकर उसने कहा, 'पांचू भैया, क्या मेरी भी कोई चिट्ठी है ?" बूढ़े ने कहा 'नहीं'।

विनोदिनी ने व्यग्र होकर कहा—हो भी सकती है। एक बार देख तो लूँ।"

यह कहकर विनोदिनी ने गांव की थोड़ी छः सात चिट्ठियों को अपने हाथ में लेकर उलट पलटकर देखा, कोई भी उसकी चिट्ठी नहीं थी। उदास मुँह लिये विनोदिनी जब घाट पर लौट आयी तब उसकी एक सखी ने सकौतुक कटाक्ष करके कहा, 'क्योंरी बिन्दी, चिट्ठी के लिए तू इतनी व्याकुल क्यों हो रही है ?"

एक और प्रगल्भ प्रौढ़ा ने कहा 'भला' भला डाक से चिट्ठी आवे, ऐसा भाग्य किसका है ? हमारे तो पति, देवर, भाई सभी परदेश में काम करते हैं किन्तु डाक का प्यादा तो कभी दया नहीं करता।

इसी तरह बात बात में परिहास स्पष्ट और कटाक्ष तीक्ष्ण होने लगा। विनोदिनी बिहारी से प्रार्थना कर आयी थी कि यदि प्रतिदिन न हो सके तो कम से कम सप्ताह में दो बार, अधिक कुछ न हो तो चार लाइन लिखकर मेरे पास भेज देना। आज बिहारी की चिट्ठी आने की सम्भावना बहुत ही कम थी, तो भी आकांक्षा इतनी अधिक प्रबल हो उठी कि दूर सम्भावना की आशा को भी वह न छोड़ सकी। उसे मालूम होने लगा मानो कलकत्ता छोड़े बहुत दिन बीत गये।

महेन्द्र के साथ उसके अनुचित सम्बन्ध की झूठी निन्दा गांवभर में घर-घर किस तरह फैली हुई है, यह बात शत्रुओं और मित्रों की कृपा से विनोदिनी से छिपी नहीं रही। कहीं भी शान्ति नहीं है।

विनोदिनी गांववालों से, सबसे अपने को अलग और निर्लिप्त रखने की चेष्टा करने लगी। गाँव के लोग इससे और भी चिढ़ गये। पातकिनी को अपने पास रखकर, उसके प्रति घृणा प्रकट करने और हँसी मजाक करने के विलास और सुख से वे अपने को वंचित नहीं करना चाहते।

छोटे से गाँव में अपने को सबसे अलग छिपाकर रखने की चेष्टा वृथा है। यहाँ चोट खाये हुए हृदय को एक कोने के अन्धकार में लेकर, एकान्त में शुश्रूषा करने का अवकाश नहीं है। जहाँ-तहाँ से सबकी तीक्ष्ण कुतूहल से भरी दृष्टि आकर उसी घाव के स्थान पर पड़ती है। विनोदिनी का अन्तःकरण टोकरी के भीतर की मछली की तरह जितना ही छटपटाने लगा उतना ही चारों तरफ की संकीर्णता के बीच अपने को ही बार-बार घायल करने लगा। यहाँ तो स्वाधीन भाव से पूरी तरह पीड़ा और कष्ट सहने की भी जगह नहीं है।

दूसरे दिन चिट्ठी पाने का समय बीत जाने पर तुरत ही विनोदिनी कमरे का दरवाजा बन्द करके चिट्ठी लिखने लगी—

बिहारी बाबू, डरना नहीं, मैं तुमको प्रेम की चिट्ठी लिखने नहीं बैठी हूँ। तुम मेरे बिचारक हो, मैं तुमको प्रणाम करती हूँ। मैंने जो पाप किया है, तुमने उसका कठोर दण्ड दिया है, तुम्हारा आदेश पाने के साथ तुरत ही मैंने उस दण्ड को अपने सिर पर धारण कर लिया है। दुःख तो यह है कि दण्ड कितना कठोर है, यह तुम देख न सके। यदि देखते, यदि जान लेते, तो तुम्हारे मन में दया उत्पन्न हो जाती, पर मैं उस दया से भी वंचित हो गयी। तुमको स्मरण करके, मन ही मन तुम्हारे पैरों के पास सिर रखकर, मैं इसे भी किसी तरह सह लूँगी। किन्तु प्रभो, जेलखाने का कैदी क्या भोजन भी नहीं पाता? शौकीन भोजन

नहीं, कम से कम जितना और जैसा भोजन न मिलने से प्राण नहीं बचता, वह तो मिलना ही चाहिये। तुम्हारे हाथ की लिखी दो लाइन ही मेरी इस निर्वासन का अहार है। वह भी यदि न मिले तो मेरे लिए यह निर्वासन का दण्ड नहीं बल्कि प्राणदण्ड सिद्ध होगा। मेरी इतनी अधिक परीक्षा मत लो दण्डदाता! मेरे इस पापी मन में अहंकार की कोई सीमा नहीं थी-मैं स्वप्न में यह कभी न जान सकी थी कि किसी के सामने मुझे इस तरह सिर झुकाना पड़ेगा। प्रभो तुम्हारी विजय हुई है, मैं अब विद्रोह नहीं करूँगी। किन्तु मुझपर दया करो, मुझे जीने दो। इस वनवास के लिये मुझे कुछ सहारा देते रहो। यदि ऐसा करोगे तो फिर तुम्हारे शासन से मुझे कोई किसी तरह भी हटा न सकेगा। केवल दुःख की इतनी ही बातें तुम्हें बता दीं। और जो बातें मन में भरी हुई हैं, उन्हें कहने के लिये छाती तड़पती हुई फटी जा रही है, किन्तु मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ कि उन बातों को तुम्हें न जनाऊँगी। इस प्रतिज्ञा का पालन कर रही हूँ।

तुम्हारी—'विनोद।'

विनोदिनी ने चिट्ठी डाक में छोड़ दी। मुहल्ले के लोग छी छी करने लगे। कहने लगे—घर का दरवाजा बन्द किये रहती है, चिट्ठी लिखती है। चिट्ठी पाने के लिए डाकिये पास पहुँच जाती है। दो दिन कलकत्ते में रहकर लाज शरम खोकर क्या इतनी मिट्टी पलीद की जाती है?

इसके बादवाले दिन को भी चिट्ठी नहीं मिली। विनोदिनी सारा दिन स्तब्ध हो रही, उसका चेहरा रूखा कठिन हो गया। भीतर और बाहर से चारों तरफ के आघात और अपमान के मन्थन से, उसके हृदय को अन्धकार पूर्ण तलभाग से निष्ठुर संहारकारिणी शक्ति प्रत्यक्ष मूर्ति धारण करके ऊपर आने की

चेष्टा करने लगी। उस निदारुण निष्ठुरता का आविर्भाव होना चाहता है, यह देखकर विनोदिनी डर गयी और दरवाजा बन्द कर दिया।

उसके पास बिहारी का कुछ भी नहीं था, न तो उसका कोई चित्र ही उसके पास था और न तो दो चार लाइन उसके हाथ की लिखी कोई चिट्ठी ही थी। वह बिहारी के किसी चिन्ह को अपनी छाती में समेटकर अपनी सूखी आँखों में जल लाना चाहती है। आँसुओं के जल से भीतर की सारी कठिनता को जलाकर, विद्रोह की आग को बुझाकर वह बिहारी की कठोर आज्ञा को हृदय के कोमलतम प्रेम-सिंहासन पर बिठा रखना चाहती है। किन्तु अनावृष्टि के दिनों में दोपहर के समय का आकाश जिस तरह जलता रहता है, उसी तरह उसका हृदय केवल जलने ही लगा, किसी सुदूर दिशा में भी कहीं एक बूँद आँसू का भी लक्षण वह न देख सकी।

विनोदिनी ने सुना था कि, एकाग्र मन से ध्यान करते-करते जिसको पुकारा जाता है, वह जरूर ही आ जाता है। इसीसे हाथ जोड़कर आँखें बन्द करके वह बिहारी को पुकारने लगी—'मेरा जीवन शून्य है, मेरा हृदय शून्य है, चारों तरफ शून्य ही शून्य है, इस शून्यता के बीच में तुम एक बार आओ, एक ही मुहूर्त के लिए आओ, तुमको आना ही होगा, मैं किसी तरह तुमको, न छोड़ूँगी।'

यह बात प्राणपण से कहते-कहते विनोदिनी को मानो यथार्थ बल प्राप्त हो गया। उसे ऐसा मालूम होने लगा कि यह प्रेम का बल, यह आह्वान का बल, वृथा न होगा। केवल स्मरण करने से, दुराशा की जड़ में हृदय का रक्त सींचने से हृदय केवल शिथिल-अवसन्न हो जाता है। किन्तु इस तरह एकाग्र

मन से ध्यान करके प्राणपण शक्ति से कामना करते रहने से मालूम होने लगता है कि सहायता करनेवाला साथ मौजूद है। मालूम होने लगता है कि केवल वांछित वस्तु को आकर्षण करते रहने से प्रतिक्षण वह काम्य वस्तु धीरे-धीरे निकटवर्ती होती जा रही है।

बिहारी के ध्यान में जब सन्ध्या के समय दीपकशून्य कमरा बहुत ही अन्धकार से परिपूर्ण हो उठा, जब समाज, संसार, गाँव, मुहल्ला, समूचा विश्वब्रह्माण्ड प्रलय में लीन हो गया था—उसी समय हठात् दरवाजे पर किसी के धक्का लगने की आवाज सुनकर विनोदिनी बहुत तेजी से उठकर जमीन पर खड़ी हो गयी, संशयहीन विश्वास से दौड़कर दरवाजा खोल दिया और खोलने के साथ ही बोल उठी, 'प्रभो, आ गये?' उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि इस क्षण संसार का और कोई भी मनुष्य उसके दरवाजे पर नहीं आ सकता।

महेन्द्र ने कहा, 'हाँ, आ गया विनोद।'

असीम घृणा और प्रचण्ड धिक्कार के साथ विनोदिनी बोल उठी, 'जाओ, जाओ, यहाँ से चले जाओ। अभी जाओ।'

महेन्द्र अकस्मात् स्तम्भित हो गया।

इसी समय, 'अरे बिन्दी, तेरी अजिया सास यदि कल—"यही कहते-कहते एक प्रौढ़ा पड़ोसिन विनोदिनी के दरवाजे के पास आ गयी, किन्तु दरवाजे पर महेन्द्र को देखते ही, 'ओ भैया' कहती हुई बहुत भारी घूंघट खींचकर बहुत तेजी के साथ भाग गयी।

३८

मुहल्ले में भारी गड़बड़ी मच गयी। दुर्गा मन्दिर के मण्डप में बूढ़े लोग जमा हुए और बैठक में कहने लगे- 'यह कभी सहने योग्य बात नहीं है, यह सही नहीं जा सकती। कलकत्ते में क्या हो रहा था, वह तो हम अनसुनी कर काम चला सकते थे, किन्तु ऐसा साहस कि महेन्द्र को चिट्ठी पर चिट्ठी भेजकर मुहल्ले में बुलाना तो प्रकट रूप से निर्लज्जता प्रकट करना है। ऐसी भ्रष्टा औरत को तो गाँव में रहने देना उचित नहीं है।'

विनोदिनी के मन में आज निश्चित रूप से यह आशा उदित हुई थी कि बिहारी का पत्र आ जायगा, किन्तु नहीं आया। विनोदिनी अपने मन में कहने लगी—मेरे ऊपर बिहारी का कैसा अधिकार है? मैंने क्यों उसका हुक्म सुना और उसे मान लिया? मैंने क्यों उसे यह समझने दिया कि वह मेरे प्रति जो विधान लागू करेगा, मैं उसे ही सिर झुकाकर मानकर चलूंगी? उसे अपनी प्यारी आशा को बचाने के लिए जितने की जरूरत है, क्या उसका मेरे साथ उतने ही का सम्बन्ध जरूरी है? क्या मुझे उससे कुछ भी प्राप्य नहीं है, क्या कुछ भी मेरा दावा नहीं है' साधारण दो अक्षरों की चिट्ठी भी नहीं—मैं इतनी तुच्छ हूँ, इतनी घृणा की सामग्री हूँ।' उस समय ईर्षा के विष से विनोदिनी की छाती फूल उठी। उसने कहा, 'और किसी के लिए इतना कष्ट सहा जा सकता है, किन्तु आशा के लिए तो नहीं सहा जा सकता। यह दीनता, यह लोकनिन्दा, यह अवज्ञा, यह जीवन की सब तरह की अतृप्ति, केवल आशा के लिए सहन करनी पड़ेगी—इतने बड़े धोखे को मैंने क्यों अपने सिर पर ले लिया?

मैं क्यों नहीं सर्वनाम करने का व्रत पूरा करके आयी। मैं बेवकूफ हूँ। मैंने क्यों विहारी को प्यार किया ?'

वियोदिनी जिस समय काठ की मूर्ति की तरह कमरे में कठिन होकर बैठी थी, ऐसे ही समय इसकी अजियासास दामाद के घर से लौट कर आ गयी। आते ही उन्होंने कहा, कलमुँही, क्या क्या बातें सब सुन रही हूँ ?'

विनोदिनी ने कहा, 'जो सुन रही हो, सब सच है।'

अजियासास—'तो यह कलंक गाँव में लेकर आने को क्या जरूरत थी ? यहाँ क्यों आयी ?'

अपने हृदय के छोभ को रोककर विनोदिनी चुपचाप बैठी रह गयी। अजियासास ने कहा, 'बच्ची' यहाँ अब तुम्हारा रहना नहीं हो सकता, मैं यह बता देती हूँ। मेरा भाग्य जल गया कि मेरे सभी लोग मर कर खतम हो गये। यह भी सहकर मैं जी रही हूँ, किन्तु इस हालत में अब मैं इस तरह की बातें सह न सकूँगी। छी, छी, तूने समाज में मेरा सिर नीचा कर दिया। तुम अभी इसी समय यहाँ से चली जाओ।'

विनोदिनी ने कहा, मैं अभी चली जाऊँगी।'

ऐसे ही समय में, बिना नहाये, बिना खाये, रूखे सूखे बिखरे हुए बाल लिए वहाँ एकाएक महेन्द्र आ धमका। रातभर जागते रहने से उसकी आँखें लाल हो गयी थीं और चेहरा सूख गया था। उसने पहले संकल्प किया था कि अँधेरा रहते-रहते ही खूब तड़के जाकर विनोदिनी को ले जाने की दूसरी बार चेष्टा करूँगा। किन्तु पहले दिन के विनोदिनी के अभूतपूर्व घृणासूचक बर्ताव से उसे बड़ी चोट लगी और उसके मन में तरह तरह की दुविधा पैदा होने लगी। क्रमशः जब दिन चढ़ आया, रेलगाड़ी के आने का समय निकट आ गया, तब स्टेशन के मुसाफिर

खाने से बाहर आकर अपने मन से सब तरह के विचार और संकोच छोड़कर गाड़ी पर चढ़कर महेन्द्र एकदम विनोदिनी के घर के दरवाजे पर पहुँच गया। लाज छोड़कर प्रगट रूप से किसी दुस्साहसपूर्ण काम में लग जाने से जो एक तरह का स्पर्धापूर्ण बल उत्पन्न हो जाता है, उसी बल के आवेग से महेन्द्र को एक तरह का पागलों की भाँति आनन्द मालूम होने लगा। उसकी सब थकावट दुविधा चूर्ण हो गयी। गाँव के लोग उसे कुतूहलपूर्ण दृष्टि से देखते थे। पर वे सभी उसकी उन्मत्त दृष्टि में मिट्टी के बने निर्जीव पुतले की भाँति दिखाई पड़ रहे थे। महेन्द्र किसी की तरफ जरा भी न देखकर एकदम विनोदिनी के पास आ गया और उसने विनोदिनी से कहा—'विनोद मैं इतना कायर नहीं हूँ कि यहाँ लोकनिन्दा के बीच तुम्हें अकेला छोड़ जाऊँ। जैसे ही क्यों न हो, यहाँ से तुमको मैं जरूर ले जाऊँगा। उसके बाद तुम यदि चाहोगी तो मुझे छोड़ देना, मैं तुमको बाधा न दूँगा। मैं आज तुमको छू कर कसम खा रहा हूँ कि तुम जब जैसी इच्छा करोगी, वही होगा—यदि दया करोगी तो जीवित रहूँगा और यदि न करोगी तो तुम्हारे मार्ग से दूर चला जाऊँगा। मैंने संसार में अनेक अविश्वास के काम किये हैं, किन्तु आज तुम मुझपर अविश्वास न करना। हम लोग प्रलय के मुख में खड़े हैं, अब छल करने का समय नहीं रह गया।'

विनोदिनी ने अत्यन्त सहज भाव से विचलित न होकर कहा—'मुझे साथ ले चलो। क्या तुम्हारे साथ गाड़ी है?'

महेन्द्र ने कहा—'है।'

विनोदिनी की अजियासास ने बाहर निकलकर महेन्द्र से कहा—'महेन्द्र, तुम मुझे नहीं पहचानते, किन्तु तुम मेरे पराये नहीं हो। तुम्हारी माँ राजलक्ष्मी हमारे ही गाँव की लड़की है,

गाँव के नाते से मैं उनकी मामी लगती हूँ। भला मैं पूछती हूँ कि यह तुम्हारा कैसा व्यवहार है। तुम्हारे घर में तुम्हारी स्त्री है, माँ हैं, और तुम इस तरह निर्लज्ज होकर पागल-सा घूम रहे हो। भले आदमियों के समाज में तुम मुँह कैसे दिखाओगे ?'

महेन्द्र जिस भावोन्माद के राज्य में था, उसमें एक चोट लग गयी। उसके घर में पत्नी है, माँ मौजूद है, भले आदमियों का समाज भी है। यह सहज बात मानो उसे आज नये रूप से मालूम हुई। इस अज्ञात सुदूर के गाँव में एक अपरिचित के दरवाजे पर महेन्द्र को ऐसी बात सुनने की आशा नहीं थी, स्वप्न में भी उसके मन में इसका खयाल नहीं आया था। दिन ही के समय गाँव के बीच खड़े होकर वह एक भले आदमी के घर की विधवा औरत को बाहर निकालकर लिये जा रहा है। महेन्द्र के जीवन-चरित में एक ऐसा भी अध्याय लिख लिया गया। इस हालत में भी उसकी माँ है, स्त्री है, और भले आदमियों का समाज है।

जब कुछ भी उत्तर न देकर महेन्द्र खड़ा रह गया, तब वृद्धा ने कहा, 'जाना हो तो अभी तुरत चले जाओ—इसी समय चले जाओ। मेरे दरवाजे पर मत खड़े रहो, क्षणभर के लिए भी देर मत करो।

इतनी बातें कहकर बुढ़िया ने बाहरी दरवाजा बन्द कर दिया। विनोदिनी बिना नहाये, बिना खाये, मैले कपड़े पहने, खाली हाथ गाड़ी पर सवार हो गयी। जब महेन्द्र गाड़ी पर चढ़ने लगा तो विनोदिनी ने कहा—'नहीं स्टेशन दूर नहीं है, तुम टहलते टहलते चले जाओ।

महेन्द्र ने कहा,—'तब तो गाँवके सभी लोग मुझे देख लेंगे।'

विनोदिनी ने कहा—'क्या अब भी तुम्हें कुछ लोकलाज

बाकी है ?' यह कहकर उसने गाड़ी का दरवाजा बन्द कर लिया और गाड़ीवान से कहा—'स्टेशन चलो।'

गाड़ीवान ने पूछा—'क्या बाबूजी नहीं जायँगे।'

महेन्द्र कुछ इधर-उधर करने लगा, पर जाने का साहस नहीं हुआ। गाड़ी चली गयी। महेन्द्र गाँव के भीतर का रास्ता छोड़कर खेतों के बीच का रास्ता पकड़कर चक्कर लगाता लोगों की निगाह से बचकर सिर झुकाये स्टेशन की तरफ चला।

उस समय गाँव की कुलवधुओं का स्नानाहार हो चुका था। केवल जो सब प्रौढ़ा गृहिणियां घर के कामकाज में लगी हुई थीं वे ही देर से छुट्टी पाकर अंगोछा और तेल की प्याली लेकर आम की मंजरी से महकनेवाले छायास्निग्ध पोखरे के निर्जन घाट पर नहाने के लिये चली जा रही थीं।

३६

महेन्द्र कहीं चला गया और लापता हो गया—इस आशंका से राजलक्ष्मी का खाना-पीना और सोना सब बन्द हो गया। साधुचरण सम्भव असम्भव सभी स्थानों में उसे ढूँढ़ रहे थे इसी बीच में महेन्द्र विनोदिनी को अपने साथ लिये कलकत्ता लौट आया। पटलडांगा में एक डेरे पर विनोदिनी को रखकर महेन्द्र अपने घर आया।

माँ के कमरे में प्रवेश करके महेन्द्र ने देखा, कमरे में प्रायः अन्धकार फैला हुआ है। लालटेन कुछ आड़ में रख दी गयी है। राजलक्ष्मी रोगी की तरह बिछौने पर पड़ी हुई हैं और

आशा धीरे-धीरे उनके पैर दबा रही है। इतने दिनों के बाद घर की बहू ने सास के पैरों के नीचे अपना अधिकार पा लिया है।

महेन्द्र के आते ही आशा चौंक उठी और कमरा छोड़कर चली गयी। महेन्द्र ने जबर्दस्ती सब तरह की दुविधा छोड़कर कहा—'माँ' यहाँ मेरा पढ़ाई में सुविधा नहीं मिलती, मैंने कालेज के पास ही एक मकान किराये पर ले लिया है, वहीं रहूँगा।'

राजलक्ष्मी ने बिछौने के सिरे पर अँगुली से निर्देश करके कहा, 'महीन जरा बैठो।'

महेन्द्र संकोच के साथ बिछौने पर बैठ गया। राजलक्ष्मी ने कहा, 'महेन्द्र, तेरी जहाँ इच्छा हो वहीं रह, किन्तु मेरी बहू को कष्ट मत दे।'

महेन्द्र चुपचाप बैठा रह गया। राजलक्ष्मी ने कहा, 'मेरा दुर्भाग्य है, इस कारण ही मैं अब तक अपनी ऐसी लक्ष्मी-जैसी बहू को पहचान न सकी'—यह कहते-कहते राजलक्ष्मी का गला भर आया,—किन्तु तूने उसको इतने दिनों तक इतना जानकर, इतना प्यार करके, अन्त में इतने दुःख में किस कारण ढकेल दिया ?' राजलक्ष्मी और अपने को न रोक सकीं, रोने लगीं।

महेन्द्र वहाँ से किसी तरह उठकर भागकर चला आता तो उसकी जान बच जाती, किन्तु हठात् उठ न सका। माँ के बिछौने के सिरे पर अंधेरे में चुपचाप बैठा रह गया।

बहुत देर बीत जाने पर राजलक्ष्मी ने कहा—"आज रात को तो तू यहीं रहेगा न ?"

महेन्द्र ने कहा—"नहीं।"

राजलक्ष्मी ने पूछा—'कब जायगा ?'

महेन्द्र ने कहा—'अभी।'

राजलक्ष्मी बहुत ही कष्ट के साथ किसी तरह उठकर बैठ गयीं और उन्होंने महेन्द्र से कहा—'अभी ! एक बार बहू के साथ अच्छी तरह मुलाकात भी न कर जायगा ?

महेन्द्र निरुत्तर हो रहा । राजलक्ष्मी ने कहा, 'इन कई दिनों तक बहू ने किस हालत में समय बिताया है, यह बात क्या तू जरा भी न समझ सका ? अरे निर्लज्ज, तेरी निष्ठुरता से मेरा कलेजा फटता जा रहा है ।' इतनी बात कहकर राजलक्ष्मी वृक्ष की टूटी हुई डाली की तरह लेट गयीं ।

महेन्द्र माँ का बिछौना छोड़ कर बाहर चला गया । बहुत ही धीरे-धीरे कदम बढ़ाता हुआ सीढ़ी चढ़कर ऊपर अपने सोने के कमरे को चला । उसकी यह बिलकुल ही इच्छा नहीं थी कि आशा से मुलाकात हो ।

महेन्द्र ने ऊपर पहुँचते ही देखा कि उसके कमरे के सामने के ओसारे में जमीन पर नीचे आशा लेटी हुई है । उसे महेन्द्र के पैर की आहट नहीं सुनाई पड़ी । एकाएक उसे अपने सामने उपस्थित देखकर आशा बहुत जल्दी में अपने कपड़े सम्हाल कर उठ बैठी । इस समय यदि महेन्द्र एक बार पुकारता 'ऐ चुनी'—तो उसी क्षण वह महेन्द्र के सब अपराध मानो अपने ही सिर पर उठा लेती और क्षमाप्राप्त अपराधिनी की तरह महेन्द्र के दोनों पैरों से लिपट कर अपने जीवन का सब रोना रो लेती । किन्तु महेन्द्र उस प्रिय नाम को जबान पर न ला सका । उसने जितनी ही चेष्टा की, जितनी ही इच्छा की, उतनी ही उसे वेदना मिलने लगी, वह यह बात न भूल सका कि आज आशा को आदर करना व्यर्थ का परिहासमात्र है । वह सोचने लगा—'जब मैंने विनोदिनी को छोड़ने का मार्ग अपने

ही हाथ से एकदम बन्द कर दिया है तो इस हालत में केवल मुँह से सान्त्वना देने से क्या लाभ होगा ?

आशा संकोच के मारे मरी सी होकर बैठी रह गयी। उठ कर खड़ी होने, वहाँ से चले जाने, किसी तरह की गति या हिलने डोलने की चेष्टामात्र करने में उसे लज्जा मालुम होने लगी। महेन्द्र ने उससे कुछ भी बातचीत नहीं की और धीरे-धीरे छत पर टहलने लगा। कृष्ण पक्ष के आकाश में चन्द्रमा दिखाई नहीं पड़ा था, छत पर कोने में एक छोटे से गमले में रजनी गन्धा का पेड़ लगा हुआ था और उसके दो डंठलों में दो फूल खिले हुए थे। छत के ऊपर वाले अन्धकारमय आकाश में वे नक्षत्र, वे सप्तर्षि, वे सब ही उन दोनों के अनेक निभृत प्रेमाभिनय के साक्षी थे, आज भी वे निस्तब्ध होकर उन दोनों की तरफ ताकते रह गये।

महेन्द्र सोचने लगा, इधर बीच के कई दिनों की विप्लव-कहानी इस आकाश में सर्वत्र व्याप्त होनेवाले अन्धकार में मिटाकर गायब करके यदि मैं पहले की ठीक उसी जगह पर अनायास ही जाकर बैठ सकूँ तो कितना अच्छा हो! तब कोई प्रश्न न हो, कोई जवाबदेही न रहे, वही विश्वास, वही प्रेम, वही सहज आनन्द लौट आवे। किन्तु हाय, इतनी बड़ी दुनियाँ में इतनी ही थोड़ी सी जगह पर लौटने का मार्ग अब नहीं रह गया। इस छत पर आशा के पास चटाई का थोड़ासा भी भाग महेन्द्र को मिलने की गुंजाइश नहीं रह गयी। उसने अपना यह अधिकार एकदम खो दिया है। इतने दिनों तक विनोदिनी के साथ महेन्द्र का स्वतन्त्र सम्बन्ध था, प्रेम करने का उन्मत्त सुख था, किन्तु उसका ऐसा बन्धन नहीं था, जिससे छुटकारा न मिल सके। इन दिनों महेन्द्र अपने ही हाथों से विनोदिनी

को समाज के हाथ से छीन लाया है, अब तो विनोदिनी को कहीं रखने की, कहीं लौटा देने की जगह नहीं है—महेन्द्र ही उसका एकमात्र आधार है। इस समय इच्छा हो या न हो, विनोदिनी का सब बोझा उसे स्वयं अपने सिर पर ढोना ही पड़ेगा। यह सोचकर महेन्द्र का हृदय भीतर ही भीतर पीड़ित होने लगा। उसे छत पर के ये ही कामकाज, यही शान्ति, बाधाविहीन दाम्पत्यमिलन की निभृत रात्रि. हठात् महेन्द्र को बहुत ही आराम की सामग्री मालूम होने लगी। किन्तु यह सहज सुलभ आराम, जिसपर एकमात्र उसी का अधिकार है, उसके लिए दुराशा को सामग्री सा हो रहा है। चिर जीवन के लिए जिस बोझ को उसने अपने सिर पर उठा लिया है, उसे उतार कर महेन्द्र क्षणभर के लिए भी साँस न ले सकेगा।

लम्बी साँस लेकर महेन्द्र ने एक बार आशा की तरफ देखा। निस्तब्ध रुलाई से अपने हृदय को एकदम भरकर आशा तब तक भी निश्चल होकर बैठी हुई है—रात्रिकालिनी अन्धकार ने माता के अंचल की तरह उसकी लज्जा और वेदना को ढँक लिया है।

महेन्द्र टहलना बन्द करके, न जाने क्या कहने के लिए हठात् आशा के पास आकर खड़ा हो गया। आशा के समूचे शरीर का रक्त उसके कानों में पहुँचकर सनसनाहट की आवाज करने लगा, उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं। महेन्द्र क्या कहने के लिये आया था वह कुछ भी सोचकर स्थिर न कर सका, कहने की कौनसी बात उसके पास थी! किन्तु कुछ कहे बिना लौट भी न सका। उसने कहा, 'तालियों का गुच्छा कहाँ है?

तालियों का गुच्छा था बिछौने की गद्दी के नीचे। आशा उठकर कमरे के भीतर गयी—महेन्द्र भी उसके पीछे-पीछे गया।

आशा ने तालियों का गुच्छा गद्दी के ऊपर रख दिया। महेन्द्र तालियों का गुच्छा लेकर अपने कपड़े की आलमारी के ताले में एक एक ताली लगाकर देखने लगा। आशा और चुप न रह सकी, उसने मीठी आवाज में कहा, 'उस आलमारी की ताली मेरे पास नहीं थी।'

किसके पास ताली थी यह बात आशा के मुँह से न निकल सकी किन्तु महेन्द्र समझ गया। आशा झटपट कमरे से बाहर चली गयी, उसे यह भय हुआ कि कहीं महेन्द्र के सामने रुलाई का वेग न उमड़ पड़े। अँधेरे में छत की दीवाल के एक कोने में एक तरफ अपना मुँह फेर कर रोने लगी।

किन्तु बहुत देर तक रोने का समय नहीं था। एकाएक यह बात उसे याद पड़ गयी कि महेन्द्र के भोजन का समय हो गया है। बहुत तेजी से कदम बढ़ाये वह नीचे चली गयी।

राजलक्ष्मी ने आशा से पूछा, महीन कहाँ है बहू ?' आशा ने कहा, 'वे ऊपर हैं।'

राजलक्ष्मी—'तू ऊपर से उतर क्यों आयी ?' आशा ने सिर झुकाये कहा—'उनके भोजन का—' राजलक्ष्मी—'भोजन का प्रबन्ध मैं कर देता हूँ, बहू तू जरा हाथ मुँह धोकर साफ कपड़े पहन ले। अपनी वह नयी ढकढ़िया साड़ी पहनकर मेरे पास आओ, मैं तेरे बाल बाँध दूँ।'

आशा सास के आदर की उपेक्षा न कर सकती थी, किन्तु इस शृंगार के प्रस्ताव से वह भीतर लाज से मर गयी। मृत्यु की इच्छा करके भीष्मपितामह ने जिस तरह बाणों की वर्षा सह ली थी, आशा ने भी उसी तरह राजलक्ष्मी के हाथों से किये गये सब शृंगार को बड़े धैर्य के साथ धारण कर लिया।

शृंगार हो जाने के बाद आशा बहुत धीरे धीरे कदम बढ़ाये

सीढ़ियों से चढ़कर ऊपर चली गयी। झाँककर देखा, महेन्द्र छत पर नहीं है। धीरे धीरे दरवाजे के पास आकर देखा, महेन्द्र कमरे में भी नहीं है, भोजन की थाली ज्यों की त्यों पड़ी हुई है।

ताली के अभाव में महेन्द्र कपड़े की आलमारी का ताला तोड़कर खोलकर जरूरी कुछ कपड़े और डाक्टरी किताब लेकर कहीं चला गया है।

दूसरे दिन एकादशी थी। अस्वस्थ और क्लिष्टशरीर राजलक्ष्मी बिछौने पर पड़ी हुई थीं। बाहर घनी बदली से तूफान के लक्षण दिखाई पड़ रहे थे। आशा धीरे धीरे कमरे के अन्दर गयी। फिर वह धीरे धीरे राजलक्ष्मी के पैर के पास बैठकर उनके पैर दबाने लगी। उसने साससे कहा, मैया जी, तुम्हारे लिए दूध और फल लायी हूँ, तुम खा पी लो।'

करुणामूर्ति बहू की यह अनभ्यस्त सेवा की चेष्टा देखकर राजलक्ष्मी की सूखी आँखों में आँसू भर आये। वे उठकर बैठ गयीं और आशा को अपनी गोद में लेकर, उसके आँसुओं से भीगे हुए कपोलों को बार बार चूमने लगी। उन्होंने पूछा 'बहू, महीन इस समय क्या कर रहा है?'

आशा अत्यन्त लज्जित हो गयी, मीठी आवाज में बोली, वे चले गये।'

राजलक्ष्मी—'कब चला गया, मैं तो जान भी न सकी।'

आशा ने सिर झुकाये कहा, 'वे कल रात को ही चले गये।'

सुनते ही राजलक्ष्मी की सब कोमलता मानो दूर हो गयी—बहू के प्रति उसके आदर स्पर्श के बीच और लेशमात्र भी रस नहीं रह गया। आशा अपने मन में एक तरह की नीरव लांछना अनुभव कर के सिर झुकाके धीरे-धीरे चली गई।

—०—

४०

प्रथम रात्रि को विनोदिनी को पटलडांगावाले डेरे पर रखकर महेन्द्र जब अपने कपड़े और किताब लाने के लिए अपने घर गया, तब विनोदिनी कलकत्ते के विश्रामहीन जनतरंग के कोलाहल में अकेली बैठकर अपने बारे में विचार करने लगी। दुनिया में उसके लिए आश्रय का स्थान तो किसी समय भी यथेष्ट विस्तृत नहीं था, केवल एक तरफ ऊबकर दूसरी तरफ करवट बदलने के लिए थोड़ी सी जगह थी, किन्तु उसके लिए आश्रय का स्थान अत्यन्त संकीर्ण है। वह जिस नाव पर चढ़कर जलप्रवाह में वह चली है, वह इतनी हलकी है कि जरा भी इधर-उधर डगमगाने से एकदम आगाध जल में गिर जाना पड़ेगा। इस लिए बहुत ही सावधान होकर डांड़ पकड़ना चाहिये, जरा भी भूल और हिलना डोलना सहा नहीं जा सकता। इस अवस्था में किस रमणी का हृदय न काँपने लगेगा। दूसरे के मन को वश में करने के लिए जितनी लीला और जितने खेल की जरूरत पड़ती है, जितनी आड़ की आवश्यकता रहती है, उसका अवकाश इस संकीर्णता में कहां है? एकदम महेन्द्र के साथ उसके आमने सामने समस्त जीवन बिताने के लिए उसे तैयार होना पड़ेगा। फर्क यह है कि महेन्द्र के लिए किनारे लगाकर अपना स्थान पाने का उपाय है, किन्तु विनोदिनी के लिए वह उपाय नहीं है।

विनोदिनी अपनी इस असहाय अवस्था को जितना ही साफ समझने लगी, उसके मन में उतना ही अधिक बलसंचय होने

लगा। एक उपाय तो उसे अपने लिए करना ही पड़ेगा, इस तरह तो काम न चलेगा।

जिस दिन विनोदिनी ने बिहारी से अपना प्रेम-निवेदन कर दिया था, उसी दिन से उसके धैर्य का बाँध टूट गया है। जिस उद्यत चुम्बन को वह बिहारी के मुँह के पास से लौट लायी है, उसे जगत में और कहीं उतार रखने की शक्ति उसमें नहीं है। पूजा के अर्घ्य की भाँति अपने इष्टदेव के लिए दिन रात वह उसे अपने साथ साथ लिए घूमती रहती है। विनोदिनी का हृदय किसी अवस्था में भी अपने निर्धारित काम को एकदम छोड़ देना नहीं जानता—नैराश्य को वह एकदम ही स्वीकार नहीं करती। उसका मन दिन रात पूरी दृढ़ता के साथ कर रहा, 'मेरी यह पूजा बिहारी को स्वीकार करनी ही पड़ेगी।'

विनोदिनी के इस दुर्दान्त प्रेम के साथ आत्मरक्षा की प्रबल आकांक्षा भी एक साथ मिल गयी। बिहारी के सिवा विनोदिनी के लिए दूसरा उपाय नहीं है। महेन्द्र को विनोदिनी ने खूब अच्छी तरह पहचान लिया है, उसके ऊपर भार छोड़ देने से वह भार सह नहीं सकता। उसे छोड़ देने से वह पाया जा सकता है, उसे पकड़ने पर वह भाग जाना चाहता है। किन्तु स्त्री के लिए जिस निश्चित, विश्वस्त, निरापद आश्रय की सख्त जरूरत है, वह आश्रय बिहारी दे सकता है। आज बिहारी को छोड़ देने से विनोदिनी का काम एकदम ही न चलेगा।

गाँव छोड़कर आने के दिन विनोदिनी ने स्टेशन से लगे हुए डाकखाने में महेन्द्र को भेजकर कहला दिया था कि उसके नाम की चिट्ठियाँ नये पते से भेज दी जाया करें। इस बात को विनोदिनी किसी तरह भी नहीं स्वीकार कर सकी कि बिहारी उसकी

चिट्ठी का कोई उत्तर ही न देगा। उसने अपने मन में कहा, 'मैं सात दिन तक धैर्य धारण करके उत्तर की प्रतीक्षा करूँगी, इसके बाद देखा जायगा।'

यह कहकर विनोदिनी उठी और अन्धकार से भरी खिड़की खोलकर गैस के प्रकाश से प्रकाशित कलकत्ते की ओर अनमनीसी होकर ताकने लगी। सन्ध्या के समय बिहारी इसी शहर में है, इन्हीं थोड़ी सी दो चार गलियों को पार करके उसके दरवाजे पर पहुँचा जा सकता है, फिर पानी के कल वाला छोटा आँगन मिलता है, फिर सीढ़ियाँ मिलती हैं, उसके बाद खूब सजा धजा साफ सुथरा प्रकास से भरा एकान्त कमरा है—वहाँ निस्तब्ध शान्ति के बीच बिहारी अकेला कुर्सी पर बैठा हुआ है—शायद उसके पास वही ब्राम्हण बालक बसन्त—वही सुडौल, सुन्दर, बड़ी बड़ी आँखोवाला, सरलमूर्ति लड़का, इच्छानुसार तस्वीरों की किताब लिये उसके पन्ने उलट रहा है—एक एक करके उस दिन का सम्पूर्ण चित्र उसकी आँखों में नाचने लगा, स्नेह और प्रेम से विनोदिनी का सारा अंग पुलकित हो उठा। इच्छा को अपनी गोद में उठाकर उसके साथ खेलने लगी। पहले के दिन होते तो वह इस इच्छा की पूर्ति के लिए आगे बढ़ती, किन्तु आज तो इस पर बहुत सोचना पड़ रहा है। इस समय केवल बासना को चरितार्थ करना नहीं है बल्कि उद्देश्य सिद्ध करना है। विनोदिनी ने अपने मन में कहा, 'पहले देख लूं कि बिहारी कैसा उत्तर देता है, फिर इसके बाद यह निश्चय किया जायगा कि किस मार्ग से चलना चाहिए।' कुछ समझे बूझे बिना बिहारी को रंज करने के लिए जाने का उसे साहस नहीं हुआ।

इस तरह सोचते-सोचते रात के नौ-दस बज गये, उस समय महेन्द्र भी धीरे-धीरे आ पहुँचा। इधर कई दिन अच्छी तरह न सोने से और खाने-पीने के अनियमों से उसने अपना समय उत्तेजित अवस्था में बिताया है, आज कृतकार्य होकर विनोदिनी को डेरे पर लाकर एकदम थकावट से वह मानो अभिभूत हो उठा है। आज संसार के साथ, अपनी अवस्था के साथ लड़ने की शक्ति मानो उसमें नहीं रह गयी है। भार से भरे हुए उसके भावी जीवन की सब थकावट मानो आज पहले से ही उसके ऊपर चढ़ बैठी।

बन्द दरवाजे के पास खड़े होकर दरवाजा खटखटाने में महेन्द्र को बड़ी लज्जा मालूम होने लगी। जिस उन्मत्तता में उसने सारी दुनियाँ पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, वह उन्मत्तता कहाँ चली गयी? रास्ते में चलनेवाले अनजान आदमियों के सामने भी उसका सर्वाङ्ग संकुचित क्यों हो रहा है!

नया नौकर घर के अन्दर सो रहा था, दरवाजा खुलवाने के लिए बहुत अधिक बखेड़ा करना पड़ा। अनजान नये डेरे के अन्धकार में पहुँचकर महेन्द्र का मन मुरझा गया। माता का प्यारा लड़का महेन्द्र चिरकाल से जिस विलास और शौक की सामग्री पाकर, पंखे खिचवाकर, दामी कुर्सियों, आरामकुर्सियों आदि के आराम में रहकर समय बिताने में अभ्यस्त रहा है, वह इस नये डेरे में इन सब सामग्रियों के अभाव से ऊबने लगा, उसे यह अभाव भली भांति खलने लगा। उसने सोचा—यहाँ का सब अभाव मुझे पूरा करना पड़ेगा, इस डेरे के सारे इन्त-जाम का भार मेरे ही ऊपर है। पहले कभी महेन्द्र ने अपने या दूसरे के आराम के किसी तरह की चिन्ता नहीं की थी, किन्तु आज से एक नवगठित असम्पूर्ण गृहस्थी की सारी कमियों,

त्रुटियों को उसे स्वयं ही सम्भालना पड़ेगा। सीढ़ी पर एक मिट्टी के तेल की डिबिया बहुत सा धुंआ फेंकती हुई टिमटिमा रही थी। उसने सोचा कि इसकी जगह पर दूसरी अच्छी बत्ती का इन्तजाम करना पड़ेगा। बरामदा लाँघकर सीढ़ी से चढ़ने का रास्ता कल के पानी से भींगकर सींड़ से भर रहा था। उसने सोचा कि मिस्त्री बुलाकर इतनी जगह बिलायती मिट्टी से मरम्मत करवा देनी पड़ेगी। रास्ते की तरफ के बाहरी दो कमरों में जूते के दूकानदार रहते थे, उन्हें वहाँ से हटाना होगा और इस काम में मकान मालिक से झगड़ा भी करना पड़ेगा। ये सब काम उसे स्वयं करने पड़ेंगे, यह सोचकर वह चकित सा हो उठा और थकावट का बोझ और भी भारी हो गया।

महेन्द्र ने सीढ़ी के पास कुछ देर तक ठहरकर अपने को सँभाल लिया और विनोदिनी के प्रति उसके मन में जो प्रेम था, उसे उत्तेजित कर दिया। अपने को समझाया कि इतने दिनों तक सारी दुनिया को भूलकर जिसको चाहा था, उसे पा लिया, आज दोनों के बीच कोई बाधा नहीं रह गयी है—आज आनन्द का दिन है। किन्तु कोई बाधा नहीं है, यही तो सबसे बड़ी बाधा है, आज महेन्द्र स्वयं ही अपने लिए बाधास्वरूप हो रहा है।

विनोदिनी ने रास्ते में ही महेन्द्र को आते देखकर अपने ध्यानासन से उठकर कमरे में बत्ती जलायी, और एक सिलाई का कपड़ा अपनी गोद में लेकर सिर झुकाये उसमें व्यस्तसी हो गयी यह सिलाई विनोदिनी के लिए आवरण है, इसकी आड़ में उसे मानो एक आश्रय मिलता है।

महेन्द्र ने कमरे में प्रवेश करके कहा —'विनोद, यहाँ तुम्हें जरूर ही अनेक असुविधा हो रही है।'

महेन्द्र ने कहा 'मैं और दो तीन दिनों में ही सब सामान लाकर हाजिर करूँगा, तबतक तुम्हें थोड़ा कष्ट सहना पड़ेगा।'

विनोदिनी ने कहा—नहीं, यह किसी तरह भी नहीं हो सकता, तुम और कुछ भी सामान मत लाना, यहाँ जो कुछ है वह मेरी जरूरत से बहुत ज्यादा है।'

महेन्द्र ने कहा—'मैं अभागा भी क्या उस 'ज्यादा' में से एक हूँ।'

विनोदिनी—'अपने को इतना अधिक समझना ठीक नहीं है, कुछ नम्रता रखना ही अच्छा है।'

उस निर्जन स्थान में दीपक के प्रकाश में सिर झुकाये अपने काम में पूरा दिल लगाकर उसी में निमग्न विनोदिनी की मूर्ति देखकर क्षणभर में महेन्द्र के मन में फिर मोह का सञ्चार हो गया।

यदि इस समय वह अपने घर पर होता तो विनोदिनी के पैरों के पास पहुंच जाता। किन्तु यह तो घर नहीं है, इसलिए महेन्द्र वैसा न कर सका। आज विनोदिनी असहाय है, उसके ही कब्जे में है, आज अपने को संयत न रखने से अपनी कापुरुषता ही प्रकट होगी।

विनोदिनी ने कहा—'तुम यहाँ अपने कपड़े और किताब क्यों ले आये?'

महेन्द्र ने कहा, 'इसको मैं अपनी जरूरी चीजों मे ही समझता हूं। ये सब 'फालतू अधिक' चीजों में नहीं हैं।'

विनोदिनी—'जानती हूँ किन्तु यहाँ क्यों ले आये?'

महेन्द्र—'यह बात ठीक है—यहाँ कोई आवश्यक चीज शोभा नहीं पाती। विनोद, इन किताबों उताबों को तुम उठाकर

रास्ते में फेंक देना, मैं जरा भी आपत्ति न करूँगा, केवल निवेदन यह है कि इनके साथ मुझे भी न फेंक देना।'

यह कहकर इसी बात के बहाने जरा और आगे सरककर, पास आकर कपड़े में बँधी किताबों की गठरी को महेन्द्र ने विनोदिनी के पैरों के पास रख दिया।

विनोदिनी ने मुँह गम्भीर किये सिलाई करते-करते सिर ऊपर उठाये बिना ही कहा 'महेन्द्रबाबू, यहाँ तुम्हरा रहना न होगा।'

महेन्द्र अपने तुरत के जगे हुए आग्रहपूर्ण मुँह में चपेट खाकर व्याकुल हो उठा। उसने गद्गद् कण्ठ से कहा, 'क्यों विनोद, तुम मुझे क्यों दूर ठेल रखना चाहती हो? तुम्हारे लिए सब कुछ छोड़ देनेपर क्या मुझे यही फल मिला।'

विनोदिनी—'मेरे लिए तुम्हें कुछ भी छोड़ने की नौबत मैं न आने दूंगी।

महेन्द्र बोल उठा, 'अब यह तुम्हारे हाथ की बात नहीं रह गयी। चारों तरफ से सारा संसार मुझसे अलग होकर खिसक गया है, केवल तुम ही अकेली रह गयी हो विनोद! मेरी विनोद—विनोद—'

यह कहते महेन्द्र लेट गया और विह्वल भाव से विनोदिनी के दोनों पैरों को जोर से पकड़कर दबाया और उसके पद्पल्लव को बार-बार चूमने लगा।

विनोदिनी अपने पैर छुड़ाकर उठ खड़ी हुई। कहा—'महेन्द्र, तुमने क्या प्रतिज्ञा की थी, क्या वह याद नहीं है?'

महेन्द्र ने बड़ी दृढ़ता के साथ अपना पूरा बल लगाकर अपने को सँभाल लिया—बोला, 'याद है। मैंने शपथ ली थी कि तुम्हारा

जो इच्छा होगी वही बात होगी। मैं उस शपथ का पालन करूँगा। क्या करना होगा, बताओ।

विनोदिनी—'तुम अपने घर जाकर वहीं रहो।'

महेन्द्र—'क्या मैं ही तुम्हारी एकमात्र अनिच्छा की सामग्री हूँ, विनोद? यदि यही बात है तो तुम मुझे यहाँ तक घसीटकर क्यों लायी? जो तुम्हारे भोग की सामग्री नहीं है, उसका शिकार करने की क्या जरूरत थी? सच-सच बोलो क्या मैं अपनी इच्छा से तुम्हारे पास बँध गया हूं? मुझे लेकर तुम इस तरह खेल मचाओगी, क्या यह भी मैं सह लूँगा? फिर भी मैं अपना वचन पालन करूँगा—जिस मकान में अपने स्थल को पैरों से ठुकराकर मैंने चूर-चूर कर दिया है, उसी मकान में मैं जाकर रहूँगा'

विनोदिनी जमीन पर बैठकर फिर चुपचाप सिलाई करने लगी।

कुछ देर तक स्थिर भाव से विनोदिनी के मुँह की तरफ ताकते रहने के बाद महेन्द्र बोल उठा—'निष्ठुर, विनोद! तुम निष्ठुर हो। मैं अत्यन्त अभागा हूँ कि तुमको प्यार करने लगा।'

विनोदिनी सिलाई में एक जगह कुछ भूल करके उसे दीपक के प्रकाश में रख कर बड़े यत्न के साथ खोलने लगी। महेन्द्र की ऐसी इच्छा हुई कि विनोदिनी के उस पत्थर के हृदय को अपनी कड़ी मुट्ठी में लेकर जोर से दबाकर तोड़ फोड़ डालूं। इस नीरव निर्दयता और अविचलित उपेक्षा को प्रबल आघात से अपने बाहुबल से परास्त कर डालूं।

महेन्द्र कमरे से बाहर जाकर फिर लौट आया और बोला—'मैं न रहूँगा तो यहाँ अकेली रहने पर तुम्हारी रक्षा कौन करेगा?'

विनोदिनी ने कहा, 'इसके लिए तुम जरा भी न डरना।

बूआजी ने दासी को काम से हटा दिया है। वह आज मेरे यहाँ आ गयी है और काम करने लगी है। दरवाजे पर ताला बन्द करके हम दोनों स्त्रियां अच्छी तरह रह सकेंगी।

महेन्द्र मन ही मन जितना ही रुष्ट होने लगा, विनोदिनी के प्रति उसका आकर्षण उतना ही बढ़कर प्रबल होने लगा। उस अटल मूर्ति को बलप्रयोग से अपनी छाती से चिपकाकर मसल डालने की इच्छा होने लगी। इसी दारुण इच्छा से अपनी रक्षा करने के लिए महेन्द्र झटपट कदम बढ़ाये मकान से बाहर चला गया।

रास्ते में घूमते-घूमते महेन्द्र प्रतिज्ञा करने लगा कि मैं अब से विनोदिनी की उपेक्षा के बदले अपेक्षा ही दिखाऊँगा। जिस अवस्था में समस्त विश्व-संसार में विनोदिनी का एकमात्र आश्रय स्थल महेन्द्र है, उस अवस्था में भी वह महेन्द्र की इस तरह की नीरवता निर्भयता के साथ, सुदृढ़ स्पष्ट भाव से उपेक्षा कर रही है, उसका प्रत्याख्यान कर रही है, क्या कभी किसी पुरुष के भाग्य में इतना बड़ा अपमान सहने का अवसर प्राप्त हुआ था? महेन्द्र का घमण्ड चूर-चूर हो गया, पर वह एकदम मर जाने को तैयार नहीं हुआ, वह केवल पीड़ित और दलित होने लगा। महेन्द्र ने अपने मन में कहा—'क्या मैं इतना तुच्छ हूँ? मेरे सम्बन्ध में इतना बड़ा दुस्साहस का काम करने का विचार उसके मन में कैसे आया? इस समय मेरे सिवा उसका अपना कौन है?'

सोचते-सोचते उसे हठात् याद पड़ा—'बिहारी।' एकाएक क्षणभर के लिए उसकी छाती का सब रक्तप्रवाह मानो बन्द हो गया। बिहारी को ही विनोदिनी ने अपना आश्रय मान लिया है, उसी पर निर्भर कर रही है। मैं तो केवल एक उपलक्ष्य मात्र हूँ।

मैं तो उसकी सीढ़ी हूँ, उसके पैर रखने और पग-पग पर पदाघात करने की जगह हूँ। इसी साहस से वह मेरे प्रति इतनी अवज्ञा दिखाती है। महेन्द्र के मन में सन्देह हुआ कि बिहारी के साथ विनोदिनी का पत्र व्यवहार चल रहा है और विनोदिनी को उसकी तरफ से कुछ अश्वासन मिला है।

तब महेन्द्र बिहारी के घर की तरफ चला। जब बिहारी के घर पर पहुंचकर उसने दरवाजा खटखटाया, तब रात अधिक हो गयी थी। कई बार खटखटाने पर कहार ने भीतर से किवाड़ खोलकर कहा, 'बाबूजी घर पर नहीं है?'

महेन्द्र चौंक उठा। वह सोचने लगा—मैं जिस समय बेवकूफ की तरह रास्ते में इधर उधर घूम रहा हूँ इस अवसर से लाभ उठाकर बिहारी विनोदिनी के पास चला गया है। इसी कारण विनोदिनी ने इस रात को मेरी इतनी निर्दयता के साथ अपमान किया है और मैं भी खदेड़े गये गधे की तरह भागकर चला आया हूँ।'

महेन्द्र ने अपने पुराने परिचित उस कहार से पूछा, 'भजू, बाबू घर से निकलकर कब बाहर गये हैं?'

भजू ने कहा, 'उनको यहाँ से गये चार पाँच दिन हो गये। वे कहीं पश्चिम में घूमने गये हैं।'

यह सुनकर महेन्द्र की जान बची। उसने सोचा—'अब ज़रा लेट कर आराम से सो रहूँ, अब सारी रात घूमते रहना कठिन है।' इसके बाद वह ऊपर कोठे पर चढ़कर बिहारी के कमरे में गया और वहीं पर कोच के ऊपर लेटकर तुरत ही सो गया।

महेन्द्र ने जिस रात को बिहारी के घर जाकर उपद्रव किया था, उसके दूसरे ही दिन, यह निश्चय किये बिना ही कि कहाँ जाना चाहिये, बिहारी पश्चिम की तरफ चला गया था। बिहारी

ने सोचा कि यहाँ रहने से, पहले के मित्र के साथ किसी दिन ऐसा वीभत्स संघर्ष हो जायगा, जिसके लिए सारा जीवन पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

दूसरे दिन जब महेन्द्र उठा तो ग्यारह बज चुके थे। उठते ही सामने की तिपाई पर उसकी नजर पड़ी। देखा कि विनोदिनी के हाथ की लिखी हुई विहारी के नाम की एक चिट्ठी पत्थर के टुकड़े से दबाकर रखी हुई है। झटपट उसे हाथ में उठाकर देखा कि चिट्ठी अभी खोली नहीं गयी है। प्रवासी बिहारी के लिये वह चिट्ठी प्रतीक्षा कर रही है। काँपते हुए हाथ से उसे खोल कर पढ़ने लगा। यही चिट्ठी विनोदिनी ने अपने गाँव से बिहारी के पास लिखी थी और इसका जबाब उसे नहीं मिला था।

चिट्ठी का प्रत्येक अक्षर महेन्द्र को दंशन करने लगा। लड़कपन से विहारी बराबर महेन्द्र की आड़ में ही पड़ता आया था। जगत् में स्नेह और प्रेम के सम्बन्ध में महेन्द्र देवता का सूखा निर्माल्य ही उसके भाग्य में जुटता था। आज महेन्द्र स्वयं प्रार्थी है, और विहारी विमुख है तो भी विनोदिनी ने महेन्द्र को ठेलकर इस अरसिक बिहारी को वरण कर लिया है। महेन्द्र को भी विनोदिनी को लिखी दो चार चिट्ठियाँ मिली हैं। किन्तु बिहारी की इस चिट्ठी के मुकाबले में वे बिलकुल बनावटी, बेवकूफ फुसलाने की शून्य वञ्चना मात्र हैं।

महेन्द्र को वह बात याद पड़ गयी और वह समझ गया कि किस कारण उसे डाकघर भेजकर अपना नया ठिकाना बता आने के लिए भेजने में विनोदिनी इतनी व्यग्र हो उठी थी। विनोदिनी अपना सब तन-मन अर्पण करके बिहारी का उत्तर पाने के लिए प्रतीक्षा कर रही है।

पहले की प्रथा के अनुसार, अब मालिक न रहने पर भी

भजू कहार ने चाय और मिठाई लाकर महेन्द्र को दिया। महेन्द्र ने चाय पी ली और मिठाई भी खायी। वह स्नान करना भूल गया। खूब गरम बालू पर जैसे पथिक तेज कदम बढ़ाये चलता है, वैसे ही महेन्द्र भी क्षण-क्षण में विनोदिनी की जलाने वाली चिट्ठी पर नजर दौड़ाने लगा। महेन्द्र प्रण करने लगा, 'अब किसी तरह भी विनोदिनी से मुलाकात न करूँगा।' किन्तु फिर यह बात उसके विचार में आ गयी कि, दो एक दिन और बीत जाने पर भी जब विनोदिनी को इस चिट्ठी का जवाब न मिलेगा तो विनोदिनी बिहारी के घर पर आकर उपस्थित होगी और बिहारी की अनुपस्थिति का सारा हाल जानकर उसे एक तरह की सान्त्वना मिलेगी। यह सम्भावना उसके लिये असहनीयसी मालूम होने लगी।

तब उस चिट्ठी को जेब में रख कर महेन्द्र सन्ध्या के कुछ पहले ही पहल पटलडाँगा वाले डेरे पर जा पहुँचा।

महेन्द्र की म्लान अवस्था देख कर विनोदिनी के मन में दया उत्पन्न हुई। वह समझ गयी कि महेन्द्र कल सारी रात शायद रास्ते घूमता हुआ जागता रहा है। उसने महेन्द्र से पूछा —'कल रात को घर नहीं गये ?'

महेन्द्र ने कहा —'नहीं।'

विनोदिनी घबड़ा कर बोल उठीं, 'आज अभी तक क्या तुमने भोजन नहीं किया है ?' यह कह कर सेवापरायणा विनोदिनी उसी समय भोजन की तैयारी करने के लिए तैयार हो गयी।

महेन्द्र ने कहा —'रहने दो, मैं खाकर आ रहा हूँ।'

विनोदिनी—'कहाँ भोजन किया ?'

महेन्द्र—'बिहारी के घर पर।'

क्षण भर के लिए बिनोदिनी का मुँह पीला पड़ गया। थोड़ी

देर तक निरुत्तर रह कर अपने को सँभाल कर विनोदिनी ने पूछा—'विहारीबाबू अच्छी तरह तो हैं ?'

महेन्द्र ने कहा—'अच्छी तरह ही तो हैं। वह तो पश्चिम की तरफ घूमने चला गया है।' यह बात महेन्द्र ने इस तरह कही मानो बिहारी आज ही रवाना हुआ है।

विनोदिनी का चेहरा फिर एक बार पीला पड़ गया। उसने फिर अपने को सम्भाल कर कहा—'ऐसा चञ्चल आदमी तो मैंने कभी नहीं देखा। शायद हम लोगों का सब समाचार उसे मिल गया है। क्या वह बहुत ही नाराज हो गया है ?'

महेन्द्र—'ऐसा न होता तो क्या इन असह्य गरमी के दिनों में कोई आदमी शौक से पश्चिम घूमने जाता है ?'

विनोदिनी—'मेरे सम्बन्ध में भी उन्होंने कुछ बातचीत की थी क्या ?'

महेन्द्र—'बातचीत करने को क्या रहा ? यह लो बिहारी की चिट्ठी।' यह कह कर चिट्ठ विनोदिनी के हाथ में रख कर महेन्द्र तीव्र दृष्टि से उसके मुख का भाव निरीक्षण करने लगा।

विनोदिनी झटपट चिट्ठी लेकर देखने लगी, चिट्ठी खुली थी, लिफाफे पर उसीके अक्षरों में बिहारी का नाम लिखा हुआ थ.। फिर लिफाफे से निकाल कर देखा कि उसीके हाथ की लिखी वह चिट्ठी है। उलट-पुलटकर दोनों तरफ देखने पर कहीं भी बिहारी का लिखा जवाब नहीं दिखाई पड़ा।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद विनोदिनी ने पूछा,—क्या तुमने यह चिट्ठी पढ़ ली है ?'

विनोदिनी के मुँह का रुख देख कर महेन्द्र के मन में भय का सञ्चार हुआ। उसने तुरन्त झूठ ही कह दिया—'नहीं।'

विनोदिनी ने चिट्ठी टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ डाली, फिर उसे अच्छी तरह नोच-नोच कर बाहर फेंक दिया।

महेन्द्र ने कहा, 'मैं घर जा रहा हूँ।'

विनोदिनी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

महेन्द्र—'तुमने जैसी इच्छा प्रकट की है, मैं वैसा ही करूँगा। मैं सात दिन तक अपने घर पर रहूंगा। कालेज जाते समय प्रति दिन दासी के जरिये यहाँ का बन्दोबस्त करा जाया करूँगा। तुम से मुलाकात करके तुम्हें तंग न करूँगा।'

विनोदिनी को महेन्द्र की कोई बात सुनाई पड़ी या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। किन्तु उसने कुछ उत्तर नहीं दिया—खुली खिड़की के बाहर अंधकारमय आकाश की तरफ देखती रह गयी।

महेन्द्र अपना माल असबाब लेकर चला गया।

विनोदिनी उस शून्य, खाली कमरे में जड़ की तरह बहुत देर तक बैठी रही। अन्त में अपने को मानो पूरी शक्ति लगाकर सचेत करने के लिए, छाती पर कसी अँगिया फाड़कर उस पर निष्ठुरता के साथ प्रहार करने लगी।

छाती पीटने का शब्द सुनकर दासी घबड़ाकर दौड़ आयी और कहा, 'यह क्या कर रही हो बहू?'

'तू यहाँ से चली जा,' कहकर गरजकर विनोदिनी उठ खड़ी हुई और जबर्दस्ती उसे कमरे से बाहर निकाल दिया। इसके बाद जोर से धमाके के साथ किवाड़ बन्द कर दिया और फिर जमीन पर लोटकर बाण से बिधे पशु की तरह आर्त्तस्वर से रोने लगी। इस तरह विनोदिनी अपने को घायल करके मूर्छित सी होकर सारी रात खिड़कीके पास पड़ी रही।

सवेरे सूर्य उदय होने पर उसके मन में एकाएक सन्देह

हुआ कि यदि बिहारी घर से बाहर न गया हो और मुझे झूठ धोखा देने के लिए महेन्द्र ने झूठ कहा हो तो ?

इस खयाल के आते ही उसने तुरत दासी को बुलाया और उससे कहा, 'तू अभी जा और बिहारीबाबू के घर जाकर उनका समाचार ले आ।'

एक घण्टा बीत जाने पर लौटकर दासी ने कहा, 'बिहारी बाबू के मकान के सब दरवाजे खिड़कियाँ बन्द हैं। दरवाजे पर धक्का देनेपर भीतर से कहार ने कहा, बाबू घर पर नहीं हैं, वे कहीं पश्चिम की तरफ घूमने चले गये हैं।

अब विनोदिनी के मन में सन्देह का कोई कारण नहीं रह गया।

४१

यह सुनकर कि रातको ही महेन्द्र बिछौना छोड़ कर चला गया, राजलक्ष्मी बहू पर बहुत ही नाराज हुई। उन्होंने सोचा कि आशा की लांछना पाकर ही महेन्द्र चला गया है। उन्होंने आशा से पूछा, 'कल रात को महेन्द्र क्यों चला गया ?'

आशा ने सिर झुकाकर कहा, 'मैं नहीं जानती।'

राजलक्ष्मी ने सोचा, यह अभिमान की बात है। चिढ़कर कहा—तुम नहीं जानती तो दूसरा कौन जानेगा ? उसको तुमने कुछ कहा था ?' आशा ने केवल कह दिया—नहीं।'

राजलक्ष्मी को विश्वास नहीं हुआ। ऐसा भी कहीं सम्भव हो सकता है ?

राजलक्ष्मी ने पूछा, 'कल महीन किस समय गया ?'

आशा ने और भी लज्जित होकर कहा—'मैं नहीं जानती।'

राजलक्ष्मी ने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा, 'तुम कुछ भी नहीं जानती, एकदम नादान बच्ची हो। यह सब तुम्हारी चालाकी है।'

राजलक्ष्मी ने अपने इस मत की तीव्रस्वरमें घोषणा कर दी कि आशा के ही आचरण और स्वभावदोष से महेन्द्र को गृहत्यागी होना पड़ा है। आशा ने नतमस्तक होकर चुपचाप उस भर्त्सना को सह लिया और अपने कमरे मे जाकर वह रोने लगी। उसने अपने मन में सोचा, 'मैं यह नहीं जानती कि क्यों मेरे पति ने मुझे इतने दिनों तक इतना प्यार किया था और मैं यह भी नहीं जानती कि किस उपाय से मैं फिर उनका पुराना प्रेम पा सकूँगी।' जो आदमी प्यार करता है, उसे किस तरह खुश करना चाहिये यह बात हृदय आप ही बतला देता है, किन्तु जो प्यार नहीं करता, उसका मन किस तरह पाया जा सकता है, इसे आशा क्या जाने ? जो आदमी किसी दूसरे को प्यार करता है, उसके निकट से प्यार या सोहाग पाने के लिए जाना बहुत ही लज्जा की बात है। ऐसी चेष्टा वह कैसे कर सकेगी ?

सन्ध्या को ज्योतिषी जी और उनकी बहन आकर उपस्थित हुईं। लड़के की ग्रहशान्ति के लिए राजलक्ष्मीने उनको बुला भेजा था। राजलक्ष्मी ने बहू की जन्मपत्री और उसका हाथ भी देखने को ज्योतिषीजी से अनुरोध किया और इसके लिए आशा को बुलाया। इस संकोच में पड़कर कि दूसरे के सामने मेरे दुर्भाग्य की आलोचना की जायगी, आशा संकोच के मारे बहुत ही कुण्ठित हुई और किसी तरह अपना हाथ बाहर निकाला। इसी समय राजलक्ष्मी को अपने कमरे के अन्धकार-मय बरामदे में किसी के जूते की दबी हुई आहट हुई—ऐसा

मालूम हुआ मानो कोई छिप-कर जाने की चेष्टा कर रहा है। राजलक्ष्मी ने पुकारा—'कौन है ?' पहले कुछ उत्तर नहीं मिला। इसके बाद उन्होंने फिर पुकारा—'कौन जा रहा है ?' तब चुपचाप महेन्द्र ने कमरे में प्रवेश किया।

आशा खुश क्या होती, महेन्द्र की लज्जा देखकर लज्जा से उसका हृदय भर गया। जब महेन्द्र को अपने घर में भी चोर की तरह प्रवेश करना पड़ता है। ज्योतिषी को और भी लज्जा मालूम हुई। सारी दुनिया के सामने अपने पति को जिस लज्जा का सामना करना पड़ रहा है, यही बात आशा के लिए अपने दुःख से भी बढ़कर मालूम होने लगी। राजलक्ष्मी ने जब मीठे स्वर में बहू से कहा, पार्वती से कह दो कि महेन्द्र के लिए भोजन की थाली परोसकर ला दे, तब आशा ने कहा, 'माँ, मैं ही ला देती हूँ।' घर के नौकर नौकरानियों की नजर से भी महेन्द्र को बचा रखना चाहती है।

इधर ज्योतिषीजी और उनकी बहिन को देखकर महेन्द्र मन ही मन बहुत ही रुष्ट हो उठा। उसकी माता और स्त्री दोनों मिलकर दैव की सहायता से उसे वश में करने के लिए इन अशिक्षित मूढ़ व्यक्तियों के साथ निर्लज्ज भाव से षड्यन्त्र रच रही हैं—यह बात महेन्द्र के लिए असह्यसी मालूम हुई। इसके अलावा जब ज्योतिषी की बहिन ने अपने-कण्ठस्वर में अतिरिक्त परिमाण में मधुर स्नेह रस का संचार करके पूछा 'अच्छे तो हो बचा ?' तब महेन्द्र से वहाँ बैठा न रह गया। कुशल प्रश्न का कोई भी उत्तर न देकर उसने कहा, 'माँ, मैं जरा ऊपर जा रहा हूँ।'

माँ ने सोचा, महेन्द्र शायद ऊपर के अपने कमरे में बहू से कुछ बातचीत करना चाहता है। अत्यन्त प्रसन्न होकर झटपट

रसोईघर में जाकर उन्होंने बहू से कहा, 'जाओ, जाओ, तुम जल्द जरा ऊपर जाओ। महेन्द्र को शायद कोई जरूरत है।'

आशा धड़कते हुए हृदय को लिए संकोच के साथ कदम बढ़ाती हुई ऊपर गई। सास की बात से उसने यह समझ लिया

था कि महेन्द्र ने शायद उसे बुलाया है। किन्तु कमरे के अन्दर किसी तरह वह एकाएक घुस न सकी, भीतर जाने के पहले आशा अन्धकार में दरवाजे की आड़ से महेन्द्र को देखने लगी।

महेन्द्र उस समय अत्यन्त शून्य हृदय से फर्श पर के बिछौने पर तकिये के सहारे लेटकर छत की कड़ियों को गिन रहा था। वही महेन्द्र हैं, सब चीजें वे ही हैं, किन्तु यह कैसा परिवर्तन हो गया है। इस छोटे से सोने के कमरे को एकदिन महेन्द्र ने स्वर्ग बना दिया था, आज किस कारण उस पुरानी आनन्दस्मृति को मन में लाकर महेन्द्र इस पवित्र कमरे का अपमान कर रहा है। यदि इतना कष्ट है, इतनी उदासीनता है, इतनी चञ्चलता है, तो इस सेज पर अब मत बैठना, ऐ महेन्द्र !

यहाँ आनेपर भी यदि वे परिपूर्ण गम्भीर रातें, वे सब सुनिवीड मध्याह्न, अपने को भुला देनेवाला और कामों की चिन्ता दूर कर देनेवाला प्रबल वर्षा का दिन, दक्षिणवायुकंपित वसन्तकालीन विह्वल सन्ध्या, वे सब अनन्त, असीम असख्य अनिर्वचनीय बातचीत यदि याद नहीं आती तो इस मकान में और कई कमरे हैं, इस छोटे से कमरे में अब क्षण भर के लिए भी मत ठहरो।

आशा अन्धकार में खड़ी होकर जितना ही महेन्द्र को देखने लगी, उसके मन में उतना ही यह विचार आने लगा कि महेन्द्र

अभी तुरन्त विनोदिनी के पास से आया है, उसके अङ्ग में उसी विनोदिनी के अङ्ग का स्पर्श अब भी लगा हुआ है, उसकी आँखों में उसी विनोदि ी की मूर्ति बसी हुई है, कानों में उसी विनोदिनी का कण्ठस्वर मौजूद है। उसके मन में विनोदिनी की वासना लिप्त है, एकदम उसी में मिली है। इस महेन्द्र को आशा किस तरह अपनी पवित्र भक्ति अर्पित करेगी, किस तरह एकाग्रभाव से उससे कहेगी, 'आओ, मेरे अनन्य परायण हृदय में आओ, मेरे अटल निष्ठ सतीप्रेम के शुभ्र शतदल पर अपने दोनों चरण रख दो।' वह अपनी मौसी का उपदेश, पुराणों की कथा, शास्त्रों का अनुशासन कुछ भी न मान सकी। इस दाम्पत्यस्वर्ग से च्युत महेन्द्र को आज देवता के रूप में न समझ सकी। उसने आज विनोदिनी के कलङ्कसागर में अपने हृदय देवता को विसर्जित कर दिया। उस प्रेमपूर्ण रात्रि के अन्धकार में उसके कानों में, हृदय में, मस्तिष्क में, समूचे शरीर के रक्त में, चारों ओर के ससार में, आकाश के नक्षत्रों में, दीवाल से घिरी एकान्त छत में, कमरे के अन्दर छोड़े गये विरहशय्या पर, एक भयानक गम्भीर व्याकुलता के साथ विसर्जन का बाजा बजने लगा।

विनोदिनी का महेन्द्र मानो आशा के लिए पर-पुरुष है, पर-पुरुष से भी अधिक है। वह किसी तरह भी कमरे के अन्दर न जा सकी।

इसी समय महेन्द्र की अनमानी दृष्टि ऊपर की कड़ियों से उतरकर सामने की दीवाल पर पड़ी महेन्द्र के चित्र के पास ही आशा का भी एक फाटोग्राफ टँगा हुआ है। आशा की इच्छा हुई कि उसे अपने आँचल से ढँक दे, खींच कर फाड़ डाले और अपने पास ले आवे। वह यह सोचकर अपने को धिक्कारने लगी

कि इतने दिनों तक क्यों मेरी नजर उसपर नहीं पड़ी, क्यों उसे वहाँ से उतार कर फेंक न.ीं दी। उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो महेन्द्र मन ही मन हँस रहा है और उसके हृदय के आसन पर जिस विनोदिनी की जो मूर्ति विराजमान है वह भी मानो अपनी दोनों भौंहों के बीच से उस फोटोग्राफ के प्रति हँसी के साथ कटाक्षपात कर रही है।

अन्त में महेन्द्र की पीड़ित उदास दृष्टि दीवाल से नीचे उतर आयी आशा अपनी मूर्खता दूर करने के लिए आजकल सन्ध्या के समय घरके काम-काज और सास की सेवा से अवकाश मिलते ही बड़ी रात बीतने तक एकान्त में बैठकर पढ़ा करती है। उसके पढ़ने की कई किताबें और लिखने की कई कापियाँ एक तरफ रखी हुई थीं। हठात् महेन्द्र ने आलस भाव से उसमें से एक कापी खींच ली और उसे खोलकर देखने लगा। आशा को इच्छा हुई कि चिल्लाकर दौड़ जाऊँ और उसे छीन लाऊँ। यह सोचकर कि अब मेरे कच्चे हाथ के भद्दे अक्षरों पर महेन्द्र की हृदय हीन विद्रूप दृष्टि अवश्य पड़ेगी तो वह वहाँ क्षणभर भी और न ठहर सकी। वह तेजी से नीचे उतर गयी। पैरों के शब्द छिपाने की चेष्टा भी न कर सकी।

महेन्द्र के लिए रसोई तैयार हो गयी थी। राजलक्ष्म समझ रही थी कि महेन्द्र अपनी स्त्री के साथ एकान्त में प्रेमपूर्वक वार्तालाप करने में व्यस्त है। इसलिए भोजन परोसकर वहाँ न जाकर उसको विघ्न डालने की उनकी इच्छा नहीं हो रही थी। आशा को नीचे उतरते देखकर उन्होंने भोजन परोस कर खबर दी। महेन्द्र ज्योंही भोजन करने गया त्योंही आशा उस कमरे में दौड़ गई और अपना चित्र फाड़कर छत की दीवाल के बाहर फेंक दिया, इसके बाद अपनी किताबें भी वहाँ से उठा कर

ले गयी।

भोजन करके महेन्द्र अपने सोने के कमरे में आ बैठा। राजलक्ष्मी के आस-पास खोजकर बहू का पता लगाया पर कहीं भी वह दिखाई न पड़ी। अंत में नीचे के तल्ले में रसोई घर में जाकर देखा कि आशा उसके लिए दूध औंटा रही है। इसकी कोई जरूरत नहीं थी, क्यों कि जो दासी राजलक्ष्मी के लिए रात को पीने का दूध गर्म करती है, वह पास ही थी और आशा के इस अकारण उत्साह पर आपत्ति कर रहीं थी। विशुद्ध जल मिलाकर दूध का जितना अंश वह चुराकर अपना काम चलाती थी, उसके आज व्यर्थ हो जाने की सम्भावना से वह मन ही मन व्याकुल हो रही थी।

राजलक्ष्मी ने कहा, 'यह क्या बहू, यहाँ क्यों? जाओ ऊपर जाओ।'

आशा ऊपर चली गयी पर वहाँ जाकर अपनी सास के कमरे में बैठ रही। बहू का ऐसा बर्ताव देखकर राजलक्ष्मी रुष्ट हो गयीं। उन्होंने सोचा—'यदि उस मायाविनी का मायाजाल छोड़कर किसी तरह क्षणभर के लिए घर आया भी तो, बहू बिगड़ा-बिगड़ी और मान अभिमान करके उससे फिर घर छुड़ाने की चेष्टा में लग गयी है। यह तो आशा का ही दोष था कि महेन्द्र विनोदिनी के फन्दे में जा फँसा। पुरुषों का तो यह स्वभाव ही है कि वे कुमार्ग में जाने को तैयार रहते हैं, स्त्रियों को चाहिए कि छल बल और कौशल से उन्हें सीधे रास्ते पर रखें।'

राजलक्ष्मी ने तीव्र भर्त्सना के स्वर में कहा, तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है बहू? तुम्हारे भाग्य से यदि तुम्हारे पति किसी तरह घर आ गये तो तुम इस प्रकार कोने-कोने में छिपी क्यों फिर रही हो?'

आशा अपने को ही अपराधी समझकर अंकुश खाये हुए हाथी का-सा चित्त लिए ऊपर चली गयी और मन को दुविधा में पड़ने का कुछ भी अवकाश न देखकर एक ही सांस में कमरे के भीतर पहुंच गई ! दस बज चुके थे। महेन्द्र ठीक उसी समय बिछौने के सामने खड़ा होकर बहुत देर तक व्यर्थ ही मसहरी झाड़ रहा था। विनोदिनी के प्रति उसके मन में प्रबल मान का भाव उमड़ पड़ा था। वह मन ही मन कह रहा था—'विनोदिनी ने क्या मुझे अपना ऐसा खरीदा हुआ गुलाम समझ रखा है कि आशा के पास मुझे भेजने में उसके मन में जरा भी आशंका नहीं उत्पन्न हुई। आज से यदि मैं आशा के प्रति अपने कर्तव्य पालन करने लगूँ तो विनोदिनी किसके सहारे इस दुनियाँ में खड़ी होगी ? मैं क्या इतना अकर्मण्य हूँ कि कर्तव्य पालन की इच्छा करना मेरे लिए एकदम असम्भव है ? विनोदिनी के पास अन्त में क्या मेरा यही परिचय हुआ ? श्रद्धा भी खो दी और प्रेम भी नहीं पाया। मुझे अपमानित करने में उसे जरा भी दुविधा नहीं मालूम हुई।' महेन्द्र मसहरी के सामने खड़ा होकर दृढ़चित से प्रतिज्ञा कर रहा था कि विनोदिनी के इस घमंड का प्रतिवाद करूँगा, जैसे ही अपने हृदय को अनुकूल बनाकर विनोदिनी द्वारा किये गये अपमान का बदला लूंगा।

आशा ज्यों ही कमरे में घुसी, महेन्द्र का अन्यमनस्क भाव से मसहरी झाड़ना बन्द हो गया। वह क्या कहकर आशा के साथ बातचीत शुरू करेगा, यह एक बहुत गूढ़ समस्या उसके सामने उपस्थित हो गयी।

महेन्द्र ने रूखी हँसी-हसकर हठात् जो बात मुँह में आ गया, उसे ही कह डाली। कहा—'देखता हूँ, तुमने भी मेरी तरह पढ़ने में मन लगाया है। अभी मैंने यहाँ जो पुस्तकें कापी आदि देखे थे वे कहाँ चले गये ?'

यह बात जो केवल बेगार टालने की सी ही सुनाई नहीं पड़ी बल्कि इससे आशा के मन में बड़ी चोट लगी। मूढ़ आशा शिक्षिता बनने की कोशिश कर रही थी, यह एक उसके लिए बड़ी गुप्त बात थी। आशा ने स्थिर कर लिया था कि यह बात बहुत ही हँसने लायक है। इसके इस शिक्षालाभ के संकल्प में यदि लेशमात्र भी किसी की हँसी दिल्लगी असह्य है तो महेन्द्र की ही। उसी महेन्द्र ने जब इतने दिनों के बाद प्रथम बातचीत के समय उसी बात का अवतरण दिया तब निष्ठुर बेंत की चोट खाये हुए बच्चे के कोमल शरीर की तरह आशा का समूचा मन संकुचित और व्यथित हो उठा। वह कुछ जवाब न देकर, मुँह फेरकर तिपाई का किनारा पकड़े खड़ी रह गयी।

महेन्द्र ने भी मुँह से उक्त उद्गार निकलने के साथ ही समझ लिया था कि बात ठीक संगीत या समयोपयुक्त नहीं हुई—किन्तु वर्तमान अवस्था में कौन सी बात समयोपयोगी होगी यह बहुत सोचने पर भी वह ठीक न रह सका। बीच में इतने बड़े विप्लव के बाद पहले की तरह कोई सीधी सादी सहज बात अच्छी नहीं लगती, हृदय भी एकदम गूंगा हो चला है, वह कोई नयी बात कहने के लिए तैयार नहीं है। महेन्द ने सोचा, बिछौने पर पहुंच जाने से शायद उसके छोटे से घेरे में बातचीत करना सहज हो जाय।' यही सोचकर महेन्द्र मसहरी का बाहरी हिस्सा फिर झाड़ने लगा। नया अभिनेता जिस तरह रंगभूमि में प्रवेश करने के पहले नेपथ्य के द्वार पर खड़े रहकर अपने विषय को मन ही मन दुहराकर याद करता है, उसी तरह महेन्द्र मसहरी के सामने खड़े होकर मन ही-मन अपने वक्तव्य और कर्त्तव्य की आलोचना करने लगा। इसी समय एक बहुत मृदु शब्द सुनकर महेन्द्र ने मुँह फेरकर देखा, आशा कमरे में नहीं है।

४२

दूसरे दिन सवेरे महेन्द्र ने माता से कहा, 'माँ, लिखने पढ़ने के लिए मुझे एक एकान्त स्वतन्त्र कमरा चाहिये। चाची जिस कमरे में रहती थीं, उसी कमरे में मैं रहूँगा।'

यह सुनकर माता खुश हो गयीं। सोचने लगीं, 'तब तो महेन्द्र घर पर ही रहेगा। मालूम होता है कि बहू के साथ मेल जोल हो गया। मेरी सोने की तरह लक्ष्मी सदृश बहू का क्या महीना चिरकाल तक अनादर कर सकता है। ऐसी लक्ष्म स्त्री को छोड़कर न मालूम कहाँ से आयी हुई मायाविद डाइन को लेकर कितने दिन तक भला कोई आदमी भूला भटका रह सकता है।'

माता झटपट बोल उठीं—'यह तो बहुत ठीक कहते हो महीन!' यह कहकर तुरत ताली निकाल कर उन्होंने बन्द दरवाजा खोला और झाड़कर कमरा साफ सुथरा करने का धूम मचा दिया। 'बहू, बहू, ऐ बहू, तू कहाँ गयी?' बहुत खोज करने पर मकान के एक कोने में सकुची हुई बैठी बहू का पता लगा। उसे आज्ञा दी गयी—'जाओ, एक साफ जाजिम निकाल लाओ, यहाँ मेज नहीं है, यहाँ मेज रखवा देनी होगी। इस दीये से यहाँ का काम न चलेगा, ऊपर से लैम्प लाकर रखो।' इस प्रकार दोनों ने मिलकर इस मकान के राजाधिराज के लिए अन्नपूर्णा के कमरे में एक विस्तृत राजासन तैयार कर दिया। महेन्द्र इस सेवा करनेवालियों के प्रति जरा भी खयाल न करके गम्भीर मुँह बनाये अपनी किताबें कापी आदि लेकर कमरे में जा बैठा, और लेशमात्र समय भी बरबाद न करके उसी क्षण उसने पढ़ना शुरू कर दिया।

शाम को भोजन के बाद महेन्द्र फिर पढ़ने बैठा। यह बात किसी की भी समझ में नहीं आयी कि वह अपने सोने के कमरे में सोवेगा। राजलक्ष्मी ने बहुत ही यत्न के साथ आशा की जड़ पुतली की भाँति सजाकर कहा—'जाओ तो बहू, महेन्द्र से पूछ आओ, उसका बिछौना क्या ऊपर रहेगा ?'

इस प्रस्ताव से आशा एक कदम भी आगे न बढ़ सकी, वह चुपचाप सिर झुकाकर खड़ी रह गयी। राजलक्ष्मी रुष्ट होकर उसकी तीव्र भर्त्सना करने लगीं। इससे आशा बहुत कष्ट से धीरे धीरे दरवाजे के पास गयी, किसी तरह भी वह आगे न बढ़ सकी। राजलक्ष्मी दूर से बहू का यह व्यवहार देख रही थीं। वे बरामदे के कोने में खड़ी होकर बहू को क्रोधित भाव से इशारा करने लगीं। आशा मुर्दा सी होकर कमरे में घुस गयी। महेन्द्र पीछे पदशब्द सुनकर किताब से सिर ऊपर न उठाकर ही बोल उठा,—'यहाँ मुझे देर लगेगी, फिर खूब तड़के ही उठकर पढ़ना होगा, मैं यहीं सोऊँगा।

कैसी लज्जा की बात है ! आशा क्या महेन्द्र से ऊपर के कमरे में चल सोने के लिए अनुरोध करने आयी थी ?

कमरे से बाहर निकालते ही राजलक्ष्मी ने रूखे स्वर में पूछा—'क्यों, क्या हुआ ?'

आशा ने कहा—'वे अभी पढ़ रहे हैं। नीचे ही सोवेंगे।' यह कहकर वह अपने अपमानित शयनगृह में जाकर बैठ गयी। कहीं भी उसे सुख नहीं है—सारी पृथ्वी सर्वत्र ही मानो दोपहर को उत्तप्त भूमि की तरह गरम हो उठी है।

थोड़ी रात बीतने पर आशा के कमरे के बन्द दरवाजे पर किसी ने धक्का देकर आवाज दी—'बहू, बहू, दरवाजा खोल।'

आशा ने झटपट दरवाजा खोल दिया। राजलक्ष्मी नीचे से

ऊपर सीढ़ियों से चढ़ने से थककर हाँफ रही थीं। कमरे में प्रवेश करते ही वे बिस्तर पर बैठ गयीं और बोलने की सक्ति लौट आने पर रुँधे गले से कहा, बहू, तुम्हारा यह कैसा ढंग है। ऊपर आकर दरवाजा बन्द करके पड़ी हो क्या यह झगड़ने का समय है? इतना कष्ट सहकर भी तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं हुई। जाओ नीचे जाओ।'

आशा ने मीठे स्वर में कहा—'उन्होंने अकेले रहने के लिए कहा है।'

राजलक्ष्मी—'उसने अकेले रहने की बात कही और तुमने मान ली। क्रोध के आवेश में उसने क्या कह दिया, यही सुनकर क्या इस तरह रूठकर बैठ जाना अच्छा है? इतना अभिमान करने से काम नहीं चल सकता। जाओ, जल्द जाओ।'

दुःख के दिनों में सास को बहू से कुछ भी लज्जा नहीं रह गयी है। उन्होंने सोचा कि मेरे हाथ में जो कुछ उपाय रह गये हैं, उनके ही जरिये महेन्द्र को किसी तरह घर पर रखना होगा।

जोश के साथ बात करते राजलक्ष्मी की साँस फिर फूलने लगा। उसे कुछ रोककर वे उठ. आशा दुबारा कुछ न कहकर उनको पकड़कर नीचे ले चली। आशा ने राजलक्ष्मी को उनके सोने के कमरे में ले जाकर बिछौने पर लिटा दिया। इसके बाद पीठ के नीचे तकिया रखकर ठीक करने लगी। राजलक्ष्मी ने कहा —'रहने दो बहू, रहने दो। दासी को बुला दो। तुम जाओ, और देर मत करो।'

इस बार आशा ने जरा भी दुविधा नहीं की। वह सास के कमरे से निकलकर एकदम महेन्द्र के कमरे में जा पहुँची। महेन्द्र के सामने मेज पर खुली हुई पुस्तक पड़ी है। वह मेज पर दोनों पैर फैलाये कुर्सी के पिछले भाग पर सिर रखकर एकाम

भाव से न मालूम क्या सोच रहा है। पीछे पैर की आहट सुनकर वह एका-एक चौंक उठा और उलटकर ताकने लगा। वह किसके ध्यान में निमग्न था, हठात् भ्रम हो गया कि कहीं वही ध्यान की प्रिया ही मेरे पास आ गयी है। आशा को देखकर महेन्द्र संयत हो गया और पैर उतार कर खुली हुई किताब को अपनी गोद में खींच ली।

महेन्द्र को आज मन ही मन बड़ा आश्चर्य हुआ। आजकल तो आशा इस तरह बिना संकोच के उसके सामने नहीं आती, देवयोग से यदि सामना भी हो जाता है तो वह तुरत ही चली जाती है। आज इतनी रात को, इतने सहज भाव से वह उसके कमरे में चली आयी, यह बड़ी ही आश्चर्यजनक बात है। अपनी पुस्तक से दृष्टि हटाये बिना ही महेन्द्र समझ गया कि आज आशा के चले जाने का लक्षण नहीं है आशा महेन्द्र के सामने स्थिर भावसे आकर खड़ी हो गयी। तब महेन्द्र पढ़ने का नकली खेल न रच सका, उसने मुँह उठाकर देखा। आशा ने सुस्पष्ट स्वर में कहा—'माँ का साँस फूलना बढ़ गया है, तुम चलकर उन्हें एक बार देख लेते तो अच्छा होता।

महेन्द्र—'वे कहाँ हैं?'

आशा—'अपने सोने के कमरे में हैं, उन्हें नींद नहीं आ रही है।'

महेन्द्र—'तो चलो, उनको देख आवें।'

बहुत दिनों के बाद आशा के साथ इतनी बातचीत करके महेन्द्र के मन का बोझ मानो कुछ हलका हो गया। नीरवता मानो दुर्भेद्य दुर्ग की दीवाल की भांति पति-पत्नी के बीच काली छाया फैलाकर खड़ी थी, महेन्द्र के पास उसे तोड़ने का कोई हथियार नहीं था—ऐसे ही समय में मानो आशा ने अपने ही

हाथों से उस किले का एक छोटा दरवाजा खोल दिया।

राजलक्ष्मी के दरवाजे के बाहर आशा खड़ी रह गयी महेन्द्र कमरे के अन्दर चला गया। महेन्द्र को असमय में ही अपने कमरे में आते देखकर राजलक्ष्मी डर गयीं। उन्होंने सोचा शायद फिर आशा से लड़ झगड़कर घर से बिदा होने के लिए आया है। उन्होंने कहा—'महेन्द्र, अब तक सोया नहीं ?'

महेन्द्र ने कहा—माँ, क्या तुम्हारी साँस की बीमारी बढ़ गयी है ?'

इतने दिनों के बाद यह प्रश्न सुनकर माता के मन में बड़ा अभिमान हुआ। उन्होंने सोचा-बहू ने जाकर कहा है, इसी लिए आज महीन माँ की खबर लेने आया है। इस अभिमान के आवेग से उनका हृदय और भी आन्दोलित हो उठा। बड़े कष्ट से अपने को सँभालकर उन्होंने कहा, 'जा तू सोने जा। मेरा यह रोग तो बराबर का है।'

महेन्द्र—'नहीं माँ, एक बार अच्छी तरह जाँचकर देखना चाहिये। इसको साधारण रोग समझकर इसकी उपेक्षा न होनी चाहिये।'

महेन्द्र जानता था कि माता के हृत्पिण्ड में कमजोरी है, इस कारण और माता के मुँह के लक्षण देखकर उसे कुछ घबराहट सी मालूम हुई।

माँ ने कहा—'रोग की परीक्षा करने की जरूरत नहीं है, मेरा यह रोग अच्छा होनेवाला नहीं है।'

महेन्द्र ने कहा 'अच्छा, आज रातभर के लिए एक नींद लानेवाली दवा ला देता हूँ, कल अच्छी तरह देखा जायगा।'

राजलक्ष्मी—'बहुत दवाइयाँ खा चुकी हूँ, दवा से मुझे कुछ भी लाभ नहीं होता। जाओ महीन, बहुत रात बीत गयी, तुम

सोने जाओ।'

महेन्द्र—तुम्हारी तबीयत कुछ अच्छी हो जाने पर मैं जाऊँगा।

तब अभिमानिनी राजलक्ष्मी ने दरवाजे की आड़ में खड़ी बहू को सम्बोधित करके कहा, 'बहू तुम इतनी रात को महेन्द्र को तङ्ग करने के लिए यहाँ क्यों ले आयी हो ?' यह कहते-कहते उनकी साँस की बीमारी और भी बढ़ गयी।

तब आशा ने कमरे के अन्दर जाकर मृदु किन्तु दृढ़ स्वर से कहा, 'जाओ, तुम सोने जाओ, मैं माँ के पास रहूँगी।'

महेन्द्र ने आशा को आड़ में ले जाकर कहा, मैं एक दवा मँगा रहा हूँ। शीशी में दो दाग। एक दाग दवा पिलाने से यदि नींद न आवे तो बची हुई दवा फिर पिला देना। रात को तबियत अधिक खराब हो जाय तो मुझे खबर देने में भूल न जाना।'

इतना कहकर महेन्द्र अपने कमरे में लौट गया। आज जिस मूर्ति में आशा उसके सामने आयी, वह उसके लिए मानो एक नयी मूर्ति थी। इस आशा में संकोच नहीं है, दीनता नहीं है, यह आशा अपने अधिकारों के बीच स्वयं अधिष्ठित है, उसके लिए वह महेन्द्र के निकट भिक्षाप्रार्थिनी नहीं है यद्यपि अपनी स्त्री की उसने उपेक्षा की है, किन्तु आज घर को इस बहू के प्रति उसके मन में श्रद्धा उत्पन्न हो गयी।

इस बात पर राजलक्ष्मी मन ही मन बहुत खुश हुईं कि आशा मेरा इतना खयाल रखती है कि मेरे लिए महेन्द्र को बुला लायी। किन्तु ऊपरी तौर पर कहा, 'बहू, मैंने तुमको सोने के लिए भेजा था, तुम महेन्द्र को घसीट क्यों लायी ?'

आशा उसका कुछ उत्तर न देकर पंखा हाथ में लिये उनके पीछे बैठकर हवा करने लगी।

राजलक्ष्मी ने कहा—जाओ बहू, सोने जाओ।'

आशा ने मीठे स्वर में कहा—मुझे यहीं बैठने के लिए कह गये हैं।' आशा जानती थी कि, महेन्द्र माता की सेवा में उसे लगा गया है इस खबर से राजलक्ष्मी खुश होगी।

—०—

४३

राजलक्ष्मी ने जब स्पष्ट रूप से देखा कि आशा महेन्द्र का मन अपने वश में नहीं रख सकती तब अपने मन में उन्होंने सोचा—'कम से कम मेरी बीमारी के कारण भी यदि महेन्द्र को यहाँ रहना पड़े तो भी एक तरह अच्छा ही है।' उनको यह आशंका होने लगी कि कहीं मेरी बीमारी एकदम अच्छी न हो जाय। आशा से छिपाकर वे दवा फेंक देने लगीं।

अनमना महेन्द्र इधर बहुत ध्यान न दे सकता था। किन्तु आशा यह देखने लगी कि राजलक्ष्मी का रोग किसी तरह भी नहीं घट रहा है। आशा सोचने लगी कि महेन्द्र खूब सोच-विचारकर दवा नहीं दे रहा है। वे इतनी घबराहट में रहा करते हैं कि माता की बीमारी भी उन्हें सचेत करने में असमर्थ हो रही है। महेन्द्र की इतनी अधिक दुर्गति देखकर आशा मन ही मन उसको धिक्कार दिये बिना स्थिर न रह सकी। एक तरफ नष्ट हो जाता है ?

एक दिन सन्ध्या को रोग का कष्ट बढ़ने पर राजलक्ष्मी को बिहारी की याद आ गयी। इसका ठिकाना नहीं है कि बिहारी कितने दिनों से यहाँ नहीं आया। उन्होंने आशा से पूछा—'बहू,

तुम जानती हो आजकल विहारी कहाँ है ?' आशा समझ गयी कि सर्वदा से रोग कष्ट के समय बिहारी ही मां की सेवा करता आया है। इसी से कष्ट के समय बिहारी की याद आयी है। हाय, इस घर का अटल अवलम्ब यह चिरकाल के विहारी भी यहाँ से हट गये ! यदि विहारी रहता तो इस कुसमय में माँ की सेवा होती, इनकी तरह ये हृदयहीन नहीं हैं। आशा के हृदय से एक लम्बी साँस निकल पड़ी।

राजलक्ष्मी—'शायद महेन्द्र ने विहारी से झगड़ा किया है। यह करके इसने बहुत ही बुरा किया बहू। महेन्द्र को उसके समान हितैषी मित्र और नहीं मिल सकता।' यह कहते-कहते उनकी दोनों आँखों में आँसू भर आये।

एक एक करके आशा को बहुत सी बातें याद आ गयीं। अन्धमूढ़ आशा को यथासमय सचेत करने के लिए विहारी ने कितनी चेष्टाएँ की हैं और उन्हीं चेष्टाओं के कारण वह धीरे-धीरे आशा के लिए अप्रिय हो उठा। यह बात याद करके आशा मन ही मन अपना तीव्र अपमान करने लगी। एकमात्र सच्चे सुहृद् को लांछित करके जो एकमात्र शत्रु को अपनी गोद में खींच लाता है उस कृतघ्न मित्र को विधाता क्यों न दण्ड देंगे ? भग्न-हृदय विहारी आह खींचकर इस घर से बिदा हुआ है, वह आह क्या इस घर पर न लगेगी ?

बहुत देर तक चिन्तित भाव से स्थिर रहकर राजलक्ष्मी हठात् बोल उठी, 'बहू, यदि विहारी रहता तो इस दुर्दिन में वह हम लोगों की रक्षा करता, हालत इतनी न बिगड़ती।'

आशा चुपचाप सोचने लगी। राजलक्ष्मी ने साँस खींचकर कहा 'यदि उसे मेरी बिमारी की खबर लग जाय तो वह बिना आये न रह सकेगा।'

आशा समझ गयी कि राजलक्ष्मी की इच्छा है कि बिहारी के अभाव में वे आजकल एकदम निराश्रय हो गयी हैं।

कमरे की बत्ती बुझाकर महेन्द्र चाँदनी में खिड़की के पास चुपचाप खड़ा था। पढ़ने में तबीयत नहीं लगती। घर में कोई सुख नहीं है जो अपने परम आत्मीय है, उनके साथ का सहज सम्बन्ध दूर हो जाने पर, ऐसी विचित्र स्थिति आ जाती है कि न तो उन्हें पराये की तरह अनायास छोड़ा ही जाता है और न तो प्रियजनों की तरह अनायास उन्हें ग्रहण ही किया जाता है उनकी यह अत्याज्य आत्मीयता दिन रात असहनीय बोझ की भांति छाती को दबाये रहती है। माँ के सामने जाने की महेन्द्र की इच्छा नहीं होती। वे एकाएक महेन्द्र को अपने पास आते देखते ही इस तरह के शंकित उद्वेग से उसके मुँह की तरफ देखने लगती हैं कि महेंद्र को उससे चोट लगती है। आशा किसी काम के बहाने पास आने पर उसके साथ बातचीत करना भी कठिन हो जाता है। इस हालत में तो अब दिन बीतना नहीं चाहता। महेन्द्र ने दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि कम से कम सात दिनों तक तो जरूर ही विनोदिनी से मुलाकात न करूंगा। प्रतिज्ञा पूर्ति की अवधि में अभी दो दिन और बाकी हैं—किस तरह ये दो दिन कटेंगे।

महेन्द्र ने पीछे से किसी के पैर की आहट सुनी। समझ गया कि आशा कमरे में आयी है। मानो उसे कुछ भी सुनाई नहीं पड़ा है, इस तरह का रुख बनाकर स्थिर भाव से खड़ा रह गया। नकली रुख की बात आशा समझ गयी, तो भी कमरे से लौटकर नहीं गयी। पीछे खड़ी रहकर उसने कहा—'एक बात है, वही कहकर मैं जा रही हूँ।'

महेन्द्र ने फिरकर कहा,—'जाना क्यों चाहती हो, जरा बैठ जाओ न।'

आशा इस शिष्टता पर कुछ भी ध्यान न देकर स्थिर खड़ी रही और उसी हालत में उसने कहा—'बिहरी बाबू को माँ की बीमारी का समाचार देना उचित है।'

बिहारी का नाम सुनते ही महेन्द्र के हृदय में बड़ी चोट लगी। अपने को जरा संभालकर उसने कहा—'क्यों उचित है, क्या मेरी चिकित्सा पर विश्वास नहीं होता है?'

महेन्द्र माता की चिकित्सा करने में यथोचित यत्न नहीं कर रहा है, इस तरह की भावना से आशा का हृदय परिपूर्ण हो उठा था, इसलिए उसके मुँह से यह उद्गार निकल पड़ा—'कहा—माँ की बीमारी तो दिन पर दिन बढ़ती चली जा रही है, जरा भी अच्छी नहीं हो रही है।'

इस सामान्य बात के भीतर की गरमी महेन्द्र समझ गया। ऐसी गूढ़ भर्त्सना तो आशा ने अब तक महेन्द्र की कभी नहीं की थी। महेन्द्र ने अपने अहंकार से घायल होकर विस्मित विद्रुप के साथ कहा—'अब तो मैं यही देख रहा हूँ कि तुमसे ही मुझे डाक्टरी सीखनी पड़ेगी!'

इस व्यंगवाक्य से आशा के वेदना से भरे हृदय में हठात् ऐसी चोट लगी, जिसकी उसने कभी आशा तक भी नहीं की थी। इसके अलावा कमरा अंधेरा था, इसी से सदा की सरल निरुत्तर आशा आज विन संकोच के तीव्र तेज के साथ बोल उठी, डाक्टरी भले ही मत सीखो, किन्तु माँ की सेवा करना सीख सकते हो।'

आशा से ऐसा जवाब पाकर महेन्द्र के विस्मय की सीमा न रही। इस अनभ्यस्त तीव्र वाक्यों से महेन्द्र निष्ठुर हो उठा।

कहा—'तुम्हारे बिहारी बाबू को मैंने क्यों इस घर में आने के लिए मना किया सो तो तुम जानती ही हो, फिर शायद तुमने उसे याद किया है।'

आशा तेज कदम बढ़ाये उस कमरे से चली गयी, लज्जा का तूफान मानो उसे वहां से ठेलकर ले गया। लज्जा उसे अपने लिए नहीं थी, किन्तु जो आदमी स्वयं अपराध में डूब गया है, वह ऐसे अन्याय अपवाद की बात अपने मुँह से निकाल सकता है। इतनी बड़ी निर्लज्जता तो पर्वत सदृश लज्जा से भी ढँकी नहीं जा सकती।

आशा के चले जाते ही महेन्द्र को सम्पूर्णरूप से अपनी ही हार मालूम होने लगी। आशा किसी हाल में भी किसी अवस्था में महेन्द्र को ऐसा धिक्कार दे सकती है, इसकी महेन्द्र कभी कल्पना तक भी न कर सका था। महेन्द्र ने देखा, जहाँ उसका सिंहासन था, वहाँ ही वह धूल में लोट रहा है। इतने दिनों के बाद उसे आशंका हुई कि आशा की वेदना कहीं घृणा में न परिणत हो जाय।

उधर बिहारी की बात याद आते ही विनोदिनी की याद आ गई और उसी की चिन्ता में वह अधीर हो उठा। कौन जाने बिहारी पश्चिम से लौटकर आया है या नहीं। इस बीच में विनोदिनी उसका पता ठिकाना जान भी सकती है, विनोदिनी के साथ उसकी मुलाकात भी हो जाय तो कोई असम्भव नहीं। अब महेन्द्र को अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करना कठिन हो गया।

रात के समय राजलक्ष्मी की छाती में कष्ट बढ़ गया। वे स्थिर न रह सकीं और स्वयं ही महेन्द्र को बुलवाया। बड़े मुश्किल से वाक्य उच्चारण करके कहा 'महीन, बिहारी को

देखने की मेरी बड़ी इच्छा हो रही है, बहुत दिनों से वह नहीं आया।'

आशा सास को पंखा झल रही थी। वह मुँह नीचे किए बैठ रही। महेन्द्र ने कहा, वह यहां नहीं है, कहीं पश्चिम की तरफ घूमने चला गया है।'

राजलक्ष्मी ने कहा, मेरा मन कह रहा है कि वह यहीं है, केवल मुझ से नाराज है, इसी से नहीं आ रहा है। मेरे सिर की कसम कल एक बार तू उसके घर जा।'

महेन्द्र ने कहा, 'अच्छा जाऊंगा।'

आज सभी बिहारी को ही बुला रहे हैं। महेन्द्र को मालूम होने लगा कि समूचे संसार ने मुझे छोड़ दिया है।

४४

दूसरे दिन खूब तड़के ही महेन्द्र बिहारी के घर पहुंचा। देखा, दरवाजे के पास बहुत सी बैलगाड़ियों पर नौकर लोग असबाब लाद रहे हैं। भजू से महेन्द्र ने पूछा, 'मामला क्या है?' भजूने कहा, बाबू गंगाके किनारे एक बगीचा लिया है, वहीं सब असबाब जा रहा है।' महेन्द्र ने पूछा, 'बाबू घर पर हैं?' भजू ने कहा, वे केवल दो दिन कलकत्ते में रह कर कल बगीचे में चले गये हैं।'

सुनकर महेन्द्र का मन आशंका से भर उठा। वह अनुपस्थित था। उसके मन में कुछ भी संशय न रह गया कि इस मौके पर बिहारी और विनोदिनी से मुलाकात हुई है। वह अपनी कल्पना की आँखों से देखने लगा कि विनोदिनी के मकान के सामने भी बैलगाड़ियों पर असबाब लादा जा रहा

है। उसे निश्चय जान पड़ा कि, 'इसीलिये मुझ बेवकूफ को विनोदिनी ने अपने मकान से इतनी दूर हटा दिया था।'

जरा भी देर न करके महेन्द्र ने अपनी गाड़ी पर सवार होकर कोचवान से गाड़ी हकने के लिए कहा। 'घोड़े खूब तेज नहीं चल रहे हैं' यह कह कर महेन्द्र ने बीच बीच में कोचवान को गालियाँ भी दी। उस डेरा के सामने पहुँचते ही उसने देखा कि वहाँ यात्रा की कोई तैयारी नहीं है। भय हुआ कि यह काम कहीं इसके पहले ही न पूरा हो गया हो। उसने जोर से दरवाजे पर धक्का दिया। भीतर से बूढ़े नौकर ने दरवाजा खोला तो तुरत ही महेन्द्र ने पूछा, 'सब समाचार अच्छा तो है?' उसने कहा, 'जी हाँ, सब समाचार अच्छा है।'

महेन्द्र ने ऊपर जाकर देखा, 'विनोदिनी नहाने गयी है। उसके निर्जन सोने के कमरे में जाकर महेन्द्र उसी बिछौने पर लेट गया, जिस पर विनोदिनी रात को सो चुकी थी। उसने उस कोमल बिछौने को दोनों हाथों को बढ़ाकर खींचकर अपनी छाती में दबा लिया और सूंघकर उसके ऊपर मुंह रखकर कहने लगा, 'निष्ठुर! निष्ठुर!'

इस तरह अपने हृदय के उछ्वास को निकाल कर बिछौने से उठकर महेन्द्र अधीर भाव से विनोदिनी की प्रतीक्षा करने लगा। फिर कमरे में टहलते टहलते उसने देखा कि नीचे के बिछौने पर एक बंगला भाषा का अखबार खुला पड़ा हुआ है। समय बिताने के लिए कुछ अन्यमनस्क भाव से उसको उठा लिया। जहाँ उसकी नजर पड़ी, वहीं महेन्द्र को बिहारी का नाम दिखाई पड़ा। क्षण भर में उसका सारा ध्यान समाचार पत्र के उसी स्थान पर जम गया। उस समाचार पत्र में एक पत्र प्रेरक लिखता है कि, 'कम वेतन पानेवाले क्लर्क जब बीमार हो जाते

हैं तो उन्हें बड़ा कष्ट होता है। उन लोगों की मुफ्त चिकित्सा और सेवा के लिए बिहारी बाबू ने गंगा के किनारे एक बगीचा लिया है—वहाँ एक साथ पाँच आदमियों को आश्रय देने का प्रबन्ध किया गया है।' इत्यादि।

महेन्द्र सोचने लगा। विनोदिनी ने यह समाचार अवश्य ही पढ़ लिया है। पढ़कर उसका कैसा भाव हुआ होगा। अवश्य ही उसका मन उस तरफ ही भाग जाना चाहता होगा। केवल इसीलिए नहीं, महेन्द्र का मन इस कारण भी और छटपटाने लगा कि, बिहारी के इस संकल्प से उसके प्रति विनोदिनी के मन में और भी भक्ति बढ़ जायगी। महेन्द्र ने मन ही मन बिहारी को 'पाखण्डी' कहा, बिहारी के इस काम को हुल्लड़बाजी कह कर परिचय दिया—कहा, 'परोपकारी बन जाने की नकली लालसा लड़कपन से ही बिहारी को है।' इसके बाद महेन्द्र अपने को बिहारी की तुलना में एक दम निष्कपट, अकृत्रिम कहकर स्वयं वाहवाही लेने की चेष्टा करने लगा। कहा—'उदारता और आत्मत्याग के ढोंग से साधारण मूढ़ लोगों को बहकाने की चेष्टा को मैं घृणा करता हूँ।' किन्तु हाय, महेन्द्र की इस परम निश्चेष्ट अकृत्रिमता के माहात्म्य को लोग, अर्थात् कोई खास आदमी शायद कुछ भी न समझेगा। महेन्द्र को ऐसा मालूम होने लगा मानों बिहारी ने यह भी उसके ऊपर ही एक चाल चली है।

विनोदिनी के पैरों की आहट सुनकर महेन्द्र झटपट उस समाचारपत्र को मोड़कर उसी पर बैठ गया। स्नान करके जब विनोदिनी कमरे में आयी तो महेन्द्र उसके मुँह की तरफ देखकर आश्चर्य में पड़ गया। उसमें एक विचित्र परिवर्तन हो गया है। वह मानों इधर कई दिनों से आग जलाकर तपस्या कर

रही थी। उसका शरीर दुर्बल हो गया है और उसके शरीर की कृशता को भेद करके, उसके पीले चेहरे पर एक प्रकार की दीप्ति झलक रही है।

विनोदिनी ने बिहारी के उत्तर की आशा छोड़ दी है। उसने कल्पना से अपने प्रति बिहारी की अत्यन्त अवहेलना समझ ली है। इस कारण वह दिन रात चुपचाप जलती जा रही थी। इस जलन से छुटकारा पाने का कोई रास्ता उसके लिए नहीं था। उसने अपने मन में सोचा, मानों मेरी ही तिरस्कार करने के लिए बिहारी पश्चिम की तरफ घूमने चला गया है। बिहारी की खबर पाने का भी कोई उपाय विनोदिनी के हाथ में नहीं है बराबर काम में व्यस्त रहनेवाली, आलस्य से दूर रहनेवाली, विनोदिनी कोई काम न रहने के कारण इस छोटे से मकान में मानो तड़-फड़ा रही है—उसका सारा उद्योग उसी को घायल करके चोट पहुँचा रहा है। अपने समस्त भावी जीवन को इस प्रेमहीन कर्महीन, आनन्दहीन मकान में इस संकीर्ण गली के बीच चिर-काल के लिए आबद्ध कल्पना करके, उसकी विद्रोह प्रकृति मानों अपनी शक्ति से बाहर के भाग्य के विरुद्ध आकाश में माथा ठोकनेकी व्यर्थ चेष्टा कर रही थी। जिस मूढ़ महेन्द्र विनोदिनीके छुटकारा के मार्ग को चारो तरफ से रूँधकर उसके जीवन को ऐसा संकीर्ण बना दिया है, उस महेन्द्र के प्रति विनोदिनी के मन में घृणा और विद्वेष की सीमा नहीं थी। विनोदिनी यह समझ गई थी कि उस महेन्द्र को वह किसी तरह भी अपने से दूर ठेल कर न रख सकेगी। इस छोटे से मकान में महेन्द्र उसके पास सटकर बैठ जायगा—प्रतिदिन के अलक्ष्य आकर्षण से तिल तिल करके उसकी तरफ अधिकतर अग्रसर होता रहेगा। इस अन्धकूप में, इस समाजभ्रष्ट जीवन की कीचड़ से भरी सेजपर

घृणा और आसक्ति में जो प्रतिदिन की लड़ाई मची रहेगी वह बड़ी वीभत्स होगी। विनोदिनी ने अपने हाथ से अपनी चेष्टा से मिट्टी खोदकर महेन्द्र के हृदय की भीतरी तह से, यह जो लपलपाती जीभ वाला लोलुपता के पसीने से युक्त सर्प बाहर निकला है उसके पुच्छमात्र से वह कैसे अपनी रक्षा करेगी। एक तो विनोदिनी का हृदय यों ही व्यथित है उस पर भी यह छोटा सा रूँधा हुआ मकान, और इसके अतिरिक्त महेन्द्र के वासनातरंग से दिनरात टक्कर खाना—इसकी कल्पना करके भी विनोदिनी का सारा हृदय आतंक से पीड़ित हो उठता है। जीवन में इसकी समाप्ति कहाँ है? कब वह इन सब आपत्तियों से छुटकारा पा सकेगी?

विनोदिनी के इस दुर्बल पीले मुख को देखकर महेन्द्र के मन में ईर्षा की आग जल उठी। उसमें क्या ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जिससे वह बिहारी की चिन्ता से इस तपस्विनी को बलपूर्वक उखाड़कर फेंक सके। ईगल पक्षी जिस तरह भेंड़ के बच्चे को क्षणभर में झपट्टा मारकर अपने दुर्गम गगनभेदी पर्वत के घोंसले पर ले जाता है, उसी तरह क्या ऐसा कोई बादलों से घिरा हुआ विश्वविरहित स्थान नहीं है, जहाँ अकेला महेन्द्र अपने इस सुकोमल सुन्दर शिकार को अपने हृदय के पास छिपाकर रख सके। ईर्षा की गरमी से उसकी इच्छा का यह आग्रह चौगुना बढ़ उठा। और क्या, वह एक मुहूर्त के लिए भी विनोदिनी को अपनी आँखों की ओट में रख सकेगा? बिहारी की विभीषिका को बराबर दूर रखना होगा उसको सुई की नोंक भर का भी अवकाश देने का महेन्द्र को अब साहस नहीं हो सकता।

महेन्द्र ने संस्कृत-साहित्य में यह बात पढ़ी थी कि विरह के ताप से रमणी का सौंदर्य और भी सुकुमार हो उठता है। आज विनोदिनी को देखकर वह इस बात का जितना ही अनुभव करने लगा, उसका हृदय उतना ही सुखमिश्रित दुःख के सुतीव्र आन्दोलन से मथित हो उठा।

विनोदिनी ने क्षणभर के लिए स्थिर रहकर महेन्द्र से पूछा, तुम क्या चाय पी आये हो!

महेन्द्र ने कहा, मान लो कि मैं पीकर आया हूँ, पर इसी कारण तुम अपने हाथ से और एक प्याला देने में कृपणता न करना—प्याला मुझे भर दे दे।'

विनोदिनी ने शायद जान बूझकर अत्यन्त निष्ठुर भाव से महेन्द्र को इस उमङ्ग पर एकाएक चोट पहुँचायी। उसने कहा, 'बिहारीबाबू आजकल कहाँ हैं, तुम्हें कुछ खबर मिली?'

क्षण भर में महेन्द्र का चेहरा उदास हो गया। उसने कहा, 'वह तो इस समय कलकत्ते में नहीं है।'

विनोदिनी—'उनका पता क्या है?'

महेन्द्र—'वह तो किसी को अपना पता बतलाना नहीं चाहता।'

विनोदिन.—'खोज करके क्या पता नहीं लगाया जा सकता?'

महेन्द्र—'इस तरह पता लगाने की तो कोई जरूरत मुझे नहीं मालूम होती।'

विनोदिनी—'क्या जरूरत रहने से ही सब कुछ होता है? बचपन की मित्रता क्या कुछ नहीं है?'

महेन्द्र—'मेरा बचपन का मित्र तो विहारी जरूर है, किन्तु तुम्हारे साथ तो उसकी मित्रता केवल दो दिनों की ही है, तो भी

तो मैं देखता हूँ कि तुम्हीं उसके लिए ज्यादा घबड़ा रही हो।'

विनोदिनी—इसे देखकर ही तुम्हें लज्जित होना चाहिए। मित्रता कैसे की जाती है, यह तुम अपने ऐसे मित्र से भी न सीख सके।'

महेन्द्र—'इसके लिए उतना दुखी नहीं हूँ, किन्तु धोखा देकर कैसे स्त्रियों का मन हरण किया जाता है, वह विद्या यदि मैंने उससे सीख ली होती तो आज काम आ सकती थी।'

विनोदिनी—'केवल इच्छा रहने से ही वह विद्या सीखी नहीं जा सकती, इसके लिए शक्ति चाहिए।'

महेन्द्र—'यदि गुरुदेव का ठिकाना तुम्हें मालूम हो तो मुझे बतादो, इस उम्र में उनके पास जाकर एक बार मन्त्र ले आऊँ, इसके बाद शक्ति की परीक्षा होगी।'

विनोदिनी—'यदि मित्र का ठिकाना न जान सको पता न लगा सको तो कभी मेरे सामने प्रेम का नाम न लेना। बिहारी-बाबू के साथ तुमने जैसा बर्ताव किया है, उसे जानकर तुम्हारा कौन विश्वास कर सकता है।'

महेन्द्र—'यदि तुम मेरे ऊपर पूरा विश्वास न रखती तो मेरा इतना अपमान न करती। मेरे प्रेम के सम्बन्ध में यदि इतना निःसंशय न होती तो सम्भव है कि मुझे इतना असह्य कष्ट नहीं उठाना पड़ता। बिहारी किसी के वश में न होने की विद्या जानता है, यदि वह उस विद्या को मुझे सिखा देता तो सचमुच मित्रवत् आचरण करता।'

'बिहारी मनुष्य है, इसी से वह किसी के वश में नहीं हो जाता,' यह कहकर विनोदिनी खुले बालों को अपनी पीठ पर बिखेर कर जिस तरह दरवाजे के पास खड़ी थी उसी तरह खड़ी रह गयी। महेन्द्र एकाएक उठकर खड़ा हो गया और जोर

से दोनों मुट्ठियाँ बाँधकर क्रोध से गरजकर बोला—'क्यों, तुम बारबार इस तरह मेरा अपमान करने का साहस करती हो इतने अपमान का कुछ भी बदला तुमको नहीं मिलता, यह क्या तुम्हें अपने बल से या मेरे गुणों से। यदि तुम मुझे पशु ही समझती हो तो मुझे खूनी पशु ही समझ लेना। मुझे ऐसा नामर्द न समझ लेना कि मैं एकदम ही चोट पहुंचाना नहीं जानता।' यह कहकर विनोदिनी के मुँह की तरफ देख कर वह क्षण काल तक चुप हो रहा, इसके बाद फिर बोल उठा—'विनोद, यहाँ से और कहीं चलो। हमलोग यहाँ से रवाना हो ले। पश्चिम में हो, पहाड़ पर हो, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो चलो, यहाँ बचने की जगह नहीं है। मैं मरा जा रहा हूँ।'

विनोदिनी ने कहा, चलो, अभी चलो—पश्चिम-भ्रमण करने चलें।'

महेन्द्र—'पश्चिम कहाँ चलोगी?'

विनोदिनी—'कहीं भी नहीं। एक जगह पर दो दिन न रहूँगी, घूमती रहूँगी।'

महेन्द्र ने कहा, 'यही अच्छा है, आज ही रात को चलो।'

विनोदिनी सहमत हो गई और महेन्द्र के लिए रसोई बनाने की तैयारी करने लगी।

महेन्द्र समझ गया कि बिहारी की खबर विनोदिनी के कानों तक नहीं पहुँची है। समाचार पत्रों में छपी खबरों पर ध्यान देने योग्य शक्ति विनोदिनी में नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि वह खबर विनोदिनी को मालूम हो जाय, इस आशङ्का से महेन्द्र सारा दिन सावधान होकर रहा।

—०—

४५

बिहारी की खबर लेकर महेन्द्र लौट कर आता होगा, यह समझकर घर पर उसके लिए रसोई तैयार हुई थी, बहुत देर होने लगी तो पीड़ित राजलक्ष्मी और भी घबड़ाने लगीं। सारी रात नींद न आने से वे बहुत ही थक गयी थीं, इस पर महेन्द्र के लिए चिन्तित होकर वे और भी दुःख का अनुभव करने लगीं। सास की यह दशा देखकर आशा ने पता लगाया तो मालूम हुआ कि महेन्द्र की गाड़ी लौट आयी है। कोचवान से खबर मिली कि विहारी के घर होकर पहले डांगाके डेरे पर गया है। यह सुनकर राजलक्ष्मी दीवाल की तरफ करवट बदल कर चुपचाप सो रही। आशा उनके सिरहाने बैठकर जड़चित्र की भाँति स्थिर भाव से बैठी हुई पङ्खा झलने लगी। दूसरे दिन बराबर भोजन का समय हो जाने पर राजलक्ष्मी आशा को खाने जाने के लिए आदेश दे देती थीं, किन्तु आज कुछ भी नहीं बोलीं। कल रात को उनकी कठिन बिमारी देखकर भी महेन्द्र जब बिनोदिनी के मोह में दौड़कर चला गया, तब राजलक्ष्मी के लिए इस संसार में प्रश्न करने की, चेष्टा करने की, इच्छा करने की कोई भी बात नहीं रह गयी। हाँ, इतनी जरूर ही उनकी समझ में आ गयी थी कि महेन्द्र ने मेरी बिमारी को मामूली समझ लिया है, वह समझ रहा है कि और कई बार जैसे बीचबीच में रोग बढ़कर अच्छा हो गया है इस बार भी उसी तरह क्षणिक उपसर्ग बढ़ गया है, फिर अच्छा हो जायगा। वह इसी समझ से निश्चिन्त है। किन्तु महेन्द्र का इस तरह आशंका और निश्चिन्त रहना ही राजलक्ष्मी के लिए बड़ा कठिन मालूम होने लगा। महेन्द्र प्रेम में पड़कर उन्मत्त हो उठा

है किसी आशंका को, किसी कर्तव्य को, वह अपने मन में स्थान नहीं देना चाहता, इस कारण उसने माता के कष्ट को, उनकी पीड़ा को, इतना तुच्छ समझ लिया है। कहीं ऐसा न हो कि उसे माता की रोगशय्या के पास फँस जाना पड़े, इसी आशंका से वह इस तरह निर्लज्ज की भाँति जरा अवकाश पाते ही विनोदिनी के पास दौड़कर चला गया है। रोग आरोग्य करने में राजलक्ष्मी के मन में और लेशमात्र भी उत्साह नहीं रह गया। उन्होंने दारुण अभिमान में पड़कर यही सिद्ध करना चाहा कि महेन्द्र का न घबड़ाना, निश्चिन्त रहना अमूलक है।

जब दो बज गये तो आशा ने कहा—माँ, दवा पीने का समय हो गया।' राजलक्ष्मी कुछ भी उत्तर न देकर चुप हो रही। आशा जब दवा लाने के लिए उठी तब उन्होंने कहा—'दवा देने की जरूरत नहीं है बहू, तुम जाओ।'

आशा अपनी सास का अभिमान समझ गयी उस अभिमान ने संक्रामक रोग की तरह आशा के हृदय में प्रवेश कर दुगुनी खलबली बढ़ा दी। आशा से तब न रहा गया—अपनी रुलाई के वेग को दबाते दबाते फफक फफककर रोने लगी। तब राजलक्ष्मी धीरे-धीरे आशा की तरह करवट बदलकर उसके हाथ पर धीरे-धीरे अपना हाथ फेरने लगी। उन्होंने कहा—'बहू अभी तुम्हारी बहुत ही कम उम्र है। अभी तुमको सुख का मुख देखने का समय है। मेरे लिए तुम और कुछ यत्न न करो बेटी, मैं तो बहुत दिनों तक जीवित रही, अब जीकर क्या करूँगी?'

सास की यह बात सुनकर आशा का रोना और भी उमड़ पड़ा, उसने आँचल से अपना मुँह दबा रखा।

इस तरह रोगी के घर से वह निरानन्द दिन धीरे-धीरे किसी तरह बीत गया। अभिमान में पड़ने पर भी सास पतोहू

दोनों को भीतर ही भीतर आशा थी कि इसी समय महेन्द्र आयेगा। ज़रासा भी किसी तरह का शब्द सुनाई पड़ने पर दोनों ही मन ही मन चौंक उठती थीं कि महेन्द्र अब आ ही गया। क्रमशः दिन के अन्त का प्रकाश अस्पष्ट हो उठा।

कलकत्ते के बन्द जनाने मकानों में गोधूलि के समय जो आभा रहती है, उसमें प्रकाश की प्रफुल्लता भी नहीं रहती और अन्धकार का आवरण भी नहीं रहता। वह आभा विषाद को और नैराश्य को अश्रुहीन कर देती है, वह कामकाज और आश्वासन का बल दूर कर देती है, किन्तु विश्राम और वैराग्य की शान्ति नहीं लाती। रोगीगृह की उस शुष्क श्रीहीन सन्ध्या में आशा चुपचाप उठकर एक दिया जलाकर कमरे में ले आयी। राजलक्ष्मी ने कहा, 'बहू' रोशनी अच्छी नहीं लग रही है। दिया कमरे के बाहर रख दो।'

आशा दिया बाहर रखकर कमरे में आकर बैठी। अन्धकार जब और घना होकर इस छोटे से कमरे में बाहर की अनन्त रात को ले आया, तब आशाने मीठे स्वरमें राजलक्ष्मीसे पूछा—'माँ' क्या उनके पास एक बार खबर भेज दूँ?'

राजलक्ष्मी ने दृढ़ स्वर से कहा, 'नहीं बहू, तुमको मेरी कसम महेन्द्र को खबर मत दो।'

यह सुनकर आशा स्तब्ध रह गयी, उसमें रोने की शक्ति भी नहीं रह गयी।

बाहर खड़े रह कर कहार ने कहा, 'बाबू के पास से चिट्ठी आयी है।'

यह सुनकर क्षणभर में राजलक्ष्मी को मालूम हुआ कि, सम्भवतः महेन्द्र अचानक बीमार हो गया है, इसी से किसी तरह भी यहाँ न आ सकने के कारण उसने चिट्ठी भेजी है।

अनुतप्त और व्यस्त होकर उन्होंने कहा 'देखो तो बहू, महीन ने क्या लिखा है ?

आशा बाहर की बत्ती के पास जाकर काँपते हुए हाथों से चिट्ठी पढ़ने लगी। महेन्द्र ने लिखा है कि कुछ दिनों से उसकी तबियत यहाँ नहीं लग रही था, इसी से वह पश्चिम की तरफ घूमने जा रहा है ! माता की बिमारी के लिए विशेष चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है। उन्हें प्रतिदिन नियमपूर्वक देखने के लिए उसने नये डाक्टर से कह दिया है। रात में नींद आने पर या सिर में दर्द होने पर कब क्या करना पड़ेगा, यह बात भी चिट्ठी में लिखी हुई है। हलके पुष्टिकर पथ्य के दो डिब्बे भी उसने चिट्ठी के साथ भेज दिये हैं। चिट्ठी के अन्त में 'पुनश्च' करके अनुरोध किया है कि फिलहाल राँची के पते से माता के स्वास्थ्य की हालत जरूर-जरूर लिखते रहना।

यह चिट्ठी पढ़कर आशा स्तम्भित हो गयी, प्रबल धिक्कार का भाव उसके सब दुःखों से भी अधिक बढ़ गया। यह निष्ठुर बात वह माँ को कैसे सुनावेगी ?

चिट्ठी सुनाने में आशा को विलम्ब देखकर राजलक्ष्मी और भी घबड़ा उठीं। 'कहो, बहू, महेन्द्र ने क्या लिखा है, जल्दी मुझे सुना दो।' यह कहते-कहते आग्रह के वेग से बिछौने पर उठ कर बैठ गयी।

आशा ने तब कमरे में आकर धीरे-धीरे सब चिट्ठी पढ़कर सुना दी। राजलक्ष्मी ने पूछा 'अपनी तबियत के बारे में महेन्द्र ने क्या लिखा है ? उसी बात को फिर पढ़कर सुनाओ तो।'

आशा ने फिर पढ़कर सुनाया—'कुछ दिनों से मुझे यहां अच्छा नहीं लग रहा था, इसीलिए मैं...

राजलक्ष्मी—'रहने दो, रहने दो, और पढ़ने की जरूरत नहीं। अच्छा कैसे लगेगा? बूढ़ी मां मरती भी नहीं, केवल बिमार रहकर उसे जलाया करती है। तुम क्यों महेन्द्र को मेरी बिमारी की खबर देने गयी? घर पर था, एक कोने में बैठकर लिखता पढ़ता था, किसी के किसो इलाके में नहीं था—बीच ही में माँ की बीमारी की खबर देकर उसे गृहत्यागी बनाकर तुमको कौन-सा सुख मिल गया? मैं यहाँ मर जाती तो उससे किसका नुकसान होता? इतने दुःख में भी तुमको इतनी बुद्धि नहीं आयी।'

यह कहकर वे बिछौने पर लेट गयीं। कहार ने आकर कहा—'डाक्टर साहब आ गये हैं।'

डाक्टर ने खाँसकर कमरे में प्रवेश किया। आशा झटपट घूँघट खींचकर खटिया की आड़ में जाकर खड़ी हो गयी। डाक्टर ने पूछा, आपको क्या हुआ है, बताइये तो?'

राजलक्ष्मी ने क्रोधयुक्त स्वर में कहा, 'होगा और क्या? क्या किसी को मरने न दोगे? तुम्हारी दवा खाने से ही क्या मैं अमर हो जाऊँगी?'

डाक्टर ने सान्त्वना के स्वर में कहा, 'मैं अमर तो नहीं कर सकता, किन्तु कष्ट जिससे कम हो जाय, वह चेष्टा तो—'

बीच ही में राजलक्ष्मी बोल उठीं, कष्ट की अच्छी चिकित्सा तो तब थी, जब विधवाएँ जलकर मर जाती थीं। इस समय तो यह केवल बाँधकर मारना है। जाओ डाक्टर साहब; तुम चले जाओ, मुझे और तङ्ग मत करो, मैं अकेली रहना चाहती हूँ।'

डाक्टर ने डरते-डरते कहा, आपकी नाड़ी तो एक बार—'

राजलक्ष्मी ने बहुत ही रुख होकर कहा, मैं कह रही हूँ

कि तुम चले जाओ। मेरी नाड़ी बिलकुल अच्छी है; इस नाड़ी के शीघ्र छूटने की कोई भी आशा नही है।'

डाक्टर ने अन्त में कमरे से बाहर जाकर आशा को बुला भेजा। नये डाक्टर ने आशा से रोग का सारा विवरण पूछा। सुनकर गम्भीर भाव से वे फिर कमरे में गये। कहा—'देखिए, महेन्द्र बाबू मेरे उपर विशेष रूप से भार दे गये हैं। यदि मुझे आप अपनी चिकित्सा अच्छी तरह न करने देंगी तो उसे बड़ा कष्ट होगा।'

महेन्द्र को कष्ट होगा, यह बात राजलक्ष्मी को उपहास की भाँति सुनाई पड़ी, उन्होंने कहा—'महीन के लिए अधिक चिन्ता मत करो। कष्ट तो ससार में सबको ही मिलता है। इस कष्ट से महेन्द्र बहुत अधिक कातर न होगा। अब तुम चले जाओ डाक्टर साहब, मुझे जरा सोने दो।'

नये डाक्टर ने समझ लिया कि रोगी को अधिक उत्तेजित करना अच्छा न होगा। उन्होंने धीरे से बाहर निकलकर जो जो करना था, सो अब आशा को उपदेश दे दिया।

आशा ज्यों ही कमरे में आयी त्यों ही राजलक्ष्मी ने कहा, जाओ बच्ची तुम जरा जाकर विश्राम करो। सारा दिन तुम रोगी के पास बैठी रही हो। हारू की माँ को भेज दो—वह उधर पास के कमरे में बैठी रहेगी।'

आशा राजलक्ष्मी को जानती थी, यह उनके स्नेह का अनुरोध नहीं था, यह उनका आदेश था, पालन करने के सिवा और उपाय नहीं है। हारू की माँ को भेजकर अंधेरे में वह अपने कमरे में जाकर ठंढी जमीन पर लेट रही।

दिन भर के उपवास और कष्ट से उसका शरीर और मन अवसन्न हो चुका था। मुहल्ले के एक मकान में उस दिन रह

रहकर विवाह का बाजा बज रहा था, इसी समय फिर सुरीली शहनाई बजने लगी। उस रागिनी की चोट से रात का सारा अंधकार मानों स्पन्दित होकर बार-बार चोट पहुँचाने लगा। उसके विवाह की रात की प्रत्येक छोटी-छोटी घटनाएँ सजीव होकर रात्रिकालीन आकाश को स्वप्न के चित्रों से पूर्ण करने लगीं। उस दिन की रोशनी, कोलाहल, लोगों की भीड़, उस दिन के माला चन्दन नवीन-वस्त्र और होमधूम की गन्ध, नववधू के शंकित, लज्जित एवं आनन्दित हृदय का निगूढ़ कम्पन—ये सभी बातें स्मृति के आकार में उसे चारों तरफ से जितनी ही घेरने लगीं, उतनी ही उसके हृदय की व्यथा सजीव बनकर जोर करने लगी। दारुण दुर्भिक्ष में भूखा बालक जैसे भोजन के लिए माता को पीटने लगता है, इसी तरह जाग्रतसुख की स्मृति भी अपना आहार माँगती हुई, आशा की छाती में बार-बार रुलाई के साथ हाथों से आघात करने लगी। उसने आशा को लेटी रहने नहीं दिया। आशा दोनों हाथ जोड़कर देवता से प्रार्थना करने लगी। इसी समय उसे अपनी एकमात्र प्रत्यक्ष देवता मौसी की पवित्र स्निग्ध मूर्ति उसके आँसुओं से भरे हृदय में आविर्भूत हो गयी ? इतने दिनों तक उसके मन में यही प्रतिज्ञा थी कि उस तपस्विनी को वह अब संसार के दुःख झंझटों के बीच न बुलावेगी। किन्तु आज उसे मौसी के सिवा कहीं कोई दूसरा उपाय नहीं दिखाई पड़ा— आज उसके चारों तरफ जमे हुए निविड़ दुःख में जरा सा छेद नहीं रह गया था। इसीसे आज वह कमरे में एक खाते पर चिट्ठी का कागज रखकर बार-बार आँखों के आँसू पोछती हुई चिट्ठी लिखने लगी—

'श्रीचरणकमलेषु—

मौसी, के शिवा आज मेरा और कोई नहीं है; एक बार

यहाँ आकर अपनी गोद में मुझे उठा लो, नहीं तो मैं कैसे बचूंगी। और क्या लिखूं, जानती ही नहीं तुम्हारे चरणों में मेरे सैकड़ों, हजारों और करोड़ों प्रणाम।

तुम्हारी स्नेह की चुन्नी'

४९

अन्नपूर्णा काशी से कलकत्ते लौट आयी और धीरे-धीरे राजलक्ष्मी के कमरे में प्रवेश करके उनको प्रणाम किया और उनके चरणों की धूलि सिर पर चढ़ा ली। बीच में विरोध और विच्छेद हो जाने पर भी अन्नपूर्णा को देख कर राजलक्ष्मी खुश हो उठीं, मानो उन्हें खोया हुआ धन मिल गया। अन्नपूर्णा को पाकर राजलक्ष्मी को मालूम पड़ने लगा कि भीतर-ही-भीतर अलक्ष्य अगोचर भाव से अन्नपूर्णा को पाने की लालसा मेरे मन में जमी हुई थी। बहुत दिनों के बाद आज उसको यह बात क्षण भर में सुस्पष्ट हो उठी कि केवल अन्नपूर्णा के न रहने से ही मुझे इतनी मिहनत, इतनी थकावट और क्षोभ या कष्ट हुआ है, क्षणमात्र में राजलक्ष्मी के समस्त व्यथित हृदय ने अपने बहुत पुराने स्थान पर अधिकार कर लिया। महेन्द्र के पैदा होने के पहले भी इन दोनों देवरानी जेठानियों ने बहुओं के रूप में इस परिवार के सभी सुख-दुखों को स्वयं वरण कर लिया था—पूजा में, उत्सवों में, मृत्यु में दोनों ने ही इस संसार रथ में एक साथ यात्रा की थी। उस समय की उस घनिष्ठ मित्रता ने राजलक्ष्मी के हृदय को आज क्षण भर में घेर लिया। जिसके साथ सुदूर अतीत काल में एक ही साथ नये जीवन का आरम्भ

किया था, अनेकानेक बाधाओं के बाद वही बाल्यसहचरी ही परम दुःख के दिनों में उनके पास आ गयी—उस समय के सभी सुख-दुःख और सभी प्रिय घटनाओं की यह अन्नपूर्णा स्मारक रह गयी है। जिसके लिए राजलक्ष्मी ने इनको भी निष्ठुर भाव से चोट पहुंचायी थीं, वही महेन्द्र आज कहाँ है ?

अन्नपूर्णा ने रोगी के पास बैठकर उनका दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—'जीजी !'

राजलक्ष्मी ने कहा—'मझली बहू !' यह कहने के बाद उनके मुँह से और कोई बात नहीं निकली। उनकी दोनों आँखों से आँसू की धारा बह चली। यह दृश्य देखकर आशा स्थिर न रह सकी—पास के ही कमरे में जाकर वह जमीन पर बैठकर रोने लगी।

अन्नपूर्णा को राजलक्ष्मी या आशा से महेन्द्र के सम्बन्ध में कोई भी प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ। उन्होंने साधुचरण को बुलाकर पूछा—'मामा, महीन कहाँ है ?'

तब साधुचरण ने विनोदिनी और महेन्द्र की सारी घटना उन्हें सुना दी। अन्नपूर्णा ने साधुचरण से पूछा, 'बिहारी की क्या खबर है ?'

साधुचरण ने कहा, 'बहुत दिनों से वे नहीं आये, उनकी खबर मैं ठीक-ठीक नहीं बता सकता।'

अन्नपूर्णा ने कहा—'एक बार बिहारी के घर जाकर उसका समाचार ले आओ।'

साधुचरण ने बिहारी के घर से लौट आकर कहा, वे घर पर नहीं है, गंगा के किनारे रेती पर अपने बगीचे में गये हैं।'

अन्नपूर्णा ने नये डाक्टर को बुलाकर रोगी का हाल पूछा। डाक्टर ने कहा, 'हृत्पिण्ड की दुर्बलता के साथ, उदरी प्रकट

हुआ है। अब कब अकस्मात् इनकी मृत्यु हो जायगी, यह ठीक नहीं बताया जा सकता।'

सन्ध्या के समय जब राजलक्ष्मी के रोग का कष्ट और भी बढ़ने लगा, तब अन्नपूर्णा ने पूछा, 'जीजी, एक बार नये डाक्टर को बुलवाऊँ ?'

राजलक्ष्मी ने कहा, 'नहीं, मझली बहू, नया डाक्टर मेरा कुछ न कर सकेगा।'

अन्नपूर्णा ने कहा—'तो तुम किसको बुलाना चाहती हो, बताओ।'

राजलक्ष्मी ने कहा—'एक बार यदि बिहारी को खबर दो, तो अच्छा होगा।' अन्नपूर्णा के हृदय में चोट लगी। उस दिन उन्होंने दूर के प्रवास में सन्ध्या के समय, बिहारी को अपमानित करके दरवाजे से बाहर निकाल दिया था। उस वेदना को वे आज तक भूल नहीं सकी थीं। बिहारी फिर कभी उस अनादर का प्रतीकार करने का अवसर उनको मिलेगा, ऐसा आशा उनके मनमें नहीं थी।

अन्नपूर्णा एक बार छत के ऊपर महेन्द्र के कमरे में गयी घर भर में यही कमरा आनन्दनिकेतन था। किन्तु आज उस कमरे में कुछ भी शोभा नहीं है। बिस्तर ओढ़ने आदि इधर उधर पड़े हैं। छत पर के टब में कोई जल नहीं देता, फूलों के पौधे सब सूख रहे हैं।

यह समझकर कि मौसी छत पर गयी है; आशा ने भी धीरे-धीरे उनका अनुसरण किया। अन्नपूर्णा ने उसे खींचकर छाती से लगा लिया और उसका माथा चूम लिया। आशा ने झुककर दोनों हाथों से उनके दोनों पैर पकड़कर बार-बार उनके पैरों पर अपना सिर टेक दिया। कहा—'मौसी, मुझे आशीर्वाद

दो, मुझे बल दो। मनुष्य इतना कष्ट सह सकता है यह मैंने किसी समय भी नहीं सोचा। अरे भैया, इस हालत में और कितने दिन सहा जायगा।'

अन्नपूर्णा वहीं जमीन पर बैठ गयीं। आशा उनके पैरों पर माथा रखकर लोट गयी। अन्नपूर्णा ने आशा का सिर अपनी गोद में ले लिया और कोई बात न कहकर निस्तब्ध भावसे हाथ जोड़कर देवता का स्मरण करने लगीं।

अन्नपूर्णा के स्नेहचिन्हित आशीर्वाद ने आशा के गंभीर हृदय में प्रवेश करके अनेक दिनों के बाद शान्ति को ला दिया। उसे मालूम हुआ मानों अभीष्ट सिद्ध होने में अब अधिक विलम्ब नहीं है। देवता उसकी भाँति मूढ़ व्यक्ति की अवहेलना तो कर सकते हैं, किन्तु मौसी की प्रार्थना अग्राह्य नहीं कर सकते।

हृदय में आश्वास और बल पाकर आशा बहुत देर के बाद लम्बी साँस लेकर उठ बैठी। कहा, 'मौसी, बिहारी बाबू को एक बार आने के लिए चिट्ठी लिख दो।'

अन्नपूर्णा ने कहा, 'चिट्ठी नहीं लिखी जायगी।'

आशा—तब उनको खबर कैसे दोगी?'

अन्नपूर्णा ने कहा, 'कल मैं बिहारी के साथ मुलाकात करने के लिए स्वयं जाऊँगी।'

४७

बिहारी जब पश्चिम में घूम रहा था, तब उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो किसी एक काम में अपने को लगा रखे बिना

शान्ति नहीं मिलेगी। यही सोचकर उसने कलकत्ते के गरीब किरानियों की चिकित्सा और सुश्रूषा का भार अपने ऊपर ले लिया है। गर्मी के दिनों में छोटी-छोटी गड़हियों की मछलियाँ जिस तरह कीचड़ से भरे पानी में किसी तरह दुबली होकर चारा खाती रहती हैं, गलियों में रहनेवाले, अल्प भोजन करके दिन बितानेवाले किनारियों का सब सुखों से वंचित जीवन भी वैसा ही है। उन्हीं विवर्ण दुबले-पतले दुर्दशाग्रस्त भद्रपुरुषों पर बिहारी की बहुत दिनों से दयादृष्टि थी। बिहारी ने उनको बन की छाया और गंगा की खुली हवा देने का संकल्प किया।

रेती पर बगीचा लेकर चीनी मिस्त्रियों की सहायता से बिहारी ने छोटी-छोटी झोपड़ियाँ तैयार करना शुरू किया। किन्तु उसका मन शान्त न हो सका। काम में लग जाने का दिन जितना ही निकट आने लगा, उसका मन उतना ही अपने संकल्प से विमुख हो उठा। उसका मन केवल यही कहने लगा, 'इस काम में कोई सुख नहीं है, कोई सौन्दर्य नहीं है, यह केवल सूखा बोझा है।' किसी कार्य की कल्पना से कभी बिहारी को इस तरह क्लेश नहीं दिया था।

एक दिन ऐसा था, जब बिहारी को विशेष कोई चीज पाने की जरूरत नहीं थी, उनके सामने जो कुछ उपस्थित होता था, उसके प्रति अनायास ही वह अपने को नियुक्त कर सकता था। इस समय उसके मन में एक तरह की भूख सी पैदा हो गयी है। उसे निवृत्त किये बिना और किसी काम में उसकी आसक्ति नहीं होती। पहले के अभ्यास के अनुसार वह यह वह लेकर घुमा-फिराकर देखता रहता है। किन्तु फिर बाद को तुरन्त ही वह सब छोड़-छाड़कर छुटकारा पाना चाहता है।

बिहारी के भीतर जो जवानी निश्चल भाव से सोयी हुई

थी, जिसके बारे में उसने कभी कुछ भी नहीं सोचा था, वह आज विनोदिनी के सोने की कोठी से घिरकर जाग उठी है। तुरन्त के पैदा हुए गरुड़ पक्षी की भाँति वह अपनी खुराक के लिए सारे जगत में चक्कर लगाती हुई घूम रही है। इस क्षुधित प्राणी के साथ बिहारी का पहले परिचय नहीं था, इसको लेकर वह व्यस्त हो उठा है। अब वह कलकत्ते के जीर्ण-शीर्ण किरानियों को लेकर क्या करेगा ?

अषाढ़ की गंगा सामने बही चली जा रही है। रह-रहकर दूसरे किनारे पर नीले मेघ घने वृक्षों की पाँत पर मानो भार से झुके जा रहे हैं। सम्पूर्ण नदी तरल इस्पात की तलवार की तरह कहीं उज्वल, कहीं कृष्ण वर्ण धारण किये हुए है और कहीं आग की तरह चमक रही है। नयी वर्षा के इस समारोह के बीच ज्यों ही बिहारी की दृष्टि पड़ती है, त्यों ही उसके हृदय का द्वार खोलकर आकाश के इस नील स्निग्ध प्रकाश के बीच कोई अकेली रमणी बाहर आ जाती है, कोई अपने स्नानसिक्त घने लहराते हुए काले केशों को खोलकर खड़ी हो जाती है और कोई वर्षा के आकाश से फटे हुए बादलों की बिखरी हुई किरणों को एकत्र कर, केवल उसीके मुख के ऊपर अनिमेष दृष्टि की दीन कातरता फैला देती है।

पहले उसका जो जीवन सुख और सन्तोष में बीत गया है उसी जीवन को बिहारी आज परम हीन समझ रहा है। ऐसी कितनी ही वर्षाकाल की संध्याएं, ऐसी कितनी ही पूर्णिमा की रातें आयी थीं, वे बिहारी के शून्य हृदय के द्वार के निकट आकर, अमृत का पात्र हाथ में लिए चुपचाप वहाँ से लौट गयी हैं। उस दुर्लभ युगक्षण में कितने संगीत बिना आरम्भ हुए ही रह गये, कितने उत्सव सम्पन्न ही पड़े रह गयें, इसका कहीं अन्त नहीं

है। बिहारी के मन में पहले की जो एक स्मृति थी, उसे विनोदिनी अपने उस दिन के उद्यत चुम्बन की रक्तिम आभा के द्वारा ऐसा फीका और अकिञ्चित्कर बनाकर चली गयी महेन्द्र की छाया की तरह रहकर उसने अपने जीवन के अधिकतर दिन कैसे बिताये थे। उसमें किस बात की चरितार्थता थी। प्रेम की वेदना में सारे जल-स्थल-आकाश के केन्द्र कुहरे से ऐसी रागिनी में ऐसी बंशी बजती है, इस बात का तो अचेतन बिहारी कभी अनुमान भी नहीं कर सका था। जिस विनोदिनी ने अपने दोनों हाथों से घेरकर, क्षणभर में अकस्मात् इस अनुपम सौन्दर्यलोक में बिहारी को पहुँचा दिया है, उस विनोदिनी को वह कैसे भूल जायगा। उसकी दृष्टि, उसकी आकांक्षा आज सर्वत्र व्याप्त हो पड़ी है, उसकी व्याकुल घनी लम्बी साँसें बिहारी के रक्तस्रोत को प्रतिदिन चञ्चल तरंगित कर दिया करती है, और उसके स्पर्श की सुकोमल गरमी ने बिहारी को घेरकर उसके पुलकित हृदय को फूल की तरह प्रस्फुटित कर रखा है।

किन्तु तो भी उसी माया के पास से आज बिहारी इतनी दूर क्यों है? इसका कारण यह है कि विनोदिनी ने जिस सौन्दर्य के रस से बिहारी का अभिषेक कर दिया है, संसार में वह विनोदिनी के साथ उस सौन्दर्य के उपयुक्त किसी सम्बन्ध की कल्पना नहीं कर सकता। कमल को उखाड़ लाने में कीचड़ भी साथ आ ही जाता है। क्या कहकर वह उसे ऐसी किस जगह स्थापित कर सकता है, जहाँ सुन्दर वीभत्स न हो उठे। इसके सिवा यदि महेन्द्र से झगड़ा फसाद खड़ा हो जाय, तो सारा मामला ऐसा कुत्सित रूप धारण करेगा कि उसकी संभावना को बिहारी अपने अपने मन के एक कोने में भी स्थान

नहीं दे सकता। इसी से बिहारी निस्तृत गङ्गा तट पर, विश्व-संगीत के बीच में, अपनी मानसी प्रतिमा प्रतिष्ठित कर अपने को धूप की भाँति जला रहा है। पीछे कहीं ऐसी खबर न मिल जाय; जिससे उसके सुख स्वप्न का जाल कट-फट जाय, इसी आशंका में वह चिट्ठी लिखकर भी विनोदिनी की कोई खबर नहीं लेता।

एक दिन अपने बगीचे के दक्षिणी छोर पर खूब फले हुए जामुन के पेड़ के नीचे बिहारी चुपचाप बैठा हुआ था, सामने से कोठी की डोंगियाँ आ जा रही थीं। उन्हें ही वह आलस भाव से देख रहा था। धीरे-धीरे दिन अधिक चढ़ने लगा। तब तक नौकर ने आकर पूछा, 'भोजन की तैयारी करूँ या नहीं करूँ?' बिहारी ने कहा, 'अभी रहने दो।' फिर मिस्त्रियों के सरदार ने आकर कुछ विशेष परामर्श के लिए और काम देखने के लिए बुलाया। बिहारी ने कहा, 'और थोड़ी देर के बाद।'

इसी समय बिहारी हठात् चौंक उठा। उसने देखा कि सामने अन्नपूर्णा खड़ी हैं। वह घबड़ाकर उठ खड़ा हुआ और दोनों हाथों से उनके पैर पकड़ कर जमीन पर मस्तक रखकर प्रणाम किया। अन्नपूर्णा ने परम स्नेह से अपने दाहिने हाथ से बिहारी का माथा और शरीर स्पर्श किया, आँसुओं से जड़ित स्वर में कहा, 'बिहारी, तू ऐसा रोगी की भाँति क्यों हो गया है?'

बिहारी ने कहा, 'चाची, तुम्हारा स्नेह फिर से पाने के लिए।' अन्नपूर्णा की आँखों से झर-झर करके आँसू गिरने लगे। बिहारी ने व्यस्त होकर कहा, 'चाची तुमने अभी भोजन नहीं किया?'

अन्नपूर्णा ने कहा, 'नहीं, अभी मेरे भोजन का समय नहीं हुआ है।'

बिहारी ने कहा, 'चलो मैं, रसोई का इन्तजाम कर दूं। आज बहुत दिनों के बाद तुम्हारे हाथ की रसोई और तुम्हारे हाथ का प्रसाद खाकर अपने जीवन को धन्य समझूँगा।'

महेन्द्र और आशा के सम्बन्ध में बिहारी ने कोई भी बात नहीं उठायी। अन्नपूर्णा ने एक दिन अपने ही हाथों से उस तरफ का दरवाजा बिहारी के लिए बन्द कर दिया था। अभिमानके साथ उस निष्ठुर निषेध का उसने पालन किया।

भोजन के बाद अन्नपूर्णा ने कहा, 'नाव घाट पर तैयार है बिहारी, अब एक बार मेरे साथ कलकत्ते चलो।'

बिहारी ने कहा, 'कलकत्ते में मेरा क्या प्रयोजन है?'

अन्नपूर्णा ने कहा, 'जीजी बहुत बीमार हो गई हैं, वे तुझे देखना चाहती हैं।'

यह सुन बिहारी चौंक उठा। उसने पूछा, 'महीन भैया कहाँ हैं?'

अन्नपूर्णा ने कहा, 'वह कलकत्ते में नहीं है। पश्चिम कहीं घूमने चला गया है।'

सुनते ही बिहारी का मुँह फीका पड़ गया। वह चुप रह गया।

अन्नपूर्णा ने पूछा 'तू क्या सब बातें नहीं जानता?'

बिहारी ने कहा, 'कुछ कुछ जानता हूँ, किन्तु अन्त तक नहीं जानता।'

तब अन्नपूर्णा ने विनोदिनी को लेकर महेन्द्र के पश्चिम भाग जाने की बात बतायी। बिहारी की दृष्टि में उसी क्षण जल-

स्थल आकाश का सारा रङ्ग बदल गया। उसकी कल्पना के भण्डार का सारा पञ्चतिक्त रस क्षण भर में तीता हो उठा। वह अपने मनमें सोचने लगा, 'मायाविनी विनोदिनी उस दिन सन्ध्या के समय क्या मेरे साथ एक तमाशा ही कर गयी थी? उसके प्रेममें आत्मसमर्पण कर देना क्या सब धोखा मात्र था? वह अपना गाँव छोड़कर इस तरह निर्लज्ज भाव से महेन्द्र के साथ अकेली ही पश्चिम चली गयी। धिक्कार है उसको। और मुझे भी धिक्कार है, क्योंकि मैं मूढ़ हूँ, जो मैंने एक क्षण के लिए भी उसका विश्वास किया।'

हाय बादलों से घिरी आषाढ़ की सन्ध्या और बरस जाने के बाद की पूर्णिमा की रात्रि! तुम्हारा वह इन्द्रजाल कहाँ चला गया?

४८

बिहारी सोचता था कि मैं दुखिया आशा के मुँह की तरफ किस तरह देख सकूँगा। जब बिहारी ड्योढ़ी के भीतर चला गया, तो अनाथ समूचे मकान के घनीभूत विषाद ने उसे क्षण भर में घेर डाला। मकान के दरवान और नौकरों के चेहरे की तरफ उन्मत्त और लापता महेन्द्र के लिए लज्जा का अनुभव करके बिहारी का सिर झुक गया। परिचित नौकर चाकरों के साथ वह मीठे स्वर में पहले की तरह कुशल प्रश्न न पूछ सका। अन्दर जनानखाने में प्रवेश करने के लिये मानों उसके पैर आगे बढ़ना ही नहीं चाहते थे। संसार के सब लोगों के सामने प्रकट रूप से असहाय आशा को दारुण अपमान के बीच छोड़कर

चला गया है जो अपमान स्त्रियों के चरम आवरण को भी हटाकर, उनको सारे संसार की कुतूहलपूर्ण कृपादृष्टि-वर्षा के बीच में खड़ा कर देता है, उसी अपमान की अनाकृत प्रकाश्यता में, कण्ठित व्यथित आशा को बिहारी किस तरह देख सकेगा।

किन्तु इन सब बातों पर विचार करने और संकोच करने का अवसर नहीं रहा। जनान खाने में प्रवेश करते ही आशा ने तेजी से आकर बिहारी से कहा, बिहारी बाबू, एक बार बहुत जल्द ही चलकर माँ को देखो, वे बहुत ही कष्ट पा रही हैं।'

बिहारी के साथ आशा की इसी बार पहले-पहल प्रकट रूप से बातचीत हुई। दुराव के दुर्दिन में हवा का एक मामूली झोंका लगने से सारा भेद या अन्तर उड़ जाता है, जो एक दूसरे से दूर दूर रहा करते हैं, उनको हठात् आयी हुई बाढ़ एक तङ्ग डोंगी के ऊपर एकत्र कर देती है।

आशा की इस संकोचहीन व्याकुलता से बिहारी को चोट लगी। महेन्द्र अपने घर को क्या बनाकर चला गया है, इस बात को बिहारी ने मानो इस घटना से बहुत कुछ पहिचान लिया। दुर्दिन की मार से जैसे घर की लज्जा के साथ सौन्दर्य भी उपेक्षित हो रहा है, वैसे ही गृहलक्ष्मी को भी श्री तक रखने का भी अवसर दूर हो चला है—छोटा मोटा परदा, आड़, सोच-विचार, सभी खिसककर गिर गये हैं, उसपर भ्रूक्षेप करने का भी समय नहीं है।

बिहारी ने राजलक्ष्मी के कमरे में प्रवेश किया। उस समय अचानक साँस का दौरा बढ़ जाने से राजलक्ष्मी उदास हो गयी थीं पर वह अधिक देर तक न रहने के कारण पुनः वे कुछ अच्छी हो गयीं।

बिहारी ने ज्यों ही उनको प्रणाम करके उनकी पद-धूलि

अपने मस्तक पर चढ़ा ली, राजलक्ष्मी ने उसे अपने पास बैठने का इशारा किया और धीरे-धीरे कहा—कैसा है बिहारी ? कितने दिनों से तुझे नहीं देखा।'

बिहारी ने कहा—'माँ, तुमने अपनी बीमारी की खबर मुझे क्यों नहीं दी ? ऐसा होने पर क्या मैं क्षण भर के लिए आने में देर करता ?'

राजलक्ष्मी ने मृदु स्वर में कहा, 'सो क्या मैं नहीं जानती बेटा ? तुझे मैंने अपने गर्भ में नहीं रखा है सही, किन्तु जगत में तुझसे बढ़कर मेरा क्या अपना कोई और है ?' यह कहते कहते उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे।

बिहारी ने झटपट उठकर कमरे के ताखे पर रखी हुई दवा की शीशियों को देखने-जाँचने के बहाने अपने को संभालने की चेष्टा की। फिर लौटकर जब वह राजलक्ष्मी की नाड़ी देखने को उद्यत हुआ, तब राजलक्ष्मी ने कहा, मेरी नाड़ी देखना रहने दे, मैं पूछती हूँ कि तू इस तरह रोगीकी तरह क्यों हो गया है, बिहारी ?' यह कहकर राजलक्ष्मी अपना दुबला हाथ उठाकर बिहारी की गर्दन पर फेरने लगी।

बिहारी ने कहा—तुम्हारे हाथ की बनी तरकारी खाये बिना मेरी ये हड्डियाँ किसी तरह भी नहीं ढंक सकतीं। तुम जल्दी जल्दी अच्छी हो जाओ माँ, मैं तब तक रसोई की तैयारी कर रखूँ।'

राजलक्ष्मी ने फीकी हँसी हँसकर कहा, 'जल्दी-जल्दी तैयारी कर ले बेटा लेकिन रसोई की नहीं।' यह कहकर उन्होंने बिहारी का हाथ पकड़ कर कहा, 'बिहारी अब तू अपने लिए बहू ले आ। तुझे देखने सुनने के लिए कोई नहीं है। ऐ मझली बहू, तुम लोग अब इस बार बिहारी का विवाह कर डालो—देखो

न, बच्चे का चेहरा कैसा हो गया है !

अन्नपूर्णा—'तुम अच्छी हो जाओ, जीजी ! यह तो तुम्हारा ही काम है। तुम सब काम सम्पन्न करोगी, और हम सब शामिल होकर खुशी मनावेंगी।

राजलक्ष्मी ने कहा—'मुझे तो अब समय नहीं मिलेगा, बिहारीका भार तुम लोगों पर ही रहा, इसे सुखी बनाना, मैं इसका ऋण चुकाकर न जा सकी किन्तु भगवान् इसका भला करेंगे। यह कहकर उन्होंने बिहारी के सिर पर अपना हाथ फेर दिया।

आशा और उस कमरे में न रह सकी। रोने के लिए बाहर चली गयी। अन्नपूर्णा ने सजल स्नेह की दृष्टि से बिहारी के मुँह के प्रति स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखा।

राजलक्ष्मी को एकाएक न मालूम क्या याद आ गयी। उन्होंने पुकारा—बहू, ओ बहू !'

आशा के कमरे में आते ही राजलक्ष्मी ने कहा—'बिहारी के खाने-पीने का सब इन्तजाम किया है तो ?'

बिहारी ने कहा—'माँ, तुम्हारे इस पेटू लड़के को सब ने पहचान लिया है। ड्योढ़ी में घुसते ही मैंने देखा कि तरह-तरह की तरकारियाँ लेकर तरकारीवाला अन्दर दौड़ा जा रहा है। मैं समझ गया कि इस घर से अभी तक मेरी ख्याति लुप्त नहीं हुई है।' यह कहकर बिहारी ने हँसकर एक बार आशा के मुँह की तरफ देखा।

आशा को आज लज्जा नहीं मालूम हुई। उसने स्नेह के साथ मन्द मुसुकान से बिहारी का परिहास ग्रहण कर लिया। इस घर में बिहारी का कितना बड़ा स्थान है, यह बात पहले आशा पूरे तौरपर नहीं जानती थी। अनेक बार उसको अनावश्यक

आगन्तुक समझकर उसने अवज्ञा की है। अनेक बार बिहारी के प्रति उसका विमुख भाव इसके आचरणों से स्पष्ट ही प्रकट हो चुका है। उसी पश्चात्ताप के धिक्कार से आज उसकी श्रद्धा और करुणा बड़े जोरों से दौड़ चली है।

राजलक्ष्मी ने कहा—मझली बहू, यह काम तो रसोईदार महाराज का नहीं है, आज की रसोई तुम स्वयं देख-भाल करके बनवा दो। मेरा यही देहाती लड़का भर-थाली तरकारी के बिना खा ही नहीं सकता।

बिहारी ने कहा—'माँ, तुम्हारी माँ तो थी विक्रमपुर की एक लड़की और तुम नदिया जिले के रहनेवाले एक भले आदमी के लड़के को देहाती कहती हो। यह तो मैं सह नहीं सकता।'

इसी बात को लेकर बहुत देर तक हँसी दिल्लगी हुई और बहुत दिनों के बाद महेन्द्र के घर की उदासी मानों हलकी हो गयी।

किन्तु इतनी बातचीत में किसी तरफ से किसी ने महेन्द्र का नाम नहीं लिया। पहले राजलक्ष्मी बिहारी से केवल महेन्द्र के बारे में बातचीत किया करती थी। इस पर महेन्द्र ने स्वयं ही कई बार परिहास किया है। आज उसी राजलक्ष्मी क मुँह से महेन्द्र का नाम न सुनकर बिहारी स्तम्भित हो उठा।

राजलक्ष्मी को थोड़ी-सी नींद आने के साथ ही बिहारी ने बाहर आकर अन्नपूर्णा से कहा, 'माँ की बीमारी तो सहज नहीं है।' अन्नपूर्णा ने कहा, 'यह तो स्पष्ट ही देख पड़ता है।' यह कहकर वे खिड़की के पास बैठ गयीं। बहुत देर तक चुप रहने के बाद उन्होंने कहा, 'एक बार क्या अब महेन्द्र को भी बुलाओगे, बिहारी? अब तो देर करना उचित नहीं है।'

बिहारी ने कुछ देर तक निरुत्तर रहकर कहा, 'तुम जो

आदेश करोगी वही करूँगा। क्या उसका ठिकाना किसी को मालूम है ?'

अन्नपूर्णा—'ठीक-ठीक कोई नहीं जानता, खोज करके जान लेना होगा। बिहारी एक बात मैं तुमसे और कहती हूँ। आशा के मुँह की तरफ तो देखो। विनोदिनी के हाथ से यदि तू महेन्द्र का उद्धार न कर सकेगा, तो वह अब बच न सकेगी। उसका मुँह देखने से ही तू समझ सकेगा कि उसके हृदय में मृत्यु का बाण लगा हुआ है।'

बिहारी ने मन-ही-मन तीव्र हँसी-हँसकर कहा—'दूसरे का तो मैं उद्धार करने जाऊँगा, किन्तु हे भगवन्! मेरा उद्धार कौन करेगा ?' कहा—चिरकाल तक महेन्द्र को रोक रखने का मंत्र मैं क्या जानूँ, चाची। माँ की बीमारी में वह दो दिन तक शान्त रह सकता है। किन्तु फिर वह उधर ही न झुक जायगा, यह बात मैं कैसे कह सकता हूँ।'

ऐसे ही समय में मैले कपड़े पहने और आधा घूँघट काढ़े आशा धीरे-धीरे मौसी के पास आकर बैठ गयी। वह जानती थी कि राजलक्ष्मी की बीमारी के बारे में ही बातचीत चल रही है। इसीलिए उत्सुकता के साथ सुनने के लिए चली आयी। पतिव्रता आशा के मुँह पर निस्तब्ध दुःख की नीरव महीमा देखकर बिहारी के मन में एक अपूर्व भक्ति का संचार हुआ। शोक के उत्तप्त तीर्थ जल में नहाकर यह तरुणी रमणी प्राचीन युग की देवियों की तरह एक अचञ्चल मर्यादा प्राप्त कर चुकी है। यह अब साधारण स्त्री नहीं है। मानो पुरानों में वर्णित दारुण दुःख में पड़ी सती-साध्वी स्त्रियों की भाँति हो गई है।

बिहारी ने आशा के साथ राजलक्ष्मी के पथ्य और औषध के सम्बन्ध में जब आशा से बिदायी ली तो एक लम्बी साँस खींचकर अन्नपूर्णा ने कहा—'मैं महेन्द्र का उद्धार करूँगा।'

बिहारी महेन्द्र के बैंक में गया तो पता लगा कि थोड़े दिनों से महेन्द्र ने बैंक की इलाहाबाद शाखा से लेन-देन करना शुरू किया है।

४६

स्टेशन पर पहुँचकर विनोदिनी एक दम जनानी गाड़ी के इण्टर क्लास में सवार हुई। महेन्द्र ने कहा, 'यह क्या करती हो, मैं तुम्हारे लिए सेकण्ड क्लास का टिकट खरीद रहा हूँ।'

विनोदिनी ने कहा, 'कोई जरूरत नहीं है। मैं यहाँ ही अच्छी तरह रहूँगी।'

महेन्द्र आश्चर्य में पड़ गया। विनोदिनी स्वभावतः ही शौकिन मिजाज की थी। पहले दरिद्रता का कोई लक्षण भी उसके लिए प्रीतिकर नहीं था। अपनी सांसारिक दरिद्रता को वह अपने पक्ष में अपमानजनक ही समझती थी। महेन्द्र ने इतना समझ लिया था कि मेरे मकान की धनशीलता विलास सामग्री और सर्वसाधारण में धनी परिवार के रूप में अपने घर की प्रसिद्धि, एक ही समय विनोदिनी के मन को अपनी तरफ खींचने में समर्थ हुए हैं। वह अनायास ही इस धन-सम्पत्ति, इस आराम और गौरव की ईश्वरी हो सकती थी, इसी कल्पना से उसका मन अत्यन्त उत्तेजित हो उठा है। आज जब वह महेन्द्र की सारी सुखसम्पत्ति अपने भाग में ला सकती है,

तब वह क्यों इस तरह की असहनीय उपेक्षापूर्वक अत्यन्त उद्धव भाव से कष्टकर और लज्जाजनक दीनता स्वीकार कर रही है। महेन्द्र के प्रति अपनी निर्भरशीलता को वह यथासम्भव संकुचित रखना चाहती है। जिस उन्मत्त महेन्द्र ने विनोदिनी को उसके स्वाभाविक आश्रम से चिरजीवन के लिये गिरा दिया है, उस महेन्द्र के हाथ से वह ऐसी कोई भी चीज नहीं लेना चाहती, जो उसके इस सर्वनाश के मूल्यरूप में गिनी जा सकती है। महेन्द्र के घर पर जब विनोदिनी थी तब उस आचरणों में वैधव्यव्रत की कठिनता बहुत ही कम दिखाई पड़ती थी, किन्तु इतने दिनों के बाद उसने अपने को सब तरह के भोगों से बंचित कर दिया है। अब तो वह रोज एक वक्त ही भोजन करती है, मोटे कपड़े पहनाती है और अनाप-सनाप हँसी दिल्लगी का भी अब कहाँ पता रह गया है। अब वह इतनी स्तब्ध, ऐसी संयत, इतनी सुदूर और इतनी भीषण हो उठी है कि महेन्द्र की उससे एक मामूली बातचीत भी ज़ोर से करने का साहस नहीं होता। महेन्द्र आश्चर्य में पड़कर, अधीर होकर केवल यही सोचने लगा कि, 'विनोदिनी ने मुझे इतनी चेष्टा से दुर्लभ फल की भाँति पेड़ की इतनी ऊँची डाली से तोड़कर नीचे गिरा दिया, पर उठाकर सूँघे बिना ही आज जमीन पर ठुकरा क्यों रही है?'

महेन्द्र ने पूछा, 'बताओ तो, किस जगह के लिए टिकट लू।'

विनोदिनी ने कहा, 'पश्चिम कहीं भी, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो चलो। कल सबेरे जहाँ ही गाड़ी रुकेगी, वहीं उतरा जायगा।'

इस तरह का भ्रमण महेन्द्र के लिए रुचिकर नहीं है। आराम में रुकावट पड़ना उसके लिए कष्टकर है। किसी बड़े शहर में

जाकर अच्छी तरह आश्रय न मिलने से महेन्द्र बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। खोजकर, जुटाकर कुछ कर लेनेवाला वह आदमी नहीं है। इस कारण बहुत ही क्षुब्ध और विरक्त मन लिये महेन्द्र गाड़ी पर सवार हुआ। इधर उसके मन में यह भी आशंका हो रही थी कि कहीं ऐसा न हो कि मुझसे बिना कुछ कहे ही बिन दि ी किसी स्टेशन पर बीच ही में उतर जाय।

विनोदिनी इसी भाँति शनि-ग्रह की तरह घूमने लगी और महेन्द्र को भी अपने साथ घुमाने लगी, कहीं भी उसके लिए विश्राम नहीं था। विनोदिनी बहुत जल्द ही किसी आदमी को अपना बना सकती है, बहुत ही थोड़े समय में वह गाड़ी में साथ के मुसाफिरों से मेलजोल बढ़ा लेती थी। जहाँ जाने की इच्छा होती थी, वहाँ का कुल हाल मालूम कर लेती थी—मुसाफिर-खाने में ठहर जाती थी और जहाँ जो कुछ देखने योग्य चीजें रहती थीं, घूम घूमकर मित्रों की सहायता से उन्हें देख आती थी। यह समझकर विनोदिनी को मेरी कुछ भी आवश्यकता नहीं पड़ती, महेन्द्र अपने को बहुत ही अपमानित समझने लगा। टिकट खरीदने के सिवा उसके लिए कोई काम ही नहीं रह गया था। बाकी समय में इसको उस प्रवृत्ति की ओर अपनी प्रवृत्ति का डसा करता था। पहले-पहल कुछ दिनों तक वह विनोदिनी के साथ-साथ घूमता रहा। किन्तु धीरे-धीरे यह उसके लिए असह्य हो उठा। तब महेन्द्र भोजन के बाद सोने की चेष्टा करने लगा और विनोदिनी सारा दिन घूमने लगी। माता के स्नेह से लालित महेन्द्र को इस तरह रास्ते-रास्ते घूमना पड़ेगा, इस बात की किसी ने कल्पना तक भी नहीं की थी।

एक दिन इलाहाबाद स्टेशन पर दोनों गाड़ी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। किसी आकस्मिक कारण से ट्रेन आने में

देर हो गई थी। इस बीच में जितनी गाड़ियाँ आ-जा रही थीं, विनोदिनी उनमें सवार यात्रियों को अच्छी तरह देखती जा रही थी। सम्भवतः उसके मन में यही आशा बँधी हुई थी कम-से-कम रुँधी हुई गली में, जनहीन कमरे के बीच निश्चल उद्यम से अपने को नित्य दबा रखने की उपेक्षा तो इस नित्य की अनुसन्धानपरता में, इस उन्मुक्त पथ के जनकोलाहल में शान्ति है।

हठात् एक दिन स्टेशन के एक शीशे के बाक्स के ऊपर विनोदिनी की दृष्टि पड़ते ही चौंक उठी। यह बाक्स पोस्टआफिस का था। जिसका पता नहीं मिलता, उनके ही पत्र इनमें रखे जाते हैं। इसी बाक्स में रखे हुए पत्र पर विनोदिनी ने विहारी का नाम देखा। विहारी नाम असाधारण नहीं है। यह समझने का कोई कारण नहीं था कि इस पत्र का विहारी ही विनोदिनी का इच्छित विहारी है। तो भी विनोदिनी को अपने ही विहारी के सिवा और किसी विहारी की याद नहीं आयी। पत्र पर लिखे हुए पते को विनोदिनी ने याद कर लिया। महेन्द्र एक बेंच पर उदास होकर बैठा था। विनोदिनी ने उसके पास आकर कहा, 'कुछ दिनों तक इलाहाबाद में ही रहूँगी।'

महेन्द्र को विनोदिनी अपनी ही इच्छा के अनुसार चला रही थी, किन्तु उसके क्षुधित अतृप्त हृदय को खुराक नहीं दे रही थी। इससे महेन्द्र का पौरुषाभिमान प्रतिदिन आहत हो रहा था और हृदय भी विद्रोही होता चला जा रहा था। वह तो चाहता ही था, वहाँ ठहरने से, विश्राम मिलने से एक तरह जान ही बच जायगी! किन्तु जब विनोदिनी ने अपनी इच्छा प्रकट की तो उसका मन हठात् उसके विरुद्ध हो गया। उसने रंज

होकर कहा, जब जाने के लिए बाहर निकल पड़ा तो जाऊँगा ही, लौट न सकूँगा।'

विनोदिनी ने कहा, मैं तो नहीं जाऊँगी।'

महेन्द्र ने कहा, 'तो तुम अकेली ही रहो, मैं जाता हूँ।'

विनोदिनी ने कहा, 'बहुत अच्छा!' यह कहकर उसने कुली को बुलाया और इशारा करके स्टेशन छोड़कर रवाना हो गयी।

महेन्द्र पुरुष के कर्तव्य का अभिमान लिए बेंच पर बैठा रह गया। उसके मुँह पर अंधकार छा गया। जब तक विनोदिनी दिखाई पड़ी तब तक वह स्थिर भाव से ताकता रहा। किन्तु जब विनोदिनी ने एक बार भी फिरकर इसकी तरफ नहीं देखा और स्टेशन के हाते से बाहर चली गयी तब महेन्द्र जल्दी से कुली के सिर पर सब सामान लदवाकर उसका पीछा करने लगा। उसके पास जाते-जाते उसने देखा कि विनोदिनी एक किराये की गाड़ी पर सवार हो चुकी है। कुछ भी न कहकर उसने अपना सामान गाड़ी पर लदवाया और कोचमैन के पास बैठ गया। अपने अभिमान को खर्च करके गाड़ी के भीतर विनोदिनी के सामने बैठने का उसका मुँह नहीं रहा।

किन्तु गाड़ी तो चली जा रही है। एक घंटा बीत गया। गाड़ी धीरे-धीरे शहर के मकानों को पार कर गयी और खेतों के मैदानों में जा पहुँचा। गाड़ीवान से कुछ पूछने में महेन्द्र को लज्जा मालूम होने लगी। क्योंकि पूछने पर वह यही समझ लेगा कि अन्दर बैठी हुई औरत ही मालिक है, जाने के सम्बन्ध में इस अनावश्यक पुरुष से कुछ भी परामर्श नहीं किया। स्पष्ट अभिमान को मन-ही-मन पकाता हुआ महेन्द्र चुपचाप कोचबाक्स पर बैठा रहा।

गाड़ी यमुना के निर्जन तट पर के एक सुरक्षित बगीचे के

सामने जाकर खड़ी हो गयी। महेन्द्र को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। यह किसका बगीचा है ? विनोदिनी को इसका पता कैसे लगा ?

बगीचे का मकान बन्द था। बहुत पुकारने पर एक बूढ़ा ब्राह्मण पहरेदार निकल आया। उसने कहा—'इस मकान के धनवान मालिक पास ही रहते हैं, उनसे अनुमति ले आने से यहाँ ठहरने की जगह दे सकता हूँ।

विनोदिनी ने महेन्द्र के मुँह की तरफ एक बार देखा। इस सुन्दर मकान को देखकर महेन्द्र मुग्ध हो गया था। बहुत दिनों के बाद कुछ दिन ठहरने की लालसा से वह प्रफुल्ल हो उठा। विनोदिनी से कहा—'तो चलो' इस मकान मालिक से मुलाकात करें। तुम बाहर गाड़ी पर रहना और मैं भीतर जा किराया ठीक करके आ जाऊँगा।'

विनोदिनी ने कहा—'अब मैं घूम न सकूँगी। तुम जाओ, मैं तब तक यहाँ विश्राम करूँगी। भय का कारण नहीं है।'

महेन्द्र गाड़ी लेकर चला गया! विनोदिनी ने बूढ़े ब्राह्मण को बुलाकर उसके बाल बच्चों का हाल पूछा, 'तुम लोग कौन हो, तुम्हारे लड़के कितने हैं वे कहाँ नौकरी करते हैं, तुम्हारी लड़कियों का कहाँ विवाह हुआ है ?'

बूढ़े की स्त्री के मरने का समाचार सुनकर विनोदिनी ने करुणस्वर में कहा—'आह, तुमको तो बड़ा कष्ट है। इस अवस्था में तुम संसार में अकेले रह गये। तुमको देखने सुननेवाला कोई नहीं है।'

इसके बाद विनोदिनी ने बातचीत के सिलसिले में पूछा, 'बिहारी बाबू यहाँ रहते थे न ?'

बूढ़े ने कहा—'हाँ—कुछ दिन तो जरूर रहे थे। माँजी, क्या आप उनको पहचानती हैं ?'

विनोदिनी ने कहा, 'वे हमलोगों के आत्मीय हैं।'

विनोदिनी ने बूढ़े के मुँह से बिहारी के बारे में जो कुछ विवरण सुना, उनसे उसके मन में कुछ भी सन्देह नहीं रह गया। विनोदिनी ने बूढ़े से मकान का दरवाजा खुलवाकर पूछ कर यह जान लिया कि वह किस कमरे में सोता था किसमें बैठा करता था। उसके जाने के बाद से सब कमरे बन्द पड़े थे। विनोदिनी को मालूम होने लगा मानो अदृश्य बिहारी का अस्तित्व सब कमरों में भरा पड़ा है मानो हवा उसे वहाँ से उड़ाकर न ले जा सकी है। विनोदिनी ने उसे पूरे हृदय से सूँघकर अपने हृदय में ग्रहण कर लिया, वहाँ की जमी हुई हवा को अपने समूचे शरीर में लगाया, किन्तु बिहारी कहाँ गया, इसका पता कुछ भी नहीं लगा। सम्भव है कि वह यहाँ फिर लौट आवे, साफ कुछ मालूम नहीं है। बूढ़े ने विनोदिनी को आश्वासन दिया कि मैं अपने मालिक से पूछकर ठीक-ठीक बताऊँगा।

पेशगी केराया देकर और रहने की अनुमति लेकर महेन्द्र लौट आया।

५०

(हिमालय पर्वत की चोटियाँ जिस यमुना को बर्फ से गलकर निकलनेवाली अक्षय जलधारा दे रही हैं, उसी यमुना को लेकर कितने ही युगों के कवियों ने जो कवित्व का स्रोत बहा दिया है, वह भी उसी जलधारा के समान अक्षय है इसकी कलध्वनि में कितने ही विचित्र छन्द ध्वनित हैं और इसकी लहरों की लीला में न मालूम कितने दिनों का पुलकोच्छ्वासित भावावेग उद्वेलित हो उठा करता है।)

शाम को उसी यमुना के किनारे जब महेन्द्र जा बैठा, तब घनीभूत प्रेमके आवेश ने, उसकी दृष्टि में, उसकी साँस में, उसके नसोंमें, उसकी हड्डियों में प्रगाढ़ मोहरस का संचार कर दिया। आकाश में सूर्यास्त के समय की किरणों की स्वर्णवीणा, वेदना की मूर्च्छना में एक अश्रुत पूर्व संगीत के स्वर में झंकृत हो उठी।

बहुत दूरतक फैले हुए रेतीली तट भूमि पर विचित्ररगों की छटा दिखाकर दिन धीरे-धीरे बीत चला। महेन्द्र ने अपनी आँखें अर्द्धमुद्रित करके कल्पना द्वारा काव्य लोक में पहुँचकर देखा कि गायों की खुरों से धूलि उड़ रही है और वे डकरती हुई वृन्दावन से अपने घर लौट रही हैं।

बरसात के बादलोंसे आकाश छा गया। अपरिचित स्थान का अन्धकार केवल काले रङ्ग का परदामात्र ही नहीं होता, वह विचित्र रहस्यों से परिपूर्ण है। उसके भीतर से जितनी आभा, जितनी आकृति देखने को मिलती है, वह अनुच्चरित अज्ञात भाषा में बोलती हैं। दूसरे किनारे की रेती का अस्पष्ट पीलापन, तरङ्गहीन जल की स्याही के समान कालिमा, बगीचे में खूब घनी पत्तियों से भरे विपुल नीम-वृक्षों की पुञ्जभूत निस्तब्धता, वृक्षहीन, मलिन धूसर तट की बंकिम रेखा—इन सब ने ही आषाढ़ की सन्ध्या के अन्धकार में, विविध अपरिस्फुट आकारों में मिलकर महेन्द्र को चारों तरफ से घेर लिया।

महेन्द्र को पदावलियों में वर्णित वर्षाऋतु का अभिसार याद आ गया। अभिसारिका घर से निकल पड़ी है। यमुना के उसी तट के छोर पर वह अकेली आकर खड़ी हुई है। पार किस तरह होगी ? 'पार करो जी, पार करो जी' महेन्द्र के हृदय के अन्दर यही पुकार, पहुँच रही है—'पार करोजी ?'

नदी के दूसरे तट पर अन्धकार में वह अभिसारिका बहुत

दूर है, तो भी महेन्द्र ने उसे स्पष्ट देख लिया। उसका समय नहीं है, उसकी अवस्था नहीं है, वह चिरकाल की गोपबाला है। किन्तु तो भी महेन्द्र ने उसे पहचान लिया -- वह तो यही विनोदिनी है।

वह समस्त विरह, समस्त वेदना, समस्त यौवन भार लेकर उस बहुत ही पुराने जमाने से अभिसार की यात्रा करके, आज-कल के इस जमाने के तट पर आकर उतर पड़ी है,—आज के इस जनहीन यमुना-तट के ऊपर के आकाश में उसी का कण्ठस्वर सुनाई पड़ रहा है—'कोऊ पार करो जी, पार करो जी।' पार करनेवाली नाव के लिए वह इस अन्धकार में और कितने दिनों तक इस तरह खड़ी रहेगी—'पार करो, मोहिं पार करो जी।'

बादलों का एक कोना उठकर गायब हो गया और कृष्ण पक्ष की तृतीया का चन्द्रमा दिखाई पड़ा। उगी हुई चाँदनी के माया मन्त्र से वह नदी और वह नदी तट, वह आकाश और आकाश का सीमान्त पृथ्वी से बहुत दूर बाहर चला गया। मर्त्यलोक से उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं रह गया। काल की धारावाहिकता टूट गई, अतीतकाल का सारा इतिहास लुप्त हो गया और भविष्यकाल का सारा फलाफल अन्तर्हित हो गया। केवल यही रजतधाराप्लावित वर्तमान काल यमुना और यमुना तट के बीच में महेन्द्र और विनोदिनी को लेकर विश्वविधान के बाहर चिरस्थायी हो रहा।

महेन्द्र मतवाला हो उठा। वह यह कल्पना भी न कर सका कि विनोदिनी उसे अस्वीकार करेगी, चाँदनी रात के इस निर्जन स्वर्ग-खण्ड को लक्ष्मी के रूप में सम्पूर्ण न कर देगी। उसी क्षण उठकर वह विनोदिनी की खोज में मकान की ओर चल पड़ा।

सोने के कमरे में आकर देखा कि कमरा फूलों की गन्ध से

भर उठा है। खुले दरवाजे और खिड़की की राह से चाँदनी का प्रकाश सफेद बिछौने पर आ पड़ा है। विनोदिनी ने बगीचे से फूल चुनकर, मालायें गूंथकर अपने बालों के जूरे में पहन ली है, गले में डाल ली है, कमर में बाँध ली है। फूलों से भूषित होकर वह बसन्तकाल के फूलों के बोझ से लुटी हुई लता की भांति चाँदनी में बिछौने पर लेटी हुई है।

महेन्द्र का मोह दूना हो उठा। वह रुँधी हुई आवाज में बोल उठा—'विनोद, मैं यमुना के किनारे प्रतीक्षा में बैठा हुआ था। आकाश के चन्द्रमा ने मुझे खबर दी कि तुम मेरी प्रतीक्षा में यहाँ बैठी हुई हो, इसी से मैं चला आया।'

इतनी बातें कहकर महेन्द्र बिछौने पर बैठने के लिए आगे बढ़ा। विनोदिनी झटपट चकित होकर उठ बैठी और अपना दाहिना हाथ बढ़ाकर उसने कहा, 'जाओ, चले जाओ, तुम इस बिछौने पर न बैठना।'

हवा के वेग से पाल द्वारा चलनेवाली नाव रेती में ठेककर रुक गयी— महेन्द्र स्तम्भित होकर खड़ा रह गया। बहुत देर तक उसके मुँह से एक भी बात नहीं निकली। शायद महेन्द्र मना करने पर भी न माने, इस आशंका से विनोदिनी बिछौना छोड़ कर खड़ी हो गई।

महेन्द्र ने कहा, 'तो तुमने किसके लिए यह सजावट की है? किसके लिए प्रतीक्षा कर रही हो?'

विनोदिनी ने अपनी छाती पर हाथ रखकर कहा, 'जिसके लिये मैंने यह सजावट की है, वे मेरे अन्तःकरण में विराजमान हैं।'

महेन्द्र ने कहा, 'वह कौन है? क्या बिहारी है?'

विनोदिनी ने कहा, 'उसका नाम तुम अपने मुँह से न निकालना।'

महेन्द्र—'उसी के लिए तुम पश्चिम में घूम रही हो?'

विनोदिनी—'उसी के लिये।'

महेन्द्र—'उसी के लिए तुम यहाँ प्रतीक्षा कर रही हो?'

विनोदिनी—'उसी के लिए।'

महेन्द्र—'उसका पता ठिकाना जानती हो?'

विनोदिनी—'जानती तो नहीं हूं, किन्तु जैसे होगा पता लगा ही लूँगी।'

महेन्द्र—'किसी तरह भी पता न लगने दूंगा।'

विनोदिनी—'यदि पता न लगने दोगे तो मेरे हृदय से तो तुम किसी तरह भी न हटा सकोगे।'

'यह कहकर विनोदिनी ने आँखें बन्द करके अपने हृदय में एक बार बिहारी का अनुभव कर लिया।'

उस पुष्पाभरणाभूषिता विरह विधुरमूर्ति विनोदिनी द्वारा एक साथ ही प्रबल वेग से आकर्षित किये जाने और छोड़ दिये जाने से महेन्द्र हठात् भयानक हो उठा और बोला, 'छुरी से काटकर तुम्हारे हृदय के भीतर से उसको बाहर निकाल लूँगा।

विनोदिनी ने विचलित हुए बिना ही कहा, 'तुम्हारे प्रेम की अपेक्षा तुम्हारी छूरी सहज ही प्रवेश कर जायगी।'

महेन्द्र—'तुम मुझसे डरती क्यों नहीं, यहाँ तुम्हारी रक्षा करनेवाला कौन है?'

विनोदिनी—'तुम मेरे रक्षक हो। तुम स्वयं अपने से भी मेरी रक्षा करोगे।'

महेन्द्र—इतनी श्रद्धा, इतना विश्वास अब भी बाकी है।'

विनोदिनी—ऐसा न होता तो मैं आत्महत्या करके मर

जाती, तुम्हारे साथ बाहर न निकल पड़ती।'

महेन्द्र—'तुम मर क्यों न गयी, इतनी विश्वास की फाँसी मेरे गले में डालकर मुझे देश-देशान्तरों में खींचकर क्यों मार रही हो? सोच कर देखो तो यदि तुम मर जाती तो कितना मङ्गल होता?'

विनोदिनी—'यह तो जानती हूँ, किन्तु जितने दिनों तक बिहारी की आशा है, उतने दिनों तक मर न सकूँगी।'

महेन्द्र—'जब तक तुम न मरोगी, तब तक मेरी प्रत्याशा भी नहीं मरेगी, मैं भी छुटकारा न पाऊँगा। मैं आज से भगवान् के निकट सच्चे हृदय से तुम्हारी मृत्यु-कामना करूँगा। तुम मेरी भी न होना और बिहारी की भी न होना। तुम जाओ, मुझे छुट्टी दे दो। मेरी माँ रो रही है, मेरी स्त्री रो रही है, उनके आँसू दूर से मुझे जला रहे हैं। तुम न मरोगी, तुम मेरी और दुनिया के और सब लोगों की आशा से अतीत न हो जाओगी तो मैं कभी उनकी आँखों के आँसू पोछने का अवसर न पाऊँगा।'

यह कहकर महेन्द झटपट दौड़कर बाहर चला गया। विनोदिनी अकेली पड़ी हुई अपने चारों तरफ जो मोह-जाल फैला रही थी, उसे छिन्न-भिन्न करके चला गया। चुपचाप खड़ी विनोदिनी बाहर की तरफ ताकती रह गयी। आकाश में भरी हुई चाँदनी को सूनी करके उसका समस्त सुधारस न मालूम कहाँ उड़ गया। वह क्यारियों से सजाया हुआ बगीचा, उसके बाद रेतीली किनारा, उसके बाद नदी का काला जल, उसके बाद उस पार की अस्फुटता—सभी मानो एक बड़े सफेद कागज पर पेंसिल से खींचे गये एक चित्र मात्र हैं, सभी नीरस और निरर्थक है।

महेन्द्र को विनोदिनी ने किस तरह प्रबल वेग से अपनी तरफ खींचा है, प्रचण्ड तूफान की भाँति जलमूल समेत उसे उखाड़ दिया है, इन बातों का अनुभव करके उसका मन आज मानो और भी अशान्त हो उठा। वह सोचने लगी—'मुझमें तो वह शक्ति मौजूद ही है, तो क्या कारण है कि पूर्णिमा की रात के उमड़े हुए समुद्र की तरह बिहारी क्यों नहीं मेरे सामने आकर गिर पड़ता। क्यों एक अनावश्यक प्रेम का प्रबल प्रतिघात प्रति दिन मेरे ध्यान में आकर रो पड़ता है, और एक आनेवाली रुलाई बार-बार आकर मेरे हृदय की रुलाई को पूरा अवकाश क्यों नहीं देती। वह जो प्रकाण्ड आन्दोलन मैंने खड़ा कर दिया है, उसको लेकर सारी जिन्दगी में क्या करूँगी। अब मैं इस आन्दोलन को किस तरह शान्त कर सकूँगी?'

आज जिन फूलों की मालाओं से उसने अपने को सजाया था, उनके ऊपर महेन्द्र की मुग्धदृष्टि पड़ी जानकर उन सबको उसने तोड़कर फेंक दिया। उसकी सारी शक्ति वृथा है, चेष्टा वृथा है, जीवन वृथा है। इतनी व्यर्थता है, तो भी जो जहाँ है, वह वहीं खड़ा है, जगत् की किसी चीज में जरा भी हेरफेर नहीं हुआ है। तो भी कल सूर्य्योदय होगा और संसार अपने छोटे-छोटे काम को भी न भूलेगा और अविचलित बिहारी जैसे दूर रहता था, वैसे ही दूर रहकर ब्राह्मण बालक को बोधोदय का नया पाठ पढ़ाता रहेगा।

विनोदिनी की आँखें फटकर आँसू बाहर हो पड़े। वह अपने सारे बल और सारी लालसा के साथ किस पत्थर को ठेल रही है। उसका हृदय रक्त से बह गया, किन्तु उसका भाग्य सुई की नोक भर न हट सका।

५१

सारी रात महेन्द्र सोया नहीं। शरीर थक जाने से खूब तड़के ही उसे नींद आ गई। आठ-नौ बजे नींद टूटी तो वह झटपट उठकर बैठ गया। पिछली रात की कोई असमाप्त वेदना मानो नींद के भीतर-ही भीतर प्रवाहित हो रही थी। सचेत होने पर तुरंत ही वह अपनी व्यथा का अनुभव करने लगा। थोड़ी देर बाद ही रात की सारी घटनाएँ मन में स्पष्ट रूप से जाग उठीं। उसे प्रातःकाल की उस धूप में अतृप्त नींद की क्लान्ति में, सारा जगत् और जीवन अत्यन्त नीरस मालूम होने लगा। घर-बार छोड़ने की ग्लानि, धर्म त्याग का गम्भीर परिताप और इस उद्भ्रान्त जीवन की समस्त अशान्ति का भार महेन्द्र क्यों ढो रहा है इस मोह के आवेश से शून्य प्रभात की धूप में महेन्द्र को मालूम होने लगा मानो वह विनोदिनी को प्यार नहीं करता? उसने रास्ते की तरफ आँखें उठाकर देखा कि सारी जाग्रत पृथ्वी व्यस्त होकर दौड़ी जा रही है। समस्त आत्म गौरव की कीचड़ में डालकर, एक विमुख स्त्री के पैरों के पास अपने अकर्मण्य जीवन को प्रतिदिन आबद्ध रखने की मूढ़ता महेन्द्र के निकट स्पष्टरूप से प्रकट हो गई। एक प्रबल आवेग के उच्छ्वास के बाद से हृदय में थकावट आ जाती है, थका हुआ हृदय तब अपने अनुभव या विचार के विषय को कुछ समय के लिए दूर हटा रखना चाहता है। उस भाव में भाटा आने के समय तल का सारा छिपा हुआ कीचड़ बाहर निकल जाता है। जिसके मोह आया था, उससे अरुचि उत्पन्न हो जाती है। महेन्द्र आज यह समझ न सका कि वह किस लिए अपने को इस तरह अपमानित

कर रहा है। उसने कहा, 'मैं सब बातों में विनोदिनी से श्रेष्ठ हूँ, तो भी आज मैं सब तरह की हीनता और लांछना स्वीकार करके, घृणित भिक्षुक की तरह दिन रात उसके पीछे-पीछे दौड़ता फिरता हूँ। इस तरह का अद्भुत पागलपन किस शैतान ने मेरे सिर में प्रवेश कर दिया है?' आज विनोदिनी महेन्द्र के लिये एक स्त्री मात्र है और कुछ भी नहीं है। उसके चारों तरफ सारी पृथ्वी के सौन्दर्य से समस्त काव्य से और कहानियों से जो एक लावण्यज्योति खिचकर आयी थी, वह आज माया-मरीचिका की तरह अन्तर्हित हो जाने के साथ ही एक साधारण स्त्री मात्र अवशिष्ट रह गयी। उसकी कोई अपूर्वता या विशेषता नहीं रह गयी।

तब इस धिक्कारने योग्य मोह-चक्र से अपने को अलग करके घर लौट जाने के लिए महेन्द्र व्यग्र हो उठा। जो शान्ति, प्रेम और स्नेह उसके अपने थे, वे ही उसे इस समय अमृत के समान मालूम होने लगे। बिहारी का वह बचपन से बढ़ा हुआ अटल निर्मल बन्धुत्व महेन्द्र को अब बहुत मूल्यवान् मालूम होने लगा। महेन्द्र ने मन ही-मन कहा 'जो यथार्थ गम्भीर और स्थायी है, उसमें बिना चेष्टा के, बिना बाधा के, अपने को सम्पूर्ण निमग्न करके रखा जा सकता है, इस कारण ही हम लोग उसका गौरव नहीं समझ सकते। जो चञ्चल छलना मात्र है, जिसकी सम्पूर्ण परितृप्ति में भी लेश मात्र सुख नहीं है, वह हम लोगों को अपने पीछे घुड़दौड़ के घोड़ों की तरह दौड़ाता है, यही कारण है कि हम लोग उसी को परम प्रार्थनीय धन समझ लेते हैं।'

महेन्द्र ने कहा, 'आज ही घर लौट जाऊँगा और विनोदिनी जहाँ रहना चाहेगी वहीं उसे रखने की व्यवस्था करके मैं छुट-

कारा पा जाऊँगा' 'मैं छुटकारा पा जाऊँगा'—यह बात दृढ़ स्वर से उच्चारण करते ही उसके मन में एक तरह के आनन्द का प्रादुर्भाव हुआ। इतने दिनों तक जिस लगातार की दुविधा के भार को वह ढोता चला आ रहा था, वह हलका हो गया। इतने दिनों तक इसी समय जो बात उसे परम अप्रीतिकर मालूम हो रही थी, थोड़ी देर के बाद बाध्य होकर वह करना पड़ता था। जो करके वह 'नहीं' या 'हाँ' नहीं कह सकता था, उसके अन्तःकरण में जो आदेश उठता था, उसको बल-पूर्वक दबाकर वह दूसरे मार्ग पर चलाता था। किन्तु इस समय ज्योंही उसने जोर देकर कहा, 'मैं छुटकारा पा जाऊँगा'—त्यों उसके आन्दोलित हृदय ने आश्रय पाकर उसका अभिनन्दन किया।

महेन्द्र उसी समय बिस्तरे से उठकर हाथ-मुँह धोकर विनोदिनी से मुलाकात करने के लिए गया। जाकर देखा कि दरवाजा बन्द है। दरवाजे पर धक्का देकर कहा, 'सो रही हो क्या ?'

विनोदिनी ने कहा, 'नहीं। तुम अभी जाओ।'

महेन्द्र ने कहा—तुमसे कुछ विशेष बातचीत करनी है, मैं अब यहाँ बहुत देर तक न ठहरूँगा।'

विनोदिनी ने कहा—'मैं और कोई बात नहीं सुन सकती। तुम जाओ, मुझे तंग मत करो, मुझे अकेली रहने दो।'

कोई दूसरा समय होता तो इस प्रत्याख्यान से महेन्द्र के मन का आवेग और बढ़ जाता, किन्तु आज उसे अत्यन्त घृणा मालूम हुई। उसने सोचा, 'इस एक साधारण स्त्री के निकट मैंने अपने को इतना हीन बना डाला है कि जब तब इस तरह की अवज्ञा के भाव से मुझे दूर करने का अधिकार इसे मिल गया है। यह अधिकार इसका स्वाभाविक अधिकार नहीं है। मैंने ही यह अधिकार देकर इसके गर्व को इस तरह अनुचित रूप से

बढ़ा दिया है।' इस लांछना के बाद महेन्द्र ने अपने ही में अपनी श्रेष्ठता का अनुभव करने की चेष्टा की। उसने कहा, 'मैं विजयी हूँगा, मैं इसका बन्धन काटकर चला जाऊँगा।

भोजन के बाद महेन्द्र रुपया निकाल लाने के लिए बैंक को चला गया। रुपया ले चुकने के बाद वह आशा के लिए और माँ के लिए कुछ अच्छी नयी चीजें खरीदने की इच्छा से इलाहाबाद की दूकानों में घूमने लगा।

फिर एक बार विनोदिनी के दरवाजे पर धक्का लगा। पहले उसने रंज होकर कुछ उत्तर नहीं दिया। इसके बाद बार-बार धक्का लगने पर विनोदिनी ने क्रोधित होकर जोर से दरवाजा खोलकर कहा, 'तुम क्यों मुझे बार-बार तंग करने के लिए आते रहते हो?' बात पूरी भी न हो सकी कि विनोदिनी ने देखा, बिहारी खड़ा है।

कमरे के अन्दर महेन्द्र है या नहीं यह देखने के लिए बिहारीने एक बार कमरे के भीतर नजर दौड़ायी। उसने देखा कि सोने के कमरे में सूखे फूल और टूटी हुई मालाएँ बिखरी पड़ी हैं। उसका मन क्षण भर में प्रबल वेग से विमुख हो गया। बिहारी जब दूर था, तब विनोदिनी की जीवन यात्रा के सम्बन्ध में किसी तरह का सन्देह जनक चित्र उसके मन में न अंकित हुआ हो, ऐसी बात नहीं है, किन्तु कल्पना की लीला ने उस चित्र को ढक कर भी एक उज्वल मोहिनी छवि खड़ी कर दी थी। बिहारी जब बगीचे में प्रवेश कर रहा था, तब उसका हृदय कांप रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि कल्पना प्रतिमा में अचानक चोट लग जाय, इसीलिए उसका चित्त संकुचित हो रहा था। विनोदिनी के दरवाजे पर आकर खड़े होते ही उसे वही चोट लगी।

दूर रहकर किसी समय बिहारी ने सोचा था कि वह अपने प्रेम के अभिषेक से विनोदिनी के जीवन के सब कीचड़ को अनायास ही धो सकेगा। किन्तु पास आकर देखा कि यह सहज नहीं है। मन में करुण की वेदना कहाँ रही। एकाएक घृणा की लहरों ने उठकर उसे अभिभूत कर लिया। विनोदिनी को बिहारी ने अत्यन्त मलीन देखा।

उसी समय तुरन्त ही बिहारी ने फिरकर खड़े होकर 'महेन्द्र', 'महेन्द्र' कहकर पुकारा।

यह अपमान पाकर विनोदिनी ने नम्र स्वर में कहा, 'महेन्द्र नहीं है, वह शहर गया है।'

बिहारी चले जाने को तैयार हुआ तो विनोदिनी ने कहा, 'बिहारी बाबू तुम्हारे पैर पड़ती हूं, जरा तुमको बैठना होगा।'

बिहारी ने निश्चय कर लिया था कि किसी तरह भी अनुरोध की बात न सुनूंगा। इस घृणापूर्ण दृश्य से तुरन्त ही दूर चले जाने का उसने निश्चय कर लिया था। किन्तु विनोदिनी का करुण अनुनय स्वर सुनते ही क्षण भर के लिए मानो उसके कदम ही नहीं उठे।

विनोदिनी ने कहा—'आज यदि तुम विमुख होकर इस तरह चले जाओगे तो मैं तुम्हारी ही शपथ खाकर कहती हूँ, मैं मर जाऊँगी।'

बिहारी ने तब लौटकर खड़े होकर कहा, 'विनोदिनी, तुम अपने जीवन के साथ मुझे लपेटने की चेष्टा क्यों कर रही हो? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? मैं तो कभी तुम्हारे मार्ग में खड़ा नहीं हुआ, तुम्हारे सुख दुःख में तो मैंने हस्तक्षेप नहीं किया।'

विनोदिनी ने कहा—'तुमने मेरे ऊपर अपना कितना अधिकार कर लिया है, यह बात मैं तुमको एक बार बता चुकी हूं,

किन्तु तुमने विश्वास नहीं किया। तो भी आज फिर तुम्हारे विरक्त मुँह पर ही वही बात कह रही हूँ। तुमने तो मुझे कह कर बताने का, लज्जा करके बताने का मौका ही नहीं दिया। तुमने मुझे ठेल दिया है, तो भी मैं तुम्हारे पैर पकड़कर कहती हूँ, मैं तुमको...'

विहारी ने बाधा देकर कहा—'यह बात और न कहना, मुँह से न निकालना। उस पर विश्वास करने का कोई उपाय नहीं है।'

विनोदिनी—'उस बात पर दूसरे लोग विश्वास नहीं कर सकते किन्तु तुम करोगे, इसीलिए मैं तुमको एक बार बैठने के लिए कहती हूँ।'

विहारी—'मैं विश्वास करूँ या न करूं, इससे क्या आता-जाता है। तुम्हारा जीवन जैसे बीत रहा है, वैसे ही चलता रहेगा तो।'

विनोदिनी—मैं जानती हूँ, इससे तुम्हारा कुछ भी नहीं आवे, जावेगा। मेरा भाग्य ही ऐसा है कि तुम्हारे सम्मान की रक्षा करके तुम्हारे पास खड़ी रहने का कोई उपाय नहीं है। चिरकाल तक तुमसे मुझे दूर ही रहना होगा। मेरा मन तुमसे केवल इतना ही दावा नहीं छोड़ सकता कि मैं जहाँ ही रहूं, तुम मुझसे कुछ माधुर्य के साथ याद करोगे। मैं जानती हूँ मेरे ऊपर तुमको कुछ थोड़ी-सी श्रद्धा उत्पन्न हुई थी, उसी को मैं अपना एकमात्र अवलम्ब बना रखूंगी। इसीलिए मेरी सब बातें तुमको सुननी पड़ेंगी। मैं हाथ जोड़कर कहती हूँ, तुम जरा बैठ जाओ।'

'अच्छा चलो' कहकर बिहारी इस जगह से हटकर दूसरी जगह जाने को तैयार हो गया।

विनोदिनी ने कहा—'तुम जो समझ रहे हो, वह बात नहीं

है। इस कमरे को किसी तरह का कलंक नहीं लगा है। तुम इस कमरे में एक दिन सोये थे, इस कमरे को तुम्हारे लिए छोड़ रखा है। वे सब तुम्हारी ही पूजा करके सूखे पड़े हुए हैं। इसी कमरे में तुमको बैठना होगा।'

यह सुनकर बिहारी के चित्त में पुलक का संचार हुआ। उसने कमरे में प्रवेश किया। विनोदिनी ने अपने दोनों हाथों से पलंग दिखा दिया। बिहारी पलंग पर जाकर बैठ गया। विनोदिनी नीचे जमीन पर उसके पैरों के पास बैठ गयी। बिहारी व्यस्त होकर ज्यों ही उठने लगा त्यों ही विनोदिनी ने कहा 'बिहारी बाबू तुम बैठो। तुम्हें मेरे सिर की कसम उठना नहीं। मैं तुम्हारे पैरों के पास बैठने योग्य भी नहीं हूँ। किन्तु तुमने दया करके यहाँ मुझे स्थान दिया है। दूर रहने पर भी इस अधिकार को मैं रखूँगी।'

यह कहकर विनोदिनी कुछ देर तक चुप हो रही इसके बाद हठात् चौंककर कहा, 'तुम क्या भोजन कर चुके हो?'

बिहारी ने कहा—'स्टेशन से ही भोजन करके आ रहा हूँ।'

विनोदिनी—मैंने गाँव से तुम्हारे पास जो चिट्ठी भेजी थी, उसे खोल कर कुछ जवाब दिये बिना ही तुमने उसे महेन्द्र के हाथ से क्यों लौटा दी थी?'

बिहारी ने कहा—'वह चिट्ठी तो मैंने पायी ही नहीं।'

विनोदिनी—'इस बार क्या तुमसे महेन्द्र की कलकत्ते में मुलाकात हुई थी?'

बिहारी—'तुमको गाँव पर पहुँचा जाने के बाद दूसरे दिन महेन्द्र से मुलाकात हुई थी उसके बाद ही मैं इधर पश्चिम भ्रमण के लिए निकल पड़ा था, फिर उससे मुलाकात नहीं हुई।'

विनोदिनी—'उसके पहले और एक दिन मेरी चिट्ठी पढ़कर

कुछ उत्तर न देकर ही तुमने लौटा दी थी ?'

बिहारी—नहीं, ऐसा तो कभी न हुआ ?'

विनोदिनी स्तम्भित होकर बैठी रह गयी। उसके बाद लम्बी साँस खींचकर उसने कहा—'सब समझ गयी। अब मैं अपनी सभी बातें तुमसे कहती हूँ। यदि विश्वास करोगे तो अपना भाग्य समझूँगी यदि न करोगे तो तुमको दोष न दूंगी, मेरा विश्वास करना कठिन है।'

बिहारी का हृदय उस समय पिघल गया था। भक्ति के भार से झुकी हुई विनोदिनी की इस पूजा का वह किसी तरह भी अपमान न कर सका। उसने कहा, 'भाभी, तुमको कुछ भी न कहना पड़ेगा, कुछ सुने बिना ही मैं तुम्हारा विश्वास करता हूँ। मैं तुम्हें घृणा नहीं कर सकता। तुम अब एक बात भी न कहना।'

सुनकर विनोदिनी की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने बिहारी के पैरों की धूलि अपने मस्तक पर लगा ली। उसने कहा 'सब बातें खोलकर न कहने से मेरी जान न बचेगी। जरा धीरज रखकर सुनना ही होगा, तुमने मुझे जो आज्ञा दी थी, उसको मैंने शिरोधार्य कर लिया। यद्यपि तुमने मुझे एक चिट्ठी भी नहीं लिखी, तो भी मैं अपने गाँव के लोगों का उपहास और निन्दा-वाक्य सहकर अपना जीवन वहीं बिता देती। तुम्हारे स्नेह के बदले तुम्हारी शासन ही ग्रहण करती, किन्तु विधाता उससे भी विमुख हो गये! मैंने जिस पाप को जगा दिया है, उसने मुझे निर्वासन में टिकने नहीं दिया। महेन्द्र मेरे गाँव पर जा पहुँचा, उसने मेरे दरवाजे पर जाकर मुझे सबके सामने लांछित और अपमानित कर दिया। उस गाँव में मेरे लिये जगह नहीं रह गई। दूसरी बार तुम्हारी आज्ञा के लिये मैंने तुमको बहुत

खोजा, किसी तरह भी तुम्हारा पता नहीं लगा। महेन्द्र ने मेरी खुली चिट्ठी तुम्हारे घर से लाकर मुझे धोखा दिया। मैंने यही समझ लिया कि तुमने मुझे एकदम छोड़ दिया है, इसके बाद मैं एकदम नष्ट हो जा सकती थी, किन्तु तुममें न मालूम कौन गुण है, तुम दूर रहकर भी रक्षा कर सकते हो। तुमको मैंने अपने मन में स्थान दिया है; इस कारण ही मैं पवित्र बनी हुई हूँ। एक दिन तुमने मुझे दूर ढकेल कर अपना जो परिचय दिया था, तुम्हारा वह कठिन परिचय, कठिन सोने की तरह, कठिन माणिक्य की तरह मेरे हृदय में विराजमान है, उसने मुझे महामूल्यवान बना दिया है। देव, तुम्हारे चरण छूकर कहती हूँ, वह मूल्य नष्ट नहीं हुआ है।'

बिहारी चुपचाप बैठा रह गया। विनोदिनी ने भी और कोई बात नहीं कही। तीसरे पहर का प्रकाश प्रतिक्षण मलिन होता जा रहा था। ऐसे ही समय में महेन्द्र दरवाजे के पास आकर बिहारी को देखकर चौंक उठा। विनोदिनी के प्रति उसके मन में जो उदासीनता पैदा हो रही थ, ईर्षा की ताड़ना से उसके दूर हो जाने की नौबत आ गयी। यह देखकर कि विनोदिनी बिहारी के पैरों के पास स्तब्ध होकर बैठी हुई है, प्रत्याख्यात महेन्द्र के गर्व में चोट लगी। इससे उसके मन में कुछ भी सन्देह नहीं रह गया कि बिहारी के साथ पत्रव्यवहार करके ही यह मिलन सम्भव हुआ है। इतने दिनों तक बिहारी विमुख हो गया था, अब यदि वह स्वयं आकर मिलता है तो विनोदिनी को कौन रोक सकेगा ? महेन्द्र विनोदिनी को छोड़ सकता है, किन्तु और किसी के हाथ में उसे नहीं दे सकता, यह बात बिहारी को देखकर उसकी समझ में आ गयी।

महेन्द्र ने व्यर्थ क्रोध से तीव्र विद्रुप के स्वर में विनोदिनी से कहा, 'तो अब रंगभूमि से महेन्द्र का प्रस्थान और बिहारी का

प्रवेश हुआ है। दृश्य तो बड़ा सुन्दर है, ताली पीटने की इच्छा हो रही है। किन्तु मुझे आशा है कि यही अन्तिम अंक है, इसके बाद और कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा।'

विनोदिनी का मुँह लाल हो उठा। जब कि उसे महेन्द्र का आश्रय लेने के लिए बाध्य होना पड़ा है, तब तो इस अपमान का उत्तर उसके पास और कुछ भी नहीं है। उसने व्याकुल दृष्टि से बिहारी की तरफ देख लिया।

बिहारी पलङ्ग से उठकर खड़ा हो गया और आगे बढ़कर बोला, 'महेन्द्र, तुम कायरों की भांति विनोदिनी का अपमान मत करो। तुम्हारी शिष्टता यदि तुम्हें मना नहीं करती तो तुमको मना करने की शक्ति मुझमें है।'

महेन्द्र ने हँसकर कहा, 'इसके अन्दर ही अधिकार भी ठीक हो गया। आज तुम्हारा नया नाम रखा जाय विनोद-बिहारी।'

अपमान की मात्रा बढ़ते देखकर बिहारी ने महेन्द्र का हाथ पकड़ लिया। कहा, 'महेन्द्र, विनोदिनी से विवाह करूंगा। तुमको मैंने बता दिया, इसलिए अब से संयत भाव से बातचीत करना।'

यह सुनकर महेन्द्र आश्चर्य में पड़कर निस्तब्ध हो गया और विनोदिनी चौंक उठी। उसके हृदय में सब रक्त जोरों से आन्दोलित होने लगा।

बिहारी ने कहा, 'तुमको एक खबर और देनी है, तुम्हारी माता मृत्युशय्या पर पड़ी हुई हैं, उनके बचने की अब कोई आशा नहीं है। मैं आज रात की गाड़ी से ही जाऊंगा, विनोदिनी भी मेरे साथ लौट चलेगी।

विनोदिनी ने चौंककर कहा, 'क्या बुआ बीमार हैं?'

बिहारी ने कहा, 'अच्छी होनेवाली बीमारी नहीं है। कब क्या हो जाय, यह कहा नहीं जा सकता।'

महेन्द्र और कुछ भी बातचीत न करके चुपचाप चला गया।

विनोदिनी ने तब बिहारी से कहा, 'जो बात तुमने कही, वह तुम्हारे मुंह से कैसे निकली ? यह क्या दिल्लगी है ?'

बिहारी ने कहा—'नहीं, मैं सच कह रहा हूं, मैं तुमसे विवाह करूंगा।'

विनोदिनी—'इस पापिन का उद्धार करने के लिए ?'

बिहारी—'मैं तुमको प्यार करता हूँ, श्रद्धा करता हूँ, इसीलिए।'

विनोदिनी—'यही मेरा अन्तिम पुरस्कार हो गया। तुमने यह जितना स्वीकार किया है, इससे अधिक मैं और कुछ नहीं चाहती। मिलने पर भी वह न टिकेगा, क्योंकि धर्म कभी उसे सह नहीं सकता।'

बिहारी—'क्यों नहीं सह सकता ?'

विनोदिनी—'छिः छिः, ऐसी बात मन में लाने से ही लज्जा लगती है। मैं विधवा हूँ, मैं निन्दित हूँ, समूचे समाज के सामने मैं तुमको लांच्छित करूँ, यह कभी हो ही नहीं सकता। छिः छिः यह बात तुम मुँह से मत निकालना।'

बिहारी—'तुम मेरा त्याग करोगी ?'

विनोदिनी—'त्याग करने का अधिकार मुझे नहीं है। तुम गुप्त रूप से बहुतों की बहुत भलाई करते रहते हो, तुम अपने किसी एक व्रत का भार मेरे ऊपर अर्पित कर देना, उसे ही पालन करती हुई मैं अपने को तुम्हारी दासी समझूँगी। किन्तु छिः छिः, विधवा से तुम विवाह करोगे, तुम्हारी उदारता से सब सम्भव हो सकता है, किन्तु यदि मैं यह काम करूँ, तुमको समाज से नष्ट कर दूं, तो इस जीवन में फिर अपना सिर ऊँचा न कर सकूँगी।'

बिहारी—'किन्तु विनोदिनी, मैं तुमको प्यार करता हूँ।'

विनोदिनी--'उसी प्यार के अधिकार से मैं आज एक काम करने का साहस करूँगी। यह कहकर विनोदिनी ने जमीन पर टेककर बिहारी के पैर का अँगूठा चूम लिया, और पैरों के पास बैठकर कहा, 'दूसरे जन्म में तुम्हें पाने के लिए तपस्या करूँगी, इस जन्म में तो मुझे कुछ आशा नहीं है, कुछ भी प्राप्य नहीं है। मैंने अनेक दुःख दिये हैं, अनेक दुःख पाये हैं, मुझे बहुत शिक्षा मिली है। यदि वह शिक्षा मैं भूल जाती, तो मैं तुमको हीन बनाकर, मैं और भी हीन हो जाती। किन्तु तुम उच्च हो, इसीलिए मैं अपना सिर ऊँचा कर सकती हूँ, इस आश्रय को मैं भूमिसात् नहीं करूँगी।'

बिहारी गम्भीर भाव से चुपचाप बैठा रह गया।

विनोदिनी ने हाथ जोड़कर कहा, 'भूल न करना, मुझसे विवाह करके तुम सुखी नहीं हो सकते, तुम्हारा गौरव चला जायगा। मैं भी सब गौरव खो दूंगी। तुम चिरदिनों से निर्लिप्त हो, प्रसन्न हो। आज भी तुम वही बने रहो, मैं दूर रहकर तुम्हारा काम करूँगी। तुम प्रसन्न हो जाओ, तुम सुखी हो जाओ।'

५२

महेन्द्र अपनी माँ के कमरे में प्रवेश कर ही रहा था कि उसी समय आशा ने झटपट बाहर निकलकर उसके सामने आकर कहा, 'अभी उस कमरे में मत जाओ।'

महेन्द्र ने पूछा—'क्यों?'

आशा ने कहा—'डाक्टर ने कहा है कि हठात् माँ के मन में, सुख का हो या दुःख का हो, किसी तरह का भी धक्का लगने से कोई विपत्ति आ सकती है।'

महेन्द्र ने कहा—'मैं एक बार धीरे-धीरे उनके सिरहाने के पास जाकर देख आऊँ. उन्हें कुछ भी पता न लगेगा।'

आशा ने कहा—'वे बहुत थोड़ी भी आहट पाकर चौंक उठती हैं, तुम्हारे कमरे में प्रवेश करते ही उन्हें पता लग जायगा।'

महेन्द्र—'तो तुम इस समय क्या करना चाहती हो ?'

आशा—'एक बार बिहारी बाबू आकर देख जाय, वे जैसा परामर्श करेंगे, वही करूँगी।'

आशा की बात अभी पूरी भी न हो पायी थी कि तब तक बिहारी आ पहुंचा। आशा ने उसे बुला भेजा था।

बिहारी—'भाभी, तुमने मुझे बुलाया है ? माँ अच्छी तरह से हैं न ?'

बिहारी को देखकर मानो आशा को अवलम्ब मिला। उसने कहा, 'तुम्हारे चले जाने के बाद माँ मानो और भी चञ्चल हो उठी हैं। पहले दिन तुमको न देखकर उन्होंने पूछा था कि बिहारी कहाँ चला गया ? मैंने कहा कि वे एक खास काम से गये हैं, गुरुवार तक लौट आने की बात कह गये हैं। उसके बाद से वह रह-रहकर चौंक उठती हैं। कल तुम्हारा तार पाकर मैंने बता दिया कि तुम आज आ जाओगे। सुनकर उन्होंने आज तुम्हारे लिए विशेष रूप से भोजन तैयार करने को कहा है। तुमको जो-जो चीजें रुचती हैं, सभी उन्होंने मँगायी हैं। सामने वाले बरामदे में रसोई का इन्तजाम किया गया है, वे कमरे से ही सब बताती रहेंगी। डाक्टर के मना करने पर भी उन्होंने नहीं माना। अभी थोड़ी देर पहले ही उन्होंने मुझे बुलाकर कहा है कि बहू तुम अपने हाथ से सब तैयार करना, मैं आज बिहारी को सामने बैठाकर खिलाऊँगी।'

सुनकर बिहारी की आँखों में आँसू भर गये। उसने पूछा, 'माँ की हालत कैसी है ?'

आशा ने कहा—'तुम एक बार खुद चलकर देख लो, मुझे तो मालूम होता है कि बिमारी और बढ़ गयी है'

तब बिहारी कमरे के अन्दर गया। महेन्द्र बाहर खड़ा रहा और आश्चर्य में पड़ गया। आशा ने अनायास घर का कर्तृत्व ग्रहण कर लिया है, उसने महेन्द्र को किस तरह सहज में जाने से मना किया। न तो किया संकोच और न किया अभिमान। महेन्द्र का बल आज कितना घट गया है। वह अपराधी है, वह बाहर चुपचाप खड़ा रह गया। माँ के कमरे में भी न जा सका।

इसके बाद यह भी आश्चर्य है कि बिहारी के साथ आशा ने किस तरह अकुण्ठित भाव से बातचीत की। सभी परामर्श उसी के साथ किया, वही आज इस घर का एक मात्र रक्षक है, सबका सुहृद है। सर्वत्र ही उसका आना-जाना है। सभी उसी के उपदेश से चल रहे हैं। कुछ दिनों के लिए महेन्द्र जिस स्थान को छोड़ गया था, उसने लौट कर देखा उसकी हालत ठीक वैसी नहीं है।

बिहारी के कमरे में प्रवेश करते ही राजलक्ष्मी ने अपनी आँखों से उसकी तरफ देखा, फिर उन्होंने कहा, 'बिहारी लौट आया ?'

बिहारी ने कहा—'हाँ माँ, लौट आया ?'

राजलक्ष्मी ने कहा—'तेरा काम पूरा हो गया ?' यह कह कर उन्होंने उसके मुँह की तरफ एकाग्र दृष्टि से देखा।

बिहारी ने प्रसन्न भाव से कहा, हाँ माँ, काम तो सुसम्पन्न हो गया। अब मुझको कुछ चिन्ता नहीं है।' कहकर उसने एक बार बाहर की तरफ देखा।

राजलक्ष्मी—'आज बहू तुम्हारे लिए अपने हाथ से रसोई बनावेगी। मैं यहीं से बता दिया करूँगी। डाक्टर मना करता है, किन्तु अब मना करने का मतलब क्या है, बेटा! क्या मैं एक बार तुम लोगों को भोजन करते देख कर न जाऊँगी ?'

बिहारी ने कहा, 'डाक्टर के मना करने का तो कोई कारण मुझे नहीं दिखाई पड़ता माँ. तुम न बता दिया करोगी तो काम कैसे चलेगा ? लड़कपन से तो हम लोगों ने तुम्हारे ही हाथ की रसोई में रुचि रखना सीखा है, महीन भाई को तो पश्चिम की दाल-रोटी खाते-खाते अरुचि हो गई है। आज तुम्हारी तरकारी खाकर वह बच जायगा। आज हम दोनों भाई लड़कपन के दिनों की तरह एक दूसरे से होड़ करके भोजन करेंगे। तुम्हारी बहू देखें पूरा-पूरा परोस सकती है या नहीं।'

यद्यपि राजलक्ष्मी समझ गयी थीं कि बिहारी महेन्द्र को अपने साथ ले आया है, तो भी उसका नाम सुनते ही उनका हृदय हिल उठा और क्षण भर के लिए साँस लेने में कठिनाई मालूम होने लगी।

यह भाव बीत जाने पर बिहारी ने कहा, पश्चिम के भ्रमण से महीन भाई का स्वास्थ्य अब अच्छा हो गया है। आज रास्ते की थकावट से कुछ उदास हो गया है, स्नान और भोजन कर लेने पर सब हालत ठीक हो जायगी।'

इतनी बातें होने पर भी राजलक्ष्मी ने महेन्द्र के बारे में कुछ भी नहीं कहा तब बिहारी ने कहा, 'माँ, महीन भैया बाहर ही खड़ा है, तुम्हारे न बुलाने से तो वह यहाँ आ न सकेगा।'

राजलक्ष्मी ने कुछ भी न कहकर दरवाजे की तरफ देखा। उनके उधर देखने पर बिहारी ने पुकारा, 'महीन भैया, आओ।'

महेन्द्र धीरे-धीरे कमरे में गया। इस भय से कि कहीं हृदय की गति एकाएक बन्द न हो जाय, उस समय राजलक्ष्मी महेन्द्र के मुँह की तरफ न देख सकी। उन्होंने आँखें कुछ-कुछ बन्द कर लीं। महेन्द्र ने ज्यों ही बिछौने पर दृष्टि डाली, त्यों ही वह चौंक उठा, मानों किसी ने उसे मार दिया।

महेन्द्र माँ के पैरों के पास सिर रखकर हाथों से पैर पकड़े पड़ा रहा ! हृदय के स्पन्दन से राजलक्ष्मी का सारा शरीर मानो काँप उठा।

कुछ देर के बाद अन्नपूर्णा ने धीरे-धीरे कहा, 'जीजी, तुम महीन को उठने के लिए कहो. नहीं तो वह उठेगा नहीं।'

राजलक्ष्मी ने कष्ट से वाक्य निकालकर कहा 'महेन्द्र उठ।'

महेन्द्र का नाम उच्चारण करते ही बहुत दिनों के बाद उनकी आँखों से झर-झर करके आँसू झरने लगे। उन आंसुओं के गिर जाने से उनके हृदय की व्यथा बहुत घट गयी। तब महेन्द्र उठ कर, जमीन पर घुटने टेककर पलँग की पाटी पर छाती लगाकर अपनी माँ के पास नीचे ही बैठ गया। राजलक्ष्मी ने कष्ट से करवट बदलकर दोनों हाथों में महेन्द्र का सिर लेकर उसके मस्तक को सूँघा और चूम लिया।

महेन्द्र ने रुँधे हुए कण्ठ से कहा, 'माँ, मैंने तुमको बहुत कष्ट दिया, मुझे माफ करो।'

हृदय शान्त होने पर राजलक्ष्मी ने कहा, 'यह बात न कह महेन्द्र तुझे माफ किये बिना क्या मैं जीवित रह सकती हूं? बहू, बहू, बहू, कहाँ गयी?'

आशा पास के कमरे में पथ्य तैयार कर रही थी। अन्नपूर्णा उसे बुलाकर ले आयीं।

तब राजलक्ष्मी ने महेन्द्र को पलंग पर बैठने के लिए इशारा किया। जब महेन्द्र बैठ गया, तब राजलक्ष्मी ने उसके पास ही स्थान दिखाकर आशा से कहा, 'बहू. तुम यहां बैठो, आज मैं तुम दोनों को एक साथ बैठाकर देखूँगी' ऐसा होने से मेरा सब कष्ट दूर हो जायगा। बहू, तुम अब मुझसे लज्जा मत करो, और महीन पर भी कोई दुर्भाव न रखकर या अभिमान न, करके एक बार यहां बैठ जाओ। मेरी आंखें ठण्डी कर दो बेटी?'

॥ इति ॥

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक स्वर्गीय महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर रचित 'चोखेर बालि'*नामक बंगला उपन्यास का अविकल अनुवाद है।

बंगला भाषा का स्थान विश्व के समुन्नत, परिपुष्ट और सुसभ्य भाषाओं में है। इसमें अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। विद्या या साहित्य की किसी भी शाखा का अनुसन्धान करने पर बंगला में उसका भण्डार पूर्ण मिलेगा। अतः उस भाषा की उत्तमोत्तम पुस्तकों का राष्ट्रभाषा में अनुवाद श्रेयस्कर समझने में कोई हिचक न होनी चाहिये।

मूल लेखक में भावों और विचारों की पूर्णरूप से रक्षा करने में कोई त्रुटि इस पुस्तक में नहीं रखी गयी है। पुस्तक में वर्णित नायक नायिकाओं के चरित्र-चित्रण में मूल लेखक ने जो अद्भुत गाम्भीर्य-मूलक निपुणता प्रकट की है, उसे पढ़ने पर दुनिया में और किसी बात की सुधि नहीं रहती। पढ़ते समय महाकवि के युगल चरणों पर नत-मस्तक होने की इच्छा प्रबल हो उठती है। इस प्रकार भक्तिभाव से विभोर होकर हिन्दी में मूल भावों को सुरक्षित रखने की मैंने पूर्ण चेष्टा की है और मुझे पूरा विश्वास है कि हिन्दी के पाठकों को वही रस प्राप्त होगा जो बंगला के पाठकों को होता है।

मैं भगवान् श्रीकृष्ण का निम्नलिखित वचन स्मरण करके और साथ ही श्री कुमारिल स्वामी के वचन को भी पाठकों तथा आलोचकों के सम्मुख उद्धृत करके अपना कथन समाप्त करता हूँ।

मत्कर्मकृन्मत्परमोमद्भक्तःसंगवर्जितः। निर्वैरःसर्वभूतेषुयः समामेति पाण्डव।
नचातीवप्रकर्तव्यं,दोषदृष्टिपरंमनः। दोषोह्यविद्यमानोऽपि,तद्दृष्टिनांप्रकाशते।

अनुवादक—

---

* संस्कृत चक्षु शब्द के अपभ्रंश 'चोख' में षष्ठी विभक्ति 'र' लगने से 'चोखेर' (आँख का या आँख की) शब्द बना है। 'बालि' के बालू, धूलि, कण, सिकता, किरकिरी, रेणु आदि अर्थ होते हैं।